Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गीताभ्यास कर्मयोग

गुजराती लेखक

विद्यारंजन चुनिलाल रामजी त्रिवेदी

हिन्दी अनुवादक एवं सम्पादक

अंजनी ओझा

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

वाराणसी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

गीताभ्यास कर्मयोग

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गुजराती लेखक :
विद्यारंजन चुनिलाल शामजी त्रिवेदी

हिन्दी अनुवादक एवं सम्पादक :
अंजनी ओज़ा

चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस
वाराणसी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पूजनीय मातामह
की पुण्य स्मृति में सादर समर्पित
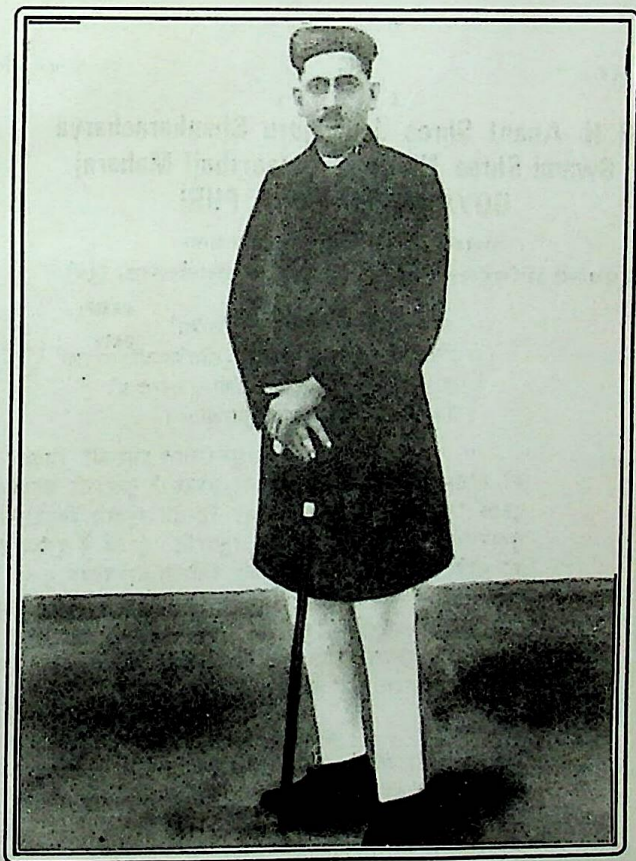
विद्यारञ्जन स्व० चुनिलाल शामजी त्रिवेदी
आर्विर्भाव : ७-२-१८८७ तिरोभाव : २३-९-१९३७

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Om Shrihari Om 卐 Om Shrihari Om

Office Of ॥ श्री हरि: ॥

H. H. Anant Shree Jagadguru Shankaracharya Swami Shree Niranjandevteerthaji Maharaj GOVARDHANMATH, PURI

अनन्तश्री जगद्गुरु शंकराचार्य
स्वामी श्रीनिरंजनदेवतीर्थजीमहाराज गोवर्धनमठ, पुरी

सं. CAMP..................
DATE 18.1.96

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्याणां
निगमागम-सार-हृदयाणां पुरीपीठाधीश्वराणां
वरिष्ठजगद्गुरु शंकराचार्याणाम् अनन्त श्री
निरंजनदेव तीर्थवर्याणां शुभाशी: ।

श्री पंडित चुन्नीलाल श्यामजी त्रिवेदी की स्नेहमयी दौहित्री सुश्री अंजनी ओजा ने गुजराती की मूल पुस्तक "गीताभ्यास कर्मयोग" का हिन्दी अनुवाद किया है। गुजराती की मूल पुस्तक के भाव अनुवादित पुस्तक में पूर्णरूप से आ पाये है। गीता के कर्मयोग का विवेचन शास्त्रोक्त, मूलभूत सिद्धान्तों की रक्षा करते हुए किया है, इसलिए आधुनिक जीवन शैली में रहने वालों के लिये यह उपयोगी होगा। परिशिष्ट में स्मृति, दर्शन, पुराण आदि ग्रंथों मे से कर्मयोग के विवेचन के कारण पुस्तक का महत्व और बढ़ गया है।

कर्मयोग के अभ्यासी को यह पुस्तक सहायक होगी यह मेरा आशीर्वाद है। अनुवादक सुश्री अंजनी ओजा को शुभाशी: कि वह भविष्य में इस प्रकार के कार्य में अग्रसर रहे ।

[signature]

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपोद्घात

इस विश्व में आदिकर्ता ब्रह्मा से लेकर देखें तो देवयोनि, पितृयोनि, मनुष्य, पशु–पक्षी, कीट–पतंग असंख्य तरह–तरह के कम व अधिक बुद्धिवाले प्राणी हैं। ऐसे हर एक प्राणी की प्रवृत्ति को अलग–अलग देखें तो पता चलता है कि इन सभी के अलग–अलग कर्मों के पीछे एक मुख्य कारण रहा है। मुझे दुःख न हो–मुझे सुख मिले–यही प्राणिमात्र की प्रवृत्ति का कारण है।

सभी प्राणी इस सामान्य हेतु, अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए, दुःख दूर करने और सुख की प्राप्ति के लिए जन्म से मरण तक हर समय कर्म करते रहते हैं।

कोई भी प्राणी कोई भी मनुष्य दुःख की इच्छा नहीं करते अपितु वे दुःख दूर करने के सतत्–अटूट (जीतोड़) प्रयास करते हैं फिर भी दुःख मनुष्य को बिना प्रयत्न किये और बिना इच्छा के ही आ मिलता है।

सुख के लिए सतत (निरन्तर) इच्छा रखते हुए जिंदगी भर बिना विश्राम के मनुष्य प्रयत्न करता चला जाता है, फिर भी जिस सुख की कामना से वह अहर्निश मेहनत और प्रयास करता है वह मृगजल की भाँति उससे दूर और अधिक दूर जाता प्रतीत होता है। इस प्रकार का अनुभव प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवनकाल में होता है।

जीवन में मनुष्य को जो कुछ भी दुःख या सुख होता है वह आकाश में बसने वाले देव या पाताल में रहने वाले राक्षस या अन्य कोई अदृश्य शक्ति नहीं देती है। भगवद्गीता में साक्षात् श्रीकृष्ण ने कहा है कि मैं किसी का सुख–दुःख न ही लेता हूँ और न ही देता हूँ। मनुष्य अपनी प्रकृति कर्मानुसार सुख या दुःख पाता है।

इस बात से स्पष्ट है कि मनुष्य के सुख–दुःख का आधार उसके कर्म पर है। यदि यह बात सत्य है तो फिर एक महत्व का प्रश्न मनुष्य जाति के लिए उपस्थित होता है कि किस प्रकार के कर्म किये जाएँ जिससे अपने कर्मों से इच्छित सुख मिले और जिस दुःख की हम इच्छा नहीं रखते वह हमें न हो।

इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर अलग–अलग रूप में विश्व के अलग–अलग तत्वचिन्तकों ने विचार कर, निर्णय लेने के प्रयत्न किये हैं। इन सभी प्रयत्नों में कम या अधिक मात्रा में सत्य का अंश होने से उतनी सीमा तक इन तत्वचिंतकों का जन समाज पर उपकार रहेगा।

ऊपर के इस प्रश्न का बहुत असरदार उपयोगी, सरल और व्यवहार में लेने जैसा निर्णय यदि किसी एक पुस्तक में दिया है तो वह भगवद्गीता में है। भवगद्गीता का 'कर्मयोग', इस प्रश्न का समाज के लिये अति उपयोगी निर्णय है।

भगवद्गीता एक अत्यंत उपयोगी पुस्तक है। हिन्दूधर्म के स्तम्भरूप तीन महत्व

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के ग्रन्थों में से यह एक उपयोगी ग्रन्थ है। इस कारण से इसका पठन और पाठन प्रत्येक हिन्दू घर में हर रोज होता है। (यह बात १९३५।३६ में कही गई थी जो शायद आज उतनी सही न होते हुए भी यह तो स्वीकार करना पड़ेगा कि यदि युगानुसार पठन–पाठन रोज न भी होता हो तो भी प्रत्येक हिन्दू के मन में गीता के लिए एक विशिष्ट स्थान तो है ही।)

भगवद्‌गीता को एक धार्मिक ग्रन्थ मानने के कारण एक गैरसमझ, गलतफहमी उठ खड़ी हुई और वह यह कि व्यवहार में यह पुस्तक बहुत उपयोगी नहीं है ऐसी गलत धारणा ने समाज के कुछ वर्ग के मानस में घेरा डाल दिया है।

यह धारणा गलत है। भगवद्‌गीता एक बहुत ही व्यावहारिक ग्रन्थ है। राज्यकार्य में (State affairs), उद्योग में (Development of Industries), प्रजा की शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक उन्नति दिलाने वाले शैक्षणिक क्षेत्र में, देश के आरोग्य में, बुद्धिबल में और बीसवीं सदी के बढ़ते हुए जीवन कलह से निपटने में (Struggle of existence) और देश की सामाजिक और आर्थिक उन्नति की दिशा में सही मार्ग दिखानेवाला कोई अमूल्य ग्रन्थ यदि है तो वह भगवद्‌गीता ही है। इस प्रकार से दैनिक जीवन–व्यवहार में उपयोगी होने से और उसके सिद्धान्त मनुष्यों को बराबर याद रहें इसलिये इस ग्रन्थ की रोज पाठ करने की शुभ प्रवृत्ति की शुरुआत हुई होगी।

ऊपर का शुभ क्रम आज के समय में उल्टा हो गया है। समझ के बिना भी इस ग्रन्थ के पाठ करने से परमात्मा हमारी उन्नति करेंगे, ऐसे विचारों को ले इस अति उत्तम ग्रन्थ का अभ्यास कर उसे व्यवहार में लाने के बदले केवल पाठ मात्र करके ही आज का अधिकतर हिन्दू समाज संतोष मानता है।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्त्री–पुरुष, बालक–वृद्ध हर एक को कुछ एक कर्म करने होते हैं। ऐसे रोज के दैनिक जीवन में (Daily) कर्म कैसे करना चाहिए जिससे वह सुखकर हो और दुःख न उत्पन्न करे, यही भगवदगीता में बताया गया है।

'कर्मयोग' अर्थात कर्म करने में कुशलता। कुशलता का अर्थ है कि अपने कर्मो से इच्छित सुख मिले और जो न सोचा हो वैसा दुःख भी उत्पन्न न हो, उस प्रकार के कर्म करने की विद्या–कर्म करने का विज्ञान (Science of Karma)।

कर्म करने का यह विज्ञान मनुष्य बराबर समझे इसके लिए करने लायक कर्म कौन से हैं? कर्म क्या है? नहीं करने लायक कर्म कौन से हैं? अकर्म क्या है? इन सभी का नियमानुसार और बहुत बारीकी से भगवद्‌गीता में विचार किया गया है।

प्रत्येक मनुष्य दुख दूर करने तथा सुख प्राप्त करने के लिए कर्म करता है इसलिए सुख और दुःख का सही स्वरूप क्या है, इसका भी भगवद्‌गीता में विचार किया गया है।

कर्म का साधन (Instrument) करण इन्द्रियाँ हैं। एक दर्दी का सही आपरेशन करने से पहले डाक्टर अपने हथियारों को साफ (Sterlized) करता है। उसका

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कचरा दूर करता है। इसी प्रकार कर्म के कर्तारूपी डाक्टर को भी अपने हथियार रूपी इन्द्रियों का मल–रागद्वेष दूर कर उसे साफ करने की जरूरत पड़ती है और इन्द्रियाँ उपयोगी हथियार बनें, उसका विशेष ध्यान रखना पड़ता है।

कर्म करने के ऐसे साधन–इन्द्रियाँ–करण दो प्रकार के हैं एक बाह्य और दूसरे अंदर के अंतःकरण। ऐसे अंतःकरण में मन और बुद्धि का समावेश होता है। मन तथा बुद्धि को कैसे उन्नत करना है इस विषय पर भगवद्गीता में अच्छा रास्ता बताया है।

बुद्धि, मन, इन्द्रियों और शरीर को पूरी तरह से आरोग्य में रखकर प्रत्येक की कार्यक्षमता और शक्ति का विकास करके और उस शक्ति से जीवन के रोज के सामान्य कार्य करके थोड़ी मेहनत से और अल्प समय में अपनी उन्नति कर स्वयं सुखी होकर दूसरों को सुखी करने की विद्या कर्मयोग है।

किसी भी विद्या में, कला में या हुनर में यदि अत्यन्त सरल, सादी, व्यावहारिक और असरकारक कार्यपद्धति ढूँढ निकालना हो तो उसके लिये सतत अभ्यास (Constant Practice) अविरल निरीक्षण (Constant Observation) लम्बा अनुभव और इन सभी से सिद्धान्त निचोड़ने की आवश्यकता है। दुनिया की किसी भी वैज्ञानिक पद्धति (Scientific Method) की तरह भगवद्गीता में भी इन विषयों पर युग–युगान्तर तक विचार करने के पश्चात कर्मयोग की साधन पद्धति निश्चित की है। इस तरह भगवद्गीता, युगों से मनुष्य जाति द्वारा इकट्ठा किये हुए अनुभव (Accumulated Experience) होने से, दुनिया की किसी भी वैज्ञानिक पद्धति से सर्वोपरि है। इस कारण से जन समाज पर उपकार करने का शक्ति भी दुनिया की अन्य विद्या और विज्ञान से भगवदगीता में खूब अधिक है। इस कारण से ही भगवदगीता के लिए प्रत्येक हिन्दू समाज का पूज्यभाव है और अन्य देशों में भी भगवदगीता को मान और पूज्यबुद्धि से देखा जाता है।

भौतिक विज्ञान के नियमों से (Law of Physical Science) गीता में दर्शित कर्मयोग के सिद्धान्त अधिक निश्चित और अचल हैं। प्रयोगशाला में रसायनशास्त्र के प्रयोग करने वाले प्रत्येक रसायनशास्त्री (Chemist) के लिए, रसायनशास्त्र के तत्वों का ज्ञान होना जरूरी है। ऐसे ज्ञान के अभाव में रसायन तत्वों को प्रयोग करने वाला कभी–कभी अपने प्राण भी खतरे में डाल सकता है।

यह दुनिया भी एक बड़ी प्रयोगशाला है। जिन्दगी का छोटा–बड़ा प्रत्येक कार्य करके प्रत्येक मनुष्य को हर रोज उसमें छोटा–बड़ा प्रयोग करना होता है। इस प्रकार के प्रत्येक प्रयोग से मनुष्य का भावी जीवन मनुष्य स्वयं ही गढ़ता है।

मनुष्य अपना भावी जीवन अपनी स्वयं की इच्छा के अनुरूप बना सके उसके लिए उसे कर्मयोग के प्राथमिक सिद्धान्तों का ज्ञान पाना जरूरी है। इस प्रकार के ज्ञान के बिना दुनिया के व्यवहारिक कर्मो का करना, रसायनशास्त्र के ज्ञान के बिना प्रयोग करने से भी अधिक खतरनाक है।

इस दुनिया में अकस्मात जैसी कोई चीज ही नहीं है। अकस्मात् यानी कुछ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत्व किस परिस्थिति, संयोग में कैसे और किन नियमों के अन्तर्गत कार्य करते हैं उसका अज्ञान।

वैज्ञानिक शोध के प्रारंभिक समय में ऐसे बहुत अकस्मात् होते थे, परन्तु जैसे–जैसे विज्ञान के नियमों के ज्ञान का प्रचार हुआ, वैसे–वैसे दुनिया में से अकस्मात् कम होते गए।

कर्मयोग में भी वैसा ही है। दुनिया में जो दुःख दिखता है वह मनुष्य ने स्वयं मेहनत करके अपने अज्ञान के कारण खड़ा किया है। कर्म के और कर्मयोग के सामान्य नियमों के ज्ञान के बिना किए हुए कर्म से, सुख के बदले दुःख ही होता है।

आजकल की शिक्षा में कर्मयोग के इन सिद्धान्तों का ज्ञान नहीं दिया जाता और इस प्रकार के ज्ञान के बिना कोई भी शिक्षा पूरी हुई हो, ऐसा नहीं कह सकते।

कर्मयोग के सिद्धान्तों के ज्ञान के अभाव में मनुष्य कितना ही पढ़ा–लिखा क्यों न हो पर वह घबराता है और असमंजस में पड़ता है। गीता में दर्शित अर्जुन की मनोदशा इसी सत्य की प्रतीति है। अर्जुन स्वयं एक राजकुमार थे। वेदशास्त्रों, धर्मशास्त्रों और न्यायिक शास्त्रों का उन्होंने बहुत अच्छा अभ्यास किया था। द्रोण जैसे महारथी गुरु के पास उन्होंने शस्त्र विद्या प्राप्त की थी। शरीर से भी वे सशक्त थे। अर्जुन को इतनी शिक्षाएं लेने के पश्चात् भी जब कुरुक्षेत्र के संग्राम में युद्ध का समय आया तब जैसे छननी में से सारा पानी निकल जाता है वैसे उनका सारा ज्ञान निरुपयोगी पड़ा रहा। कर्तव्याकर्तव्य के निर्णय नहीं कर सकने पर, उनका सारा उत्साह टूट पड़ा और उन्हें विषाद हुआ।

अपने आजकल के शिक्षित वर्ग की स्थिति कुछ अंश में, अर्जुन जैसी है। जिंदगी के अच्छे से अच्छे वर्षों तक सतत अभ्यास कर एक डिग्री तो प्राप्त करते हैं परन्तु अर्जुन की माफिक जैसे ही संग्राम करने का, जीवन–संग्राम की शुरुआत का प्रसंग आता है तो अर्जुन की तरह उनका उत्साह भी टूट जाता है और उसके बदले उन्हें विषाद उत्पन्न होता है। ऐसे वर्ग के लिए भगवद्गीता के कर्मयोगाभ्यास के अलावा कोई और विशेष उपयोगी साधन नहीं मिल सकता। कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में कर्मयोग के ज्ञान से जैसे अर्जुन ने कौरवों को पराजय कर विजय प्राप्त की, उसी प्रकार से युवकों को यदि दुनिया के कुरुक्षेत्र में, जीवन कलह–संग्राम में हमेशा के लिए विजयी होना है, तो श्रीमदभगवद्गीता के कर्मयोग के अभ्यास के सिवा उनके लिए दूसरा एक भी साधन नहीं है।

जगत के जीवनसंग्राम में विजय की प्राप्ति के लिए कर्मयोग सिद्धान्त का ज्ञान जितना उपयोगी है, जितना सचोट और असरकारक है उतना दूसरा और कोई ज्ञान नहीं है। इस कारण से कर्मयोग का अभ्यास प्रत्येक व्यक्ति के लिए और विशेष रूप से अपने युवा वर्ग के लिए तो बहुत ही उपयोगी है।

भगवद्गीता दुनिया के महत्व के ग्रन्थों में से एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रन्थ होने के कारण हिन्दुस्तान के अलावा यूरोप, अमेरिका, जर्मनी, फ्रांस में भी इसका अभ्यास होता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिन्दवासी पश्चिम के देशों को भौतिकतावाद में मानने वाले और अपने को धर्मप्रेमीं कहलवाने में गौरव अनुभव करते हैं। धर्म तो हिन्द का प्राण है, इसके बावजूद भौतिकवादी देशों ने अपनी धर्म पुस्तक बाइबिल के ज्ञान के प्रचार के लिए कैसा और कितना प्रयत्न किया है और अभी भी किए जा रहे हैं उसका अपने देशवासियों को शायद ही ख्याल होगा। पश्चिम देशों के इस दिशा में प्रयास के सामने भारत में गीता–ज्ञान प्रचार की दिशा में कुछ भी नहीं किया गया है, यह कहना गलत नहीं होगा।

इग्लैंड में उनके धर्मपुस्तक बाइबिल के प्रचार अनुसंधान में सन् १८०४ से अब तक (यह बात सन् १६३४ में लिखी गई है) ब्रिटिश एन्ड फारेन बाइबिल सोसाय़टी नामक संस्था कार्य कर रही है। ब्रिटिश राज्य में इस सोसायटी की ११२७–२८ में ही ५१४२ शाखाएं थी। इस संस्था ने ६०४ भाषाओं में बाइबिल का प्रचार किया था और १६२७–२८ में इसने करीब–करीब ६० लाख रुपये का खर्च इस प्रचार के लिये किया था। इसके सिवा अन्य देश भी ईसाई धर्म मानते हैं। इंग्लैंड में ऐसी अनेक संस्थाएं हैं उनमें से एक महत्त्व की संस्था की धार्मिक–साहित्य–प्रचार की प्रवृत्ति की यह रूपरेखा है। इस संस्था ने १६३५ तक ३८५ मिलियन बाइबिल की पुस्तकों को प्रकाशित किया है।

इसी सोसायटी की तरह अमेरिकन बाइबिल सोसायटी नाम की संस्था भी प्रतिवर्ष लाखों डालर बाइबिल के प्रचार के लिए खर्च कर रही है। इनके अलावा जर्मनी, फ्रांस, स्वीटजरलैण्ड, अमेरिका आदि देशों में भी हजारों व्यक्ति बाइबिल के प्रचार–प्रसार के कार्य में जीतोड़ मेहनत कर रहे हैं। इन सब देशों की तुलना में धर्मप्रेमी देश–भारतवर्ष में गीता जैसे ग्रन्थरत्न के प्रचार के लिए कुछ भी नहीं किया गया है और कुछ हो भी नहीं रहा है यह शोचनीय बात है।

पश्चिम के देशों में राज्य की तरफ से ही एक धर्म स्वीकार किया जाता है इस कारण से उन राज्यों में जैसे न्याय (Judicial Administration) आदि राज्य के विभाग हैं वैसे ही धर्म–प्रचार–विभाग भी होता है। इस विभाग के (Collector Commissioner) आदि अफसरान नियुक्त किए जाते हैं और उन्हें राज्य व्यवस्था में अपने अभिप्राय–सुझाव देने का हक होता है।

ब्रिटिश हिन्द में भी गिने–चुने अंग्रेज होने के बावजूद उनको धर्म के विषय में ज्ञान देने तथा धार्मिक क्रिया करवाने के लिए हिन्दुस्तान में भी एक ऐसा विभाग है। इस विभाग के अफसरान राजपत्रित अफसर होते हैं। ऐसे अफसरान की नियुक्ति हिन्द सरकार के सचिव द्वारा की जाती है। राज्यपाल और वाइसराय जैसे उच्च अधिकारी भी रविवार को चर्च में जाते देखे जाते हैं। हमारे यहाँ के राजा महाराजाओं को यदि छोड़ दें तो भी अपने यहाँ के पढ़े–लिखे वर्ग में से कितने मन्दिर में जाते होंगे?

भौतिकतावाद के पुजारी माने जाने वाले देशों में भी धर्म के प्रचार के लिए और धार्मिक ग्रन्थों के प्रचार के लिए इस प्रकार की योजनाएं हैं, जबकि धर्म के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

घर (House of Religion) अपने हिन्दुस्तान में क्या स्थिति है और वह कितनी शोचनीय है उसका अंदाज अपना धनिक और विद्वान वर्ग जितना जल्दी करें उतना अच्छा है।

भारतवर्ष में पहले धर्मविद्या के विज्ञान के प्रचार हेतु देश के चार कोनों में चार महान और समर्थ शंकराचार्य की अध्यक्षता में चार विद्यापीठ थी जहाँ उनकी देखरेख में हजारों निःस्वार्थ सन्यासी तथा लाखों वेदशास्त्रसंपन्न ब्राह्मण जनसमाज को भगवद्गीता तथा अन्य स्मृति आदि ग्रन्थों का ज्ञान देते थे। ऐसे लोग शुरू से ही त्यागी और उच्च प्रकार के चरित्रवान होने से अपने ज्ञान से लोगों का जनसमाज का अज्ञानमय अंधकार दूर करते थे और अपने निःस्वार्थी और उच्च जीवन से समाज के पास एक उच्च आदर्श रखते थे। आज जो सुधरे हुए लोगों में गिने जाते हैं, वह जब जंगली दशा में थे तब भारतवर्ष में रामराज्य प्रसरित था। योगवसिष्ठ, भगवद्गीता, महाभारत जैसे अमूल्य ग्रन्थरत्न तैयार होते थे तथा उसके पठन–पाठन तथा आचरण से देश आबाद और समृद्धिवान होता जाता था।

संयोग बदलते ही हिन्द की स्थिति बदली। एक या दूसरे कारणों से लोगों की त्याग, तप और संयमीवृत्ति कम होती गई। धर्माचार्यो में भी विद्या घटती चली गई। ऐशोआराम बढ़ा और बढ़ते ऐशोआराम (Luxury) ने अपने अधिकतर धर्माचार्यो को, ब्राह्मणों को लालची, लोभी और स्वार्थी बना दिया। उनके चरित्र में ऐसे बदलाव होने से समाज का उनके प्रति जो पूज्यभाव था वह कम हो गया।

धर्म की प्रखर व्याख्या करने वाले कम होते चले गये। लोगों की धर्म के संबंध में बढ़ती हुई शंकाओं का श्रुति और युक्तिपूर्वक समाधान करने वाले आचार्य और ब्राह्मण कम हो गये। धर्म विज्ञान मिट कर केवल श्रद्धा रूप रह गया। समय के चलते श्रद्धा भी केवल अंधश्रद्धा बन रह गई। अंधश्रद्धा भी आखिर में केवल भ्रम था वह रूप में परिणिति हुई। इस तरह होने से धर्मभावना को बड़ा आघात लगा।

अभी कुछ समय से .... इस स्थिति में बदलाव आया है। समाज के कुछ एक शिक्षित वर्ग के लोगों में अपने धर्मग्रन्थों के प्रति पूज्यभाव उत्पन्न हुआ है। इन लोगों को यदि सादी और सरल भाषा में सनातन धर्म के सिद्धान्तों को तथा अपने मुख्य ग्रन्थों को समझाया जाय तो वे ऐसा ज्ञान लेने में तत्पर हैं।

ऐसे लोगों को अपने धर्म के विषय में ज्ञान संपादन करने में भी बहुत कठिनाई पड़ती है। धर्म के मुख्यतः ग्रन्थ संस्कृत भाषा में हैं तथा उन पर लिखे भाष्य सैकड़ों वर्ष पहले लिखे होने के कारण आज की परिस्थिति में पुराने प्रतीत होते हैं।

सनातन धर्म के काफी धार्मिक ग्रन्थ बहुत पहले लिखे गये हैं। ऐसे ग्रन्थों में स्वाभाविक है कि उनमें उस समय के समाज के प्रश्नों की चर्चा करने मे आई हो और उसके निर्णय भी उस समय की परिस्थिति के आधार पर हुए हों और उनमें उस समय के प्रचलित पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया हो। ऐसे पारिभाषिक शब्दों के अर्थ को समझने में आजकल के अच्छे संस्कृत के ज्ञाता को भी मुश्किल हो जाये तो फिर जो संस्कृत नहीं जानता उनकी तो बात ही क्या करनी।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पहले की शिक्षा पद्धति गुरुकुल में गुरु के पास रहकर शिक्षा पाने की थी। इस कारण से ऐसे ग्रन्थों की शैली भी उस समय के अनुसार पसंद की थी। ये और ऐसे अनेक कारणों से सैकड़ों वर्षो पहले रचे हुए धर्मग्रन्थों के सिद्धान्त आज के युग में उपयोगी होने के बावजूद भी आज का शिक्षित वर्ग उसे सरलता से समझ सके ऐसी भाषा में नहीं होते हैं। इसके कारण आज का शिक्षित वर्ग सहजता सरलता से समझ सके ऐसी शैली में तथा ऐसी भाषा में अपने धर्मग्रन्थों और भाष्यों को लिखने की आवश्यकता है।

आज के जमाने में गंदे साहित्य का प्रकाशन जोर से बढ़ रहा है। दैनिक, साप्ताहिक, मासिक तथा वार्षिक वर्तमान पत्रिकाओं और उसके अंकों में प्रजा की थोड़ी बहुत रही–सही धर्मभावना पर प्रहार करने में हजारों अर्घदग्ध लेखक लगे हुए हैं। इस कारण से प्रजा में उच्च स्तर के संस्कारी साहित्य के प्रति जो कुछ बचा–खुचा मान सम्मान था वह भी जाने लगा है। ऐसी परिस्थिति में अपने विद्वान, धनिक और पाठक वर्ग का पहला कर्तव्य है कि प्रजा के समक्ष उच्च स्तर का साहित्य सरल, सादी तथा समझ में आने वाली भाषा में रखकर उनकी रसवृद्धि को अच्छी दिशा दें।

भगवद्‌गीता एक अमूल्य ग्रन्थरत्न है और उसका ज्ञान, सादी, सरल और सामान्य भाषा में शिक्षित भाई–बहन समझ सकें इस हेतु से इस लेखक ने गीताभ्यास ज्ञानयोग नामक पुस्तक प्रकाशित की थी। इस पुस्तक को शिक्षित वर्ग से लेखक की आशा से कई गुना अधिक प्रोत्साहन मिला। इतना ही नहीं गीताभ्यास ज्ञानयोग की पद्धति (शैली) पर कर्मयोग पर भी लिखने का अनुरोध प्राप्त होने से यह पुस्तक जन समाज के समक्ष प्रस्तुत करता हूँ।

भगवद्‌गीता की पुस्तक अति उपयोगी होने से साक्षात श्रीकृष्णचन्द्र ने ही गीता में कहा है कि जो महापुरुष, मेरे श्रीकृष्ण के प्रति परम भक्तिभाव से गीताभ्यासरूपी यह परम गुह्यज्ञान मेरे भक्तों को सिखायेगा–जो इस ज्ञान का जगत में प्रचार करेगा वह मुझको ही प्राप्त होगा। प्रभु की उस पर कृपा रहेगी, उसमें कोई शंका नहीं है।

गीता का ज्ञान सर्वदेशीय है। रोज के जीवन व्यवहार में–एक छोटे से छोटे कार्य से लेकर बड़े से बड़े महान कार्य में इसका उपयोग हो उसके लिये कर्म करने में कुशलता प्राप्त करके कर्ता निष्काम होकर कर्मयोगी बनकर–अपने अहंभाव को त्यागकर–राग और द्वेष को छोड़कर लाभालाभ के स्वार्थी विचारों की दृष्टि को दूरकर, अपने को मिलने वाले कर्तव्यकर्मों को कर्तव्यबुद्धि से स्वधर्मपालन की बुद्धि से, सामान्य जनसमूह के कल्याणार्थ, इस विश्व को विश्वनाथ का मंदिर मानकर और उसमें विचरने वाले प्रत्येक प्राणी को प्रभु की जीवंत प्रतिमा मानकर, उस प्रतिमा का पूजन–अपने स्वकर्म द्वारा करके संसिद्धि को प्राप्त करे, परम शांति को पाये, ऐसी शुभेच्छा और शुभाशीष के साथ कर्मयोग नामक यह पुस्तक पाठकवृन्द के लाभ के लिए–जनसमूह की उन्नति और लोककल्याणार्थ श्रीपरमात्मा के चरणारविंद में अर्पण करता हूँ।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रस्तावना

विद्यानुरंज चुन्नीलाल शामजी त्रिवेदी—मेरे परमपूज्य नाना का जन्म गुजरात के भावनगर शहर में संवत १६४३ के माघ सुदी पूर्णिमा के दिन हुआ था। उनकी माँ का नाम मणिबेन और पिताश्री का नाम शामजी भाई था। सात वर्ष की छोटी उम्र में पिताजी के स्वर्गवासी होने से पढ़ाई आदि का कार्य ननिहाल में हुआ। सन् १६०५ ई० में बम्बई विश्वविद्यालय की मैट्रिक परीक्षा और १६०८ ई० में बम्बई हाईकोर्ट डिस्ट्रिक्ट प्लीडर की परीक्षा अच्छे अंकों से उत्तीर्ण की और १६०६ में हाईकोर्ट प्लीडर की परीक्षा पास की। वे लंदन के बार इक्जामिनेशन (Bar Exámination) की भी तैयारी करते रहे परन्तु उसे पास करने के लिए उनका लंदन में डेढ़ वर्ष रहना जरूरी था, परन्तु १६०४ में एंग्लोफ्रैन्कों जर्मन लड़ाई के कारण हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों के लिए लंदन में सुविधा कम कर दी गई थी और खर्चा भी बहुत अधिक होने से उन्होंने यह विचार स्थगित कर दिया। सन् १६०६ से १६०८ तक वे बम्बई में सेठ गोकुलदास तेजपाल हाईस्कूल में शिक्षक रहे और १६०६ से वकालत शुरु की। वे निडर, स्वतंत्र और मिलनसार वकीलों में गिने जाते थे और उनकी बहुत अच्छी प्रैक्टिस थी। सन् १६१४ में उन्हें कोम्बे राज में पब्लिक प्रोसेक्यूटर नियुक्त किया गया और तुरन्त ही प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट बनाया गया और १६१७ में न्यायाधीश (Judge) के रूप में नियुक्ति की गई।

१६२४ में सिविल जस्टिस कमेटी ने कुछ एक सुझाव दिए थे, उन सुझावों को श्री त्रिवेदी जी ने अपनी कोर्ट में पहले ही प्रयोग में लिए थे।

कोम्बे शहर के सर्वे (माप) का कार्य भी उन्होंने ही किया था। रजिस्ट्री दफ्तर भी इन्हीं के अधीन था। बम्बई काटन एन्ड प्रेसिंग फैक्ट्री एक्ट के तहत वे निरीक्षक (Inspector) भी नियुक्त किए गए।

सामाजिक कार्यों में कोम्बे के दुष्काल के समय घास की कमी के कारण प्रत्येक संकट निवारण समिति के वे अग्रगण्य सदस्य रहे और धन को इकट्ठा कर उसके सदुपयोग में आगे का हिस्सा लिया। ऐसे कार्यों में यदि अप्रिय बनना पड़े तो भी वे पीछे नहीं हटे। सस्ते घास की योजना या मुफ्त दवाइयाँ बाँटने के सभी तरह के कार्यों में वे आगे थे। १६१४ में विश्वयुद्ध के समय भी उनका अच्छा योगदान रहा और इस कारण उनको २६–२–१६१६ को गवर्नर जनरल इन कौंसिल के हुक्म से बम्बई सरकार की तरफ से योग्यता प्रमाण पत्र (Certificate of Merits) दिया गया। सन् १६२७ में गुजरात में अतिवृष्टि के समय भी प्रजा को राहत पहुंचाने के कार्य में आपने मुख्य भूमिका निभाई।

धर्म के संबंध में सम्पूर्ण ज्ञान पाने के लिए आपने हिन्दूधर्म की पुस्तकों के उपरान्त तुलनात्मक अभ्यास के लिए बौद्ध, जैन, इस्लाम और पारसी धर्म की

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महत्वपूर्ण पुस्तकों को पढ़ा। कोम्बे थियोसाफिकल सोसायटी के वह अध्यक्ष (President) रहे। फ्री मेसोनरी (Free Masonary) ने उनको (Master Mason) मास्टर मोसन की डिग्री दी थी। सन् १६१७–१८ के श्रीमाली अभ्युदय में पुनर्जन्म के विषय में लेखमाला इन्हीं की थी। समालोचक मासिक पत्रिका के मई १६२५ के अंक में 'गीताभ्यास उसकी आवश्यकता और पद्धति' नामक उनका लेख छपा था।

इसके अलावा इनकी अन्य कई पुस्तकें छपी थीं। इनका देहान्त जुलाई १६३७ में ५० वर्ष की आयु में ही हो गया। उनका कोम्बे शहर में इतना तो मान था कि उनकी मृत्यु के समय पूरा शहर तीन दिनों तक बन्द रहा था, उनकी आत्मा की शांति के लिए मन्दिरों और मस्जिदों में प्रार्थना सभाएं रखी गई थी और कितने लोगों ने उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित की थी। उनमें से एक जो हमारी मातुश्री को अभी भी आंशिक रूप से याद है, वह इस प्रकार गुजराती में ही प्रस्तुत है:–

प्रभुजी तारे खोले आव्यो गीता नो गानारो।

ब्रह्मज्ञान मां रची–पची रहेतो तेजोमय एक तारो।

आत्मने शांति सदा देजे अंजली हृदय तणि ले जे।।

समाज के सभी वर्गों के व्यक्तियों ने एक साथ मिलकर, जाति–पाँति–धर्म आदि का भेदभाव रखे बिना उतनी प्रबल भावना एक जज के लिए व्यक्त की हो, ऐसा देखने और सुनने में नहीं आया, परिकथा जैसा ही लगता है।

एक अन्य बात जो हमारे मामाश्री को याद है वह भी उनके व्यक्तित्व को उजागर करती होने से उसका उल्लेख किए बिना नहीं रहा जाता।

कोम्बे में तब फाँसी की सजा दी जाती थीं। कोली जाति के एक खूनी को उन्हीं के द्वारा फाँसी की सजा दी गई थी। उसी को अमल करने से पहले खूनी गुनहगार से पूछा गया कि उसकी आखिरी ख्वाहिश क्या है तो उसने कहा कि साहब मेरे लिए अपना मानूँ वह आप ही सब कुछ हो, आप ही मेरा उद्धार कर सकते हो, आप जैसे पवित्र साहब को मेरा निवेदन है कि कुछ दिनों के पश्चात आने वाली काली चौदस वाले दिन को (दीवाली के एक दिन पहले) आपके यहाँ बनी सभी मिठाइयों और अन्य वस्तुओं को लेकर गाँव के तालाब के किनारे आयें कुएं पर संध्या समय दिया प्रकट कर रख आना तभी ही मेरी आत्मा को मुक्ति मिलेगी। फाँसी के कुछ दिनों पश्चात् दिए हुए वचन अनुसार नानाजी स्वयं अपने हाथों से थाली में मिठाई आदि पकवान ले निर्देशित स्थान पर घी का दिया जलाकर मिठाई आदि छोड़ आए और मंदिर जाकर उस गुनहगार की आत्मा की शान्ति–मुक्ति के लिए प्रार्थना की और मानवता की फर्ज अदा करने का आत्मिक आनंद पाया। फाँसी की सजा दिलाने में जो मूल रूप से जिम्मेदार थे वैसे अफसर को, मृत्यु के पश्चात अपने आत्म उद्धार की जिम्मेदारी देने वाले, गुनहगार की नजरों में, इस अफसर का व्यक्तित्व कितना उदार रहा होगा, यह तो समझा जा सकता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

माधु नाम का एक चपरासी नानाजी का काम घर पर भी करता था। फाइलें लाना, ले जाना, किताबें देना, उठाना, रखना, चाय पानी का ध्यान आदि सभी छोटे–बड़े काम माधु चपरासी ही करता था। जब वह बीमार हुआ तो नानाजी ने अपने बेटों जैसी ही उसकी देखभाल कर उसे स्वस्थ बनाया। एक दिन सुबह चाय देते समय चाय के कप प्लेट गिर गए और नानाजी पर गरम चाय गिर गई और काँच के कप प्लेट भी टूट गए। संयोग से १५ दिन के अंदर–अंदर ही दो दिन के बुखार के पश्चात् नानाजी का देहावसान हो गया। माधु के मन में निश्चय हो गया कि उसकी ही गलती से यह अपशगुन हुआ। उसने सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया और कितना समझाने के बाद भी उसे वापस नहीं लिया। १५ दिन के अंदर–अंदर वह भी यह कहते हुए कि साहब उसकी राह देखते होंगे, उनके ही पथपर चल बसा।

वास्तव में ही गीता का गाने वाला, जीने वाला और ब्रह्मज्ञान में रचा–पचा रहने वाला तेजोमय एक तारा चला गया परन्तु अपनी सुवास और प्रकाश सभी के लिए छोड़ गया।

सन् १६७६ में जब मैं डाइरेक्ट्रेट आफ रेवेन्यू इन्टेलिजेन्स में थी तो नानाजी के मरण के करीब ४० वर्ष के पश्चात् भी उनकी कार्यशैली कैसी रही होगी उसका अनुभव मुझे तब हुआ जब एक बहुत विकट और कठिन मामले में जाँच पड़ताल के दौरान एक व्यक्ति विशेष का सही बयान मिलना असंभव–सा लगने लगा। तब संयोग से उस व्यक्ति से गुजराती में बात करते–करते उसे जब यह पता चला कि मैं स्वर्गीय चुनीलाल शामजी कोम्बेवाले की पौत्री हूँ तो उसने अपने आपको पूर्णरूप से हमारे हवाले कर दिया यह कहा कि मुझे पूर्ण विश्वास है कि चुनीलाल जी की पौत्री वचनभग नहीं करेंगी और जो वास्तविक रूप से सही होगा वही करेंगी। उसके इस प्रकार के बयान से हमारी विंग का काम बहुत ही सरल हो गया। मरण के ४० वर्ष पश्चात् भी नानाजी की प्रतिष्ठा हमारे लिए प्रेरणारूप बन गई।

नाना जी के परमप्रिय और पूज्य श्रीकृष्णचन्द्रजी से विनम्र प्रार्थना है कि नाना श्री का ज्ञान और जीवन शैली के कुछ रंग हमारे जीवन में भी उतरें। मेरे नाना श्री चुनीलाल शामजी त्रिवेदी (जज कैम्बे कोर्ट) द्वारा रचित 'गीताभ्यास कर्मयोग' पुस्तक की मूल गुजराती में पढ़ने का सुअवसर अभी हाल ही में मिला। ऐसा लगा कि जैसे सुचारु रूप से जीवन जीने की और उसे उत्कृष्ट बनाने की कुंजी मिल गई। जिसने गीता के कर्मयोग को जीवन में उतारा हो और जिसने हिन्दू शास्त्रों के साथ अन्य धर्मों की पुस्तकों का अध्ययन किया हो वही इतनी सादी, सरल और व्यावहारिक भाषा में गीता के गूढ़ रहस्यों को सभी समझ सकें वैसी शैली में लिख सकता है। पढ़कर लगा कि इस पुस्तक के अभ्यास से ही जीवन की निराशा को आशा में बदला जा सकता है, जीवन को सुचारु और सुन्दर बनाया जा सकता है, जीवन के उत्कृष्टतम पहलुओं तक पहुंचा जा सकता है। लगा कि इतनी महत्त्व की और उपयोगी बात इतनी सरल ढंग से कही गयी है कि इसे अधिक से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
अधिक लोगों तक पहुँचना चाहिए। इच्छा हुई कि क्यों न इसका हिन्दी में अनुवाद किया जाए।

लेखन एक कला है जिससे मैं पूर्णरूप से अनभिज्ञ हूँ। इस बात को जानते हुए भी 'गीताभ्यास कर्मयोग' का हिन्दी में अनुवाद करने का दुस्साहस किया । ईश्वर प्रेरणा से, उसी की कृपा से, कितने अन्य लोगों की शुभकामनाओं और सहयोग से कार्य संपन्न भी हो गया। टाइपिंग और प्रूफ रीडिंग के कार्य में अथाह परिश्रम एवं सहयोग देने में श्री भगवान प्रसाद पटेल और श्री प्रकाशचन्द्र मिश्र का नाम सर्वप्रथम है। श्री ए. पी. श्रीवास्तव के माध्यम से चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी के श्री बृजमोहन जी से सम्पर्क हुआ और उन्होंने बहुत ही आदर, प्रेम और निष्ठा से मेरे इस प्रथम प्रयास को प्रोत्साहित करते हुए पुस्तक को पब्लिश करने की सम्पूर्ण जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। मैं आप सभी का पूर्ण हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि जो भी इस पुस्तक को पढ़कर उसे जीवन में उतारने का अभ्यास करेगा वह चाहे जीवन के किसी भी क्षेत्र में किसी भी मोड़ पर क्यों न हो अवश्य ही उसके मन में भी अर्जुन की तरह अपने स्वकर्म के प्रति श्रद्धा बढ़ेगी और उसके आत्मविश्वास में वृद्धि होगी। जीवन को जीने की उसकी दृष्टि में प्रभावशाली बदलाव आयेगा।

यह अनुवाद मेरा पहला प्रयास होने से पाठकवृंद इसमें भाषा की त्रुटियों को नज़रअंदाज करेंगे। मेरा विशेष प्रयत्न रहा है कि मूलकृति के भावों में और विचारधारा में कहीं बदलाव न आने पाये। इस कारण गुजराती में प्रचलित फारसी और उर्दू के शब्दों के प्रयोग को वैसे ही रहने दिया है। इस पुस्तक में मुख्यतः तो इसके भाव हैं जिसका पूरा श्रेय मेरे नानाश्री को ही जाता है । अनुदित पुस्तक में जो कुछ अच्छाई दिखती है तो उसका श्रेय भी मूलकृति के कर्ता को ही है। मेरा प्रयत्न केवल उनके भावों को अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाने का ही है।

अन्त में मैं आपसे एक रहस्य की बात का उल्लेख करना चाहूँगी। यह मेरा सौभाग्य रहा है कि मुझे परमपूज्य अनन्तश्री जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीनिरंजनदेव तीर्थ जी महाराज गोवर्धन मठ, पुरी से दीक्षा मिली फिर भी ऐसे महान गुरु की शिष्या कहलाने लायक मेरा कोई भी कार्य नही रहा परन्तु पूर्व संस्कारों के कारण ही गुरुजी का इतना स्नेह और अनुकम्पा मिली कि मेरे स्वयं के शिष्या के दायित्वों में त्रुटि के बावजूद उनका स्नेह और मार्गदर्शन मिलता ही रहा। मेरे इस प्रथम प्रयास को प्रोत्साहित करने हेतु उनके अत्यधिक अस्वस्थ रहने के पश्चात् भी मेरे अनुदित पुस्तक को उन्होंने सुना और अमूल्य आशीर्वचन लिख दिये। मुझे पूर्ण विश्वास है कि उनकी कृपा से उनके आशीर्वचनों को कार्यान्वित कर पाउँगी।

— अंजनी ओज़ा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषय-सूची

●

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकरण–१

श्रेय, सुख और शांति की खोज (शोध) में

इस सृष्टि की जब से शुरुआत हुई तब से अब तक नाना प्रकार के प्राणी उत्पन्न हुए और अभी भी होते जा रहे हैं। बाह्य दृष्टि से देखने से, शरीर के संघटन में, बुद्धि के विकास में सृष्टि के प्रत्येक प्राणी में बहुत फर्क (भेद) है। चींटी, मकोड़े और वैसे ही प्राणियों से पक्षी अधिक विकसित, सुन्दर और मनोहर दिखते हैं। पक्षियों से अधिक प्राणी और प्राणियों के मुकाबले में मनुष्य कुदरत की कृति के अधिक सुन्दर नमूने हैं। मनुष्य कुदरत की कृति का आखिरी नमूना (Final Product) नहीं है। विकासक्रम में मनुष्य से भी देव आदि उत्तम प्रकार की परमेश्वर की पैदाइश हैं।

प्राणियों के बाह्य स्वरूप, रंग में जैसी भिन्नता है वैसी ही उनकी प्रवृत्ति, उनके कर्म में भी भिन्नता है। एक–एक से अलग वर्ग के प्राणियों की प्रवृत्ति में भिन्नता होती है ऐसा ही नहीं परन्तु एक ही वर्ग के, उदाहरण के लिए मनुष्य कहे जाने वाले प्राणियों में भी एक मनुष्य की प्रवृत्ति से दूसरे मनुष्य की प्रवृत्ति अलग होती है। इस प्रकार से सृष्टि पर के तमाम प्राणियों की प्रवृत्ति एक दूसरे से भिन्न प्रकार की होती है। इतना ही नहीं परंतु कई–एक बार ऐसी प्रवृत्ति एक–एक से विरुद्ध स्वभाव की भी होती है।

सृष्टि के तमाम प्राणियों की प्रवृत्ति (Field of Action), कर्म अलग–अलग प्रकार के होते हैं फिर भी उन प्रवृत्तियों का हेतु एक ही तरह का होता है। अपना श्रेय साधना–अपने लिए सुख की प्राप्ति–शांति में रहना–यह अलग–थलग दिखने वाले प्राणियों की प्रवृत्ति का एक सर्वसामान्य हेतु (Common Goal) है। छोटी से छोटी चींटी, चींटा, पेट के बल चलने वाले कीड़ों–मकोड़ों का कार्यकलाप भी अपने लिए खुराक प्राप्त करना और वैसा करके सुखी होने का होता है। जंगल में बसने वाले तमाम प्राणियों की प्रवृत्ति भी दुःख की निवृत्ति कर सुख की प्राप्ति की ओर रहती है। मनुष्य की प्रवृत्ति भी सुख–अखंड सुख–प्राप्ति हेतु होती है। देवलोक में बसने वाले देवों की यहाँ तक कि देवों के भी देव इन्द्र की भी तमाम प्रवृत्ति अपने लिये सुख प्राप्ति और उस प्राप्त सुख को संभालकर रखने की तरफ प्रेरित रहती है।

पेट के बल रेंगते चींटे में और देवों के देव इन्द्र में महान फर्क मिलता है। चींटे का वर्ग विकासक्रम की सीढ़ी के सबसे निम्न सोपान रूप है जबकि इन्द्रदेव वर्ग उस विकासक्रम की सीढ़ी के ऊपर के सोपान रूप है। चींटा, कुदरत की कृति का कच्चा रूप है (Crude form) जबकि मनुष्यों और देव में प्रभु की प्रभुता विशेष प्रकाशित होती है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हर प्राणी में ऊपर दर्शित फर्क है फिर भी उनकी प्रवृत्ति के अंतिम हेतु उद्देश्य के दृष्टिबिन्दु से देखें तो एक चींटे में, पशु में, मनुष्य में, देव में किसी भी प्रकार का फर्क नहीं है। प्रत्येक की प्रवृत्ति अलग होगी फिर भी उसका अंतिम उद्देश्य हेतु (Goal) तो एक ही है–श्रेय की–सुख की–शांति की, दुःख निवृत्ति की इच्छा–आकांक्षा, साधना, एक चींटें से लेकर मनुष्य तथा देव तक के सभी प्राणियों में समान है।

यह सिद्धान्त शुरुआत में ही ठीक से समझने की, समझकर उसका सत्य मन में बसाने की, बसाने के बाद अपने प्रत्येक कार्य में, उसे आचरण में उतारने की आवश्यकता है। सामान्य दृष्टि से यह सिद्धान्त बिल्कुल निराला और अलग लगता है फिर भी यही सिद्धान्त कर्म की, कर्मयोग की कुंजी समान है। इस सिद्धान्त का दूसरे ढंग से अर्थ करें तो जिस हेतु से जिस हक़ से इस दुनिया में एक चींटे का जन्म होता है और वह जीता है उसी हेतु से और हक़ से सृष्टि के प्रत्येक प्राणी, मनुष्य तथा देव का भी जन्म होता है और वे जीते हैं।

यह सृष्टि एक विशाल पाठशाला है। इस पाठशाला में बाल मंदिर से लेकर हाईस्कूल, कालेज, बी०ए०, एम०ए०, पी०एच०डी० तक और अन्य सभी प्रकार की शिक्षा के साधन हैं। जैसे माता–पिता अपने बच्चों को सामान्य शाला में प्रशिक्षण के लिये भेजते हैं उसी प्रकार इस सृष्टि की महान शाला में पशु–पक्षी तथा मनुष्य रूप बच्चों को, पिता रूप परमेश्वर प्रशिक्षण लेने भेजते हैं–जन्म देते हैं।

सामान्य शाला, स्कूल में जैसे अलग–अलग वर्ग में विद्यार्थी होते हैं उसी तरह इस सृष्टि की स्कूल–शाला में भी विकासक्रम के अलग–अलग वर्गों में, क्लासों में अलग–अलग प्राणी, विद्यार्थी हैं। अलग–अलग कक्षा में रहते हुये भी जैसे प्रत्येक विद्यार्थी का विद्या सम्पादन करने का एक सामान्य हेतु–उद्देश्य होता है उसी प्रकार सृष्टि में भी निम्न तथा उच्च स्थिति के प्राणियों का भी सामान्य हेतु–श्रेय की साधना तथा सुख की प्राप्ति करने का ही है।

विद्यार्थियों को विद्या सम्पादन करने में मदद मिले यह सामान्य स्कूल का, विद्यालय का उद्देश्य रहता है। सृष्टि का प्रत्येक प्राणी सुखी हो, वह आसानी से सुख पा सके यही इस सृष्टि का भी उद्देश्य है। इस सृष्टि की संरचना और व्यवस्था भी इस मुख्य उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही की गई। सृष्टि की उत्पत्ति और अस्तित्व का यह मूल उद्देश्य सभी अभ्यासियों को पहले से ही ध्यान में बिठाने की विशेष आवश्कता है।

दुःख की निवृत्ति और सुख की–आनंद की–परमानंद की प्राप्ति सृष्टि के सभी प्राणियों का सामान्य ध्येय है, यह सिद्धान्त केवल भारत में ही नहीं अपितु पृथ्वी पर के सभी सभ्य देशों ने स्वीकार किया है। यह सिद्धान्त अपने बीसवीं सदी की नई खोज नहीं है। सृष्टि की शुरुआत, प्रारम्भ से ही यह सिद्धान्त प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक वर्ग का परिचित था।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दुनिया के सभी राज्यों के संविधान इसी मुख्य हेतु को ध्यान में रखकर ही रचे गये हैं। सुख–प्राप्ति की सभी मनुष्यों की इस सर्वसम्मत भावना को जितने हद तक जिस–जिस राज्य ने अपने संविधान में व्यावहारिक रूप दिया उतने हद तक वे राज्य विजयी और चिरस्थायी बने। जिस राज्य में प्रजा को दुःख नहीं, जिस राज्य में प्रजा सुखी थी वही राज्य आबाद होने पाये हैं। जिस राज्य में प्रजा दुःखी होगी, प्रजा को सुख नहीं होगा वे राज्य चाहे जितने समृद्धिवान हों तो भी थोड़े समय में ही नष्ट हो गये हैं। ऐसे राज्यों का नाश उस राज्य की प्रजा ने ही किया है।

दुःख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति–सभी प्राणियों की प्रकृति के ये सर्व सामान्य ध्येय ने ही बड़े–बड़े राज्यों के संविधान/संहिता में उनके अस्तित्व में और उनकी आबादी में महत्त्वपूर्ण भूमिका (Part) अदा की है। न्यायशास्त्र, धाराशास्त्र, नीतिशास्त्र और धर्मशास्त्र .... प्राचीन और अर्वाचीन शास्त्रों के शास्त्रकारों ने भी मनुष्य स्वभाव के इस मुख्य ध्येय पर बहुत ध्यान दिया है और इसके सिद्धान्त का अवलम्बन करके अपने शास्त्रों की रचना की है।

धारा सभा, लोकसभा कोई भी कायदे कानून बनाये परन्तु यदि उससे जनसमाज के दुःख की निवृत्ति, उनकी मुसीबतों में कमी और लोगों को सुख की प्राप्ति और आराम के लाभ यदि न मिलें तो ऐसे कायदे–कानून लम्बे समय तक चलते ही नहीं हैं। राज्य सत्ता ऐसे कायदों को व्यवहार में लाने के लिए चाहे जो भी कदम उठाये परन्तु ऐसे कानून अविनय या सविनय तोड़े–मरोड़े जाते हैं या फिर ऐसी ही प्रक्रिया से तोड़े जाते हैं। दुःख की वृद्धि करने वाले कायदे–कानून का पालन कभी–भी लम्बे समय तक नहीं चलता।

धर्मशास्त्र में भी यही लागू होता है। जो धर्म उसके अनुयायियों की और समाज की दुःख निवृत्ति करने में मदद करे, सुख–प्राप्ति के सरल, सीधे, सचोट और सटीक उपाय बताये अंततः उसी धर्म की विजय होती है। ऐसे धर्म को भले ही कोई धर्म के बदले नीतिशास्त्र कहे, कोई न्यायशास्त्र (लॉ एण्ड आर्डर) कहे, कोई समाजसेवा (Social service) कहे, कोई केवल उपयोगिता (Utility) ही कहे–चाहे जिस नाम से कहे परन्तु जैसे गुलाब के फूल को दूसरे नाम से पुकारने से उसकी सुगंध में फ़र्क/अंतर नहीं पड़ता है उसी प्रकार दुःख–निवृत्ति के उपायों को, सुख–प्राप्ति के साधनों को दूसरा नाम देने से उसकी उपयोगिता में, उसके उपकार करने की शक्ति पर कोई अन्तर नहीं पड़ता।

दुनिया के प्रत्येक न्यायशास्त्र में, नीतिशास्त्र में, वैदिक शास्त्र में, अर्थशास्त्र में और धर्मशास्त्र में या तो किसी व्यक्ति का या समाज का दुःख दूर करने तथा सुख प्राप्त करने के उपाय और साधन को सूचित किया गया है। दुःख की निवृत्ति तथा सुख की प्राप्ति के विषय में यद्यपि हर एक प्रजा ने एक या दूसरे नाम से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विचार किया है फिर भी उन तमाम विचारों से, हिन्दूधर्म–सनातन धर्म में इस विषय में जैसा और जितना पद्धति अनुरूप (Systematic) विचार किया है वैसा और उतना सिस्टमैटिक विचार दुनिया के अन्य शास्त्रों में और अन्य धर्मों में हुआ हो ऐसा जानने में नहीं आया।

अन्य जगह में जहाँ इस विषय का वर्णन किया है, जहाँ विचार करने में आया है वहाँ उस प्रकार के विचार करने वाली बुद्धि की कमी के उपरांत कहीं–कहीं पर देश भावना, अर्थ भावना, राजकीय मुसीबतें वगैरह की अड़चनों के कारण भी यह विचार उतनी स्वतंत्रता से नहीं चर्चा किया गया है।

हिन्दूधर्म के ऋषि–मुनि इन अड़चनों से सौभाग्य से मुक्त रह पाये हैं। हिन्दू राज्यसत्ता प्रारम्भ से ही धर्म को अवलंबन मानकर चलने से ऐसे विचारकों को राज्य की तरफ से कोई मुसीबतें आने की सम्भावना नहीं रहती थी। ऋषि–मुनि तो अरण्यवासी–जंगल में रहने वाले थे जिससे उन्हें अन्य राज्य जीतने की आकांक्षा एवं इच्छा नहीं होने से उन्होंने अपने देश की प्रजा और अन्य देश की प्रजा में भेद–भाव/अंतर नहीं रखा। पूरी दुनियां को और उस पर बसने वाले तमाम प्राणियों को वह अपने स्वयं जितना ही स्नेह–प्रेम करते और जो सिद्धान्त और धर्म अपने स्वयं के लिए उन्नतिकारक नहीं मानते उसके पालन की अपेक्षा दूसरों से भी नहीं रखते थे।

इसके उपरांत हिन्दूधर्म की विशुद्धता का एक और कारण भी है। अन्य धर्मों में जैसे अपने धर्म का प्रचार करने की उत्कंठा होती है वैसी कोई बात हिन्दू ऋषि–मुनियों में सौभाग्य से नहीं थी। अपने धर्म के प्रचार की उत्कंठा के साथ–साथ मनुष्य में एक प्रकार का ममत्व और दुराग्रह का उद्‌भव होता है। ऐसे ममत्व वाला/दुराग्रह वाला व्यक्ति सत्यान्वेषण नहीं कर सकता। अन्य धर्मों में जो उच्च भावनाएँ हैं, समाज के उपकारक जो साधन हैं, सृष्टि में से दुःख की निवृत्ति कर सुख की–आनन्द की–परमानन्द प्राप्त कराने की जो अमूल्य साधन प्रणाली (System) है उस प्रणाली के प्रति दुराग्रह वाला मनुष्य खुले मन से नहीं देख सकता।

धर्म प्रचारकों की अपने धर्म के प्रचार करने की भावना और वृत्ति, शुद्ध होगी परन्तु (Ascertainment of truth) सत्यान्वेषण में तो वह विघ्नकारक ही साबित हुई है और हो रही है। इस संबंध में अधिक विवाद हो ही नहीं सकता है। हिन्दूधर्म के ऋषि–मुनि खूब समझते थे कि सत्य वह सनातन है, सत्य ने ही पृथ्वी को, समाज को (Society) धारण कर रखा है (Holds-keeps in existence) और सत्य से ही कोई समाज, देश या धर्म आबाद होता है।

हिन्दू धर्मशास्त्र में दुःख की निवृत्ति तथा सुख की प्राप्ति के संबंध में कितने ही सैकड़ों वर्षों तक ऋषि–मुनियों ने विचार किया है। ऐसे सैकड़ों से सैकड़ों वर्षों

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के सतत (Continuous) विचारों के परिणामस्वरूप ही हिन्दूधर्म के अनेक धर्मशास्त्र लिखे गये हैं। इन धर्मशास्त्रों में दुःख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति के अलग–अलग, भिन्न–भिन्न प्रकृति के मनुष्यों के अनुरूप (माफिक) हो वैसे रास्ते दिखाये हैं। श्रीमद्भगवदगीता, वह सर्व हिन्दूधर्मशास्त्रों के साररूप ग्रंथरत्न है। यह ग्रंथ सर्व हिन्दुओं का प्रमाणभूत (Authoritative) और परमपूज्य ग्रंथ माना जाता है। श्रीमद्भगवदगीता में दर्शित तत्वज्ञान केवल हिन्दुस्तान और उसके लोगों के लिए ही उपकारक नहीं है अपितु सृष्टि के सभी मनुष्यों के लिए एक सरीखा ही उपकारक है। इस कारण से भगवदगीता के अभ्यासी, चिंतक, विचारक, अनुयायी और पूजने वाले केवल हिन्दुस्तान में ही हैं ऐसा नहीं हैं। अमेरिका, इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, जापान वगैरह देशों की सुसभ्य प्रजा के अग्रगण्य स्त्री–पुरूष भी भगवदगीता के पुजारी हैं। इस दृष्टि से भगवदगीता कोई एक देश या एक प्रजा की पुस्तक नहीं है परंतु समस्त सृष्टि की विकसित प्रजा की (Book of civilized) पुस्तक है।

विद्या में, कला में, व्यापार और उद्योग में लोकशासन प्रणाली में जब कोई देश आगे बढ़ता हैं तभी वह देश विकसित कहलाता हैं। इस तरह से जब किसी देश की प्रवृत्ति अलग–अलग दिशा में बढ़ती जाती है तभी (Confusion) गड़बड़–भ्रम या वर्णसंकरता (Confusion of caste or celling) होती है। इस प्रकार जब समाज में व्यवस्था की, धर्म की कमी (Absence of Organisation coordination and religion) होती है तभी उस समाज को नियंत्रित करने के लिए किसी कायदे–कानून या प्रणाली की जरूरत पड़ती है। श्रीमद्भगवदगीता एक अव्यवस्थित हुए व्यक्ति, समाज और प्रजा को व्यवस्थित कर उस समाज का दुःख, अव्यवस्था और अड़चनें दूर कर–समाज और देश में सुख प्राप्ति–व्यवस्था, सुविधा और उन्नति प्राप्त कराने वाली एक अमूल्य पुस्तक है।

बीसवीं सदी के जीवन कलह को लेकर लोगों में जो अशान्ति व्याप्त है वैसी ही अशांति–असंतोष–विषाद अर्जुन को हुआ था। अर्जुन को विषाद उत्पन्न कराने वाले कारण और आज की अशांति के कारण सभी अंशों में एक सरीखे नहीं हैं परंतु अर्जुन की और आधुनिक अशांति के कारणों–चिन्हों (Symptoms) और उसके उपाय (Remedy) तथा अंतिम ध्येय (Ultimate goal) काफी मात्रा में तो मिलते–जुलते हैं।

अर्जुन भी सम्पूर्ण रीति से प्रशिक्षित राज्यपुत्र थे। धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र तथा धनुर्विद्या के शास्त्रों का उन्होंने अध्ययन किया था। एक राजा के पुत्र को जिस प्रकार की शिक्षा मिलनी चाहिए ऐसी तमाम शिक्षा उसने ली थी। अर्जुन राज्य–कार्य में कुशल होने के अलावा उनका गृहस्थाश्रम भी आदर्श और उत्तम प्रकार था। इसके अलावा बारह वर्ष के लम्बे समय तक बनवास करके

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
ऋषि-मुनियों के पास उन्होंने अलग-अलग शास्त्रों का श्रवण भी किया था। जंगल का दुःख सहन करने से अर्जुन में एक प्रकार का तगड़ापन आया था। अलग-अलग शास्त्रों के अभ्यास से उसका मानसिक विकास काफी उन्नत था। राज कुटुम्ब के परिवार में जन्म लेने से शरीर से सशक्त तथा शस्त्र विद्या में प्रवीण होने से किसी भी प्रकार के भय और जोखिम की तरफ उनकी अवज्ञा थी। जंगल में रहने वाले कुछ-एक राक्षसों ने जब उनका तिरस्कार किया था तब उनके साथ भी उन्होंने युद्ध किया था। देवों के देव इन्द्र की राजधानी में वे इन्द्र के मनोनीत मेहमान थे। अर्जुन के तेज, कान्ति, प्रतिभा ऐसी थी कि उर्वशी जैसी अप्सरा को भी अर्जुन के प्रति मोह उत्पन्न हुआ था। अर्जुन एक आदर्श युवा थे यह इस बात की पुष्टि है।

आधुनिक जीवन के कलह से निपटने के लिए आजकल के जमाने में सामान्य मनुष्य को शिक्षा, सुविधा और जो साधन मिलते हैं उससे अर्जुन को उच्च प्रकार की शिक्षा उत्तम सुविधा और बढ़िया साधन मिले थे फिर भी अर्जुन को सुख-संतोष-शांति उसमें से कुछ भी मेहनत करने पर भी नहीं मिला था।

अर्जुन ने स्वयं ही अपनी स्थिति का वर्णन नीचे के शब्दों में किया हैः-

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते।। १-२६

मेरे गात्र ढीले पड़ गये हैं, मेरे मुख में शोष है, मेरे शरीर में कंपकँपी होती है और मेरे रोंये खड़े हो गये हैं .... यह सब निर्बलता की निशानियाँ हैं।

प्रत्येक मनुष्य में जब शारीरिक और मानसिक निर्बलता आती है तब वह हताश हो जाता है। प्रवृत्ति के प्रति उसकी तिरस्कार वृत्ति उद्भवित होती है और अंत में उसको अपने जीवन के प्रति भी निराशा, तिरस्कार और धिक्कार होता है।

न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।
किं नो राज्येन गोविन्दं किं भोगैर्जीवितेन वा।। १-३२

हे कृष्ण ! मैं विजय की आकांक्षा, इच्छा नहीं रखता। राज्य के सुख और वैभव की भी मुझे तृष्णा नहीं है। गोविन्द, राज के भोग का-सुख का-जीवन का भी मेरे लिए क्या उपयोग है?

अर्जुन की जो मनोदशा हुई थी उसी प्रकार की मनोदशा प्रत्येक मनुष्य के जीवन में एक या दूसरे प्रसंग पर होती है। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में ऐसे प्रसंग आते हैं जब अपनी प्रियवस्तु के प्रति-विजय, राजसुख और वैभव के प्रति उसे एक प्रकार का तिरस्कार-वैराग्य आ जाता है। जिन्दगी के जो पदार्थ, जो विषय उसे पहले बहुत आनन्ददायी और सुखकर लगते थे वे ही उसे शुष्क, शोककारक और दुखदायी लगते हैं। धन, सगे-संबंधी, स्त्री-पुत्र वगैरह तमाम विषयों में ऐसे व्यक्ति का आसंग (Attachment) छूट जाता है। इस प्रकार होने से जगत में
CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
प्रत्येक मनुष्य को अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु के प्रति भी जैसे अर्जुन को वैराग्य आया वैसे ही वैराग्य उत्पन्न होता है।

प्रत्येक मनुष्य के जीवन में ऐसा समय एक बार आता है। ऐसा समय भी एक प्रकार की स्थित्यांतर (Transition stage) को सूचित करता है। यह स्थिति बाह्य दृष्टि से प्रथम दृष्टि में दिखती है उतनी दुःखकारक (Pessimistic) वास्तव में होती नहीं है। बारीकी से विचार करने से पता चलता है कि यह स्थिति तो दुःख के प्रदेश छोड़ सुख के प्रदेश में प्रवेश करने का एक दरवाजा (Gateway of bliss) है।

अपना समझे हुये सुखों के साधनों पर मनुष्य को जब वैराग्य (Absence of Attachment) होता है तभी ही वह सही सुख की शोध की तरफ झुकता है, मुड़ता है। पैसा–धन, सगे–संबंधी, पुत्र और स्त्री जिनको अब तक सुख के साधन माने हुए था उसी से जब मनुष्य को सुख के बदले दुःख होता है तभी ही वास्तविक सुख किसमें है और किन साधनों से मेरा श्रेय होगा, मुझे सुख मिलेगा–शांति मिलेगी, मेरे दुःख की निवृत्ति होगी आदि विषयों पर मनुष्य को विचार सूझता है। यह प्रश्न जब प्रथम बार उठता है तो मनुष्य अर्जुन की भाँति किंकर्तव्यविमूढ़ होता है। अर्जुन की तरह उसे विषाद होता है।

इस महत्व के प्रश्न का निर्णय, इस बड़ी गुत्थी को सामान्य रूप से मनुष्य स्वयं किसी और की मदद के बिना नहीं सुलझा सकता है। इस प्रश्न के उत्तर के निर्णय के लिए मनुष्य कभी कोई विश्वासपात्र मित्र–कोई महत्व की पुस्तक का–धर्मपुस्तक का–किसी गुरु अथवा किसी नेता का आश्रय लेता है। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन के परममित्र थे। अर्जुन उस समय उन्हें भगवान–परमेश्वर के रूप में मानते नहीं थे। फिर भी श्रीकृष्ण अपने से अधिक कार्यदक्ष और होशियार हैं वैसा तो अर्जुन जानते ही थे। अपनी इस मुसीबत का निराकरण करने में अपने बुद्धिबल पर आधार न रखते हुए अर्जुन श्रीकृष्ण पर विश्वास करते हैं।

अपने को परेशान कर रहे प्रश्नों के उत्तर माँगने से पहले इस प्रश्न से अपनी जो मनोदशा हुई है उसे अर्जुन श्रीकृष्ण को बताते हैं। जैसे एक बीमार मनुष्य वैद्य या डॉक्टर की दवा लेने जाता है तब अपने रोग के चिन्ह (Symptoms) डॉक्टर को बताता है उसी प्रकार अर्जुन भी अपने को क्या रोग हुआ है और अपने रोग के चिन्हों को श्रीकृष्ण को बताते हैं–

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्श्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधिमां त्वां प्रपन्नम् ।। २–७

कार्पण्यदोष अज्ञान से (Commiseration) मेरा स्वभाव आच्छादित हो गया है, नाश हो गया है। मेरे स्वभाव की अच्छा और बुरा निर्णय करने की शक्ति चली गई है। मेरा चित्त, मन धर्म–अधर्म का, लाभ–अलाभ का, सुख–दुःख का निर्णय

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
करने में मूढ़–व्यग्र हो गया है। इस कारण से मैं आपसे पूछता हूँ कि मेरे लिये श्रेय, सुखकारक, शांतिदायक क्या है मुझे आप निश्चित रूप से संशय न रहे इस प्रकार कहें। मैं आपका शिष्य हूँ, आपके पास से जानने की इच्छा रखता हूँ इसलिये आपकी शरण में आया हूँ। इस विषय में निर्णय करने में आपसे मदद की आशा रखता हूँ।

कुछ एक चतुर दर्दी डॉक्टर के पास जाने के पहले अपने दर्द के लिए कुछ दवाओं का प्रयोग करते हैं। अपना दर्द बता के यदि डॉक्टर वह दवा जो इन्होंने प्रयोग में पहले ही ली हो और जो उन्हें अनुकूल न हुई हो–वह दवा डॉक्टर न दे इसलिए उन्हें बता देते हैं। शुरुआत में ही जैसे दर्दी बता देते हैं कि कुछ एक प्रकार की दवा से मुझे शांति नहीं होगी–मेरा दर्द नहीं मिटेगा वैसे अर्जुन भी इस प्रकार की सूचना बहुत नम्र भाव से गर्भित रूप से देते हैं:–

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।
अवाप्य भूमावसपलमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम्।। २–८

मेरे दुःख के शोक से मेरी इन्द्रियाँ जैसे शुष्क सी होने से मुझे बहुत दुःख होता है। मेरा यह शोक दूर कर सके, मेरा यह दुःख दूर कर मुझे सुख प्राप्त हो ऐसा एक भी रास्ता मुझे नहीं दिखता। किसी की भी तरफ से लड़ाई न होने वाला निष्कंटक, सारी दुनिया का सर्वसमृद्धि वाला राज्य मुझे मिले या उससे भी बढ़कर देवताओं पर भी यदि आधिपत्य मिले, मुझे इन्द्रासन प्राप्त हो तो भी मुझे श्रेय प्राप्त होगा, मेरा दुःख दूर होगा और मुझे सुख–शांति मिलेगी ऐसा मुझे नहीं लगता, ऐसा नहीं दिखता और वैसा साधनक्रम मुझे नहीं मिलता।

जैसे धन मिलने से उसे सुख मिलेगा ऐसी मान्यता से मनुष्य धन की प्राप्ति और संचय करने में बहुत मेहनत करता है परंतु उसे थोड़े समय में ही पता चल जाता है कि धन–संचय तो दुःख–निवृत्ति का अक्सीर उपाय नहीं है। इस प्रकार जान लेने से वह किसी अन्य चीज/वस्तु या विषय को अपने सुख का साधन मानकर उसे पाने के प्रयत्न करता है और अंततः यह भी उसके सुख का साधन नहीं है यह जान जाता है। इस तरह एक के पश्चात एक विषय के प्रति उपेक्षा दिखाकर एक के बाद एक विषय को छोड़ता हुआ (Process of elimination) मनुष्य सुख की, शांति की, श्रेय की शोध खोज में भ्रमण करता है, भटकता है, बावरा बनकर घूमता है, हाथ–पाँव मारता है।

इन्द्रियों को सुखा दे ऐसे शोक को दूर करने का, दुःख निवृत्ति का, सुख प्राप्ति का रास्ता भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बताया था। यह रास्ता लेने से, श्रीकृष्ण की सूचना अनुसार चलने से, श्रीकृष्ण की बताई हुई साधन प्रणाली से अर्जुन का शोक दूर हुआ यह हम जानते है। सामान्य मनुष्य भी यदि वह रास्ता ग्रहण करे तो उसका दुःख दूर हो, उसे सुख की प्राप्ति हो। दुःख निवृत्ति के
CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
भगवान श्रीकृष्ण ने दो रास्ते बताये हैं:–

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।। ३–३

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अनघ (Sinless) पापरहित अर्जुन मैंने पहले कहा वैसे इस लोक में दो निष्ठा, दो प्रकार के रास्ते, दो प्रकार के दुःख निवृत्ति के उपाय हैं। सांख्य बुद्धि वालों के लिये ज्ञानयोग से तथा कर्म के अधिकारी के लिए कर्मयोग से दुःख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति होती है।

दुःख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति के लिये ज्ञानयोग और कर्मयोग यह दो अलग–अलग निष्ठा; अलग–अलग मार्ग, अलग–अलग साधन गिनाये हैं परन्तु इन दोनों साधनों में भेदभाव नहीं है। यह साधन नाम से भिन्न–भिन्न हैं परंतु स्वरूप में, तत्व की दृष्टि से देखने से दोनों एक ही है, एक समान ही उपयोगी हैं। उसे समझाने के लिये श्रीकृष्ण कहते हैं:–

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्।। ५–४

ज्ञानयोग–सांख्य और कर्मयोग यह दो अलग–अलग हैं ऐसा बुद्धिमान मनुष्य नहीं कहते हैं। दोनों को अलग कहने वाले मनुष्य बालक के समान अज्ञानी हैं। सत्य बात तो यह है कि ज्ञानयोग या कर्मयोग उन दोनों में से एक का भी सही आचरण करने से उसे दोनों का फल मिलता है।

अर्जुन बहुत विचक्षण व्यक्ति थे, उन्हें श्रीकृष्ण भगवान के प्रति मान था। अर्जुन भली–भाँति जानते थे कि मेरा श्रेय क्या है, मैं कैसे सुखी होऊँ, क्या करने से मेरा शोक का नाश हो, इन प्रश्नों के निर्णय करने में श्रीकृष्ण यदि भूल करेंगे तो मैं सदा के लिये दुःखी ही रहूँगा। श्रीकृष्ण के बताये उपायों को भी केवल अन्धश्रद्धा से स्वीकार करें वैसे अर्जुन नहीं थे। श्रीकृष्ण भी अर्जुन की इस मनोदशा से बिल्कुल अपरिचित नहीं थे। वे जो उपाय बता रहे हैं वह आजकल की नई शोध जैसा प्रयोग करके देखने जैसा (Experiment) और ऐसा वैसा नहीं। यह उपाय प्रयोग करने ज़ैसा नहीं परंतु प्रयोग से सिद्ध (Well tried remedy) आजमाया हुआ उपाय था। इस विषय में भगवान श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं–

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः। ३–२०

हे अर्जुन ! इस कर्मयोग से जनक राजा आदि अनेक राजाओं ने दुःख निवृत्ति, सुख और संसिद्धि की प्राप्ति की हैं, इस कारण से दुःख की निवृत्ति के लिए कर्मयोग का साधन अक्सीर उपाय है–यह साधन तेरे–अर्जुन के पहले जनक जैसे महान राजाओं ने भी प्रयोग करके देखा है और इन साधनों से उन्होंने दुःख–निवृत्ति, सुख और संसिद्धि की प्राप्ति की है।

जिस कर्मयोग से पूर्व में जनक आदि महाराजाओं ने संसिद्धि प्राप्त की जो

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

साधन साक्षात् श्रीकृष्ण ने अर्जुन जैसे उत्तम महारथी को, पृथ्वी की सर्वसमृद्धि वाला सार्वभौम्य राज्य मिलने पर अथवा इन्द्रासन मिलने पर भी न शांत होने वाले महान विषाद–शोक को शांत करने वाले साधन के रूप में दुःख निवृत्ति के साधन के रूप में, सुख प्राप्ति के अक्सीर उपाय के रूप में बताया और उसके अनुसार चलने का आग्रह किया, जिस कर्मयोग से अर्जुन का विषाद दूर हुआ उसे शांति हुई वह कर्मयोग क्या है? उसे कैसे आचरण में लाना, यह कर्मयोग कैसे अपने दुःख की निवृत्ति करता है, कैसे यह हमारे लिए सुखदायी–सुखप्राप्ति का साधन बनता है? कैसे वह हमें–प्रत्येक मनुष्य को हाल के कलहयुक्त जीवन में भी शांति देकर श्रेयस्कर होता है उस विषय पर विचार इसके बाद के प्रकरणों में करना है।

❑

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकरण–२

कर्म का क्या अर्थ ? कर्म यानी क्या ?

हर एक भाषा में कठिन शब्द वे होते हैं जो दिखने में बहुत सादे और सरल होते हैं। सच्चे चिन्तक को, विचारक को ऐसे सरल दिखने वाले शब्द बहुत भ्रम/तकलीफ में डाल देते हैं। सामान्य मनुष्य को रोज के व्यवहार में ऐसे शब्द इतने तो सरल लगते हैं. कि उनका अर्थ क्या होगा उस पर विचार करने की आवश्यकता उन्हें लगती ही नहीं।

तत्त्ववेत्ता, सत्यशोधक, विचारक, चिन्तन करने वाले पुरुषों में और सामान्य मनुष्यों में यह महत्व का अंतर है, भेद है। सामान्य मनुष्य अपने विचारों के आदान–प्रदान में भाषा का उपयोग (Language as vehicle of expression) करते हैं। सत्यशोधक इतने पर ही नहीं रुक जाता, कोई एक शब्द का अर्थ क्या है? वह कौन सा भाव, कौन सा विचार सूचित करता है और वह विचार मनुष्य के किस व्यवहार में कितना असर करता है?–इन सभी बातों पर तत्ववेत्ता (Philosopher) को विचार करने की आवश्यकता महसूस होती है।

कोई एक वनस्पति का केवल नाम जानना यह सामान्य मनुष्य के लिए पर्याप्त है परंतु नाममात्र का ज्ञान–वैद्य के लिए–वैद्यक शास्त्र के अभ्यासी के लिए पर्याप्त नहीं है। वैद्यकशास्त्र के अभ्यासी को तो उस वनस्पति के नाम जानने के उपरान्त उस वनस्पति के गुण भी जानने चाहिए। वनस्पति के गुण जानने के उपरान्त अमुक गुण का मनुष्य के शरीर पर (Human organism) कितना और कैसा असर होता है, उसको भी जानना चाहिए। यदि संक्षिप्त में कहें तो इस विषय के वृहत् ज्ञान (Detailed knowledge) पर ही वैद्य की उपयोगिता का आधार है।

कर्म के सम्बंध में भी ऊपर के नियम लगते हैं। कर्म यह शब्द प्रथमदृष्टि में खूब सादा तथा अत्यन्त सरल दिखता है। सामान्य मनुष्य तो ऐसे ही समझता है कि कर्म का अर्थ उसे सही–सही आता है और ऐसी मान्यताओं के कारण ही कर्म शब्द का अर्थ क्या है यह निश्चय करने की आवश्यकता का विचार भी उसे नहीं आता है।

सामान्य मनुष्य को अतिशय आसान लगने वाले इस कर्म शब्द ने तत्ववेत्ताओं को, विचारकों को बहुत उलझन में डाल दिया है। तत्ववेत्ताओं को, विचारकों को, कर्मयोगी को यह शब्द बहुत कठिन प्रतीत होता है। सामान्य तत्त्ववेत्ताओं को विचारकों को–गीता के अभ्यासी को ही यह शब्द कठिन लगा हो, ऐसा नहीं है परंतु श्रीकृष्ण जैसे उपदेशक होने के बावजूद इस शब्द का सही अर्थ समझने में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
अर्जुन जैसे उच्चाधिकारी को भी बहुत कठिनाई/मुश्किलें हुई थीं। यह हकीकत गीता के अभ्यासी को स्पष्ट समझ में आती है।

कर्म शब्द दिखने में आसान परन्तु वास्तविकता में बहुत कठिन है। इस हकीकत से भगवान श्रीकृष्ण स्वयं भी बिल्कुल अज्ञात नहीं थे। इसी कारण से ही उन्होंने कहा है कि :–

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ।। ४–१६

हे अर्जुन ! कर्म किसे कहना, कर्म के माने क्या? अकर्म (Inaction) किसे कहना, अकर्म माने क्या? यह विषय इतना विकट और उलझनों से भरा हुआ है कि इस पर निर्णय करने में कवि और सयाने समझदार मनुष्य भी मोहित हो गये हैं, उलझ गये हैं। इस कारण से कर्म के माने क्या है वह मैं– श्रीकृष्ण–तुझे अर्जुन को समझाऊँगा। इस प्रकार करने से कर्म के स्वरूप का यथास्थिति ज्ञान प्राप्त करने से तू अशुभ से, पाप से, दुःख से मुक्त हो सकेगा। इस ज्ञान से तुझे हुए शोक की निवृत्ति दुःख की निवृत्ति तू कर सकेगा। इस श्लोक में दो हकीकतें कही है; कर्म की मुसीबतों/कठिनाइयों का वर्णन किया है। इस प्रकार कर्म का सही ज्ञान मिलना कठिन तो है फिर भी वह महत्व का है क्योंकि कर्म का यह ज्ञान मोक्ष का–दुःख निवृत्ति का असरकारक और (Unfailing) अचूक साधन (remedy) है।

आगे चलकर इसी विषय को अधिक स्पष्ट करते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोधव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः।। ४–१७

कर्म, शास्त्र विदित कर्म–करने लायक कर्म का तथा विकर्म, शास्त्र में निषेध किए हुए कर्म–नहीं करने लायक कर्मों का बराबर और विगतवार–सम्पूर्ण ज्ञान सम्पादन करना जरूरी है। कर्म तथा विकर्म का ज्ञान मिलने के उपरांत अकर्म (Inaction) कर्म नहीं करने की विद्या–निवृत्ति मार्ग का भी पूर्ण रूप से ज्ञान पाने की आवश्यकता है। इस प्रकार कर्म (Prescribed action) विकर्म (Prohibited action) और अकर्म (Inaction) के ज्ञान प्राप्ति की आवश्यकता है। इसका क्या कारण है वह ऊपर के श्लोक के अंतिम भाग में दर्शाया है। कर्म की गति (Path goal) बहुत ही गहन (abstruse) है। इस प्रकार कर्म की गति कर्म मार्ग, कर्मयोग के तत्व देखने में सरल परंतु फिर भी वास्तविक रूप में वह खूब गहन मुश्किल और समझ में नहीं आए वैसे हैं।

कर्म की गति अति गहन है फिर भी कर्म का तत्व बराबर–सही समझने से जानने से लाभ भी बहुत बड़ा होता है। इस कर्मयोग का पूर्णरूप से (सवांश)
CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आचरण हो तो बहुत ही अच्छा है परंतु इस कर्मयोग का थ -बहुत, स्वल्प भी आचरण हो तो वह महान भय से, बड़े दुःख से मनुष्य को बचाता है।

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्। २-४०

इस कर्मयोग का स्वल्प, जरा सा भी ज्ञान संपादन करने से, आचरण करने से वह ज्ञान उस व्यक्ति को महान भय से बचाता है/तारता है।

कर्मयोग का थोड़ा सा भी आचरण किया हो तो वह भी उस व्यक्ति को महान भय से बचाता है उतना ही नहीं परंतु निःश्रेयस (Highest happiness) के लिए भी कर्मयोग-कर्म का ज्ञान, आचरण आवश्यक है। इस सम्बंध में श्रीकृष्ण कहते हैं कि-

सन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते।। ५-२

सन्यास और कर्मयोग दोनों ही निःश्रेयस की प्राप्ति अवश्य कराते हैं परंतु दोनों में से सन्यास मार्ग से कर्मयोग का मार्ग अधिक अच्छा है। इस प्रकार निःश्रेयस सर्वोत्तम सुख, मोक्ष पाने के लिए भी कर्म मार्ग यह बहुत सादा सरल और सचोट मार्ग है।

मनुष्य की उन्नति (Rise, Prosperity) या तो अवनति किसी आकाश में बैठे हुए देव की कृपा या अकृपा पर आधारित नहीं है। परंतु मनुष्य की उन्नति या अवनति का आधार उसके अपने शुभाशुभ कर्म पर है। इस दृष्टि से देखने से मनुष्य स्वयं अपने-अपने सुख-दुःख के नियामक ग्रह हैं (Man is his own star)। यह सामान्य कहावत तात्विक दृष्टि से देखने से सर्वांश पूर्णरूपेण सही प्रतीत होती है। इस सिद्धान्त का जितनी स्पष्टता से हिन्दूधर्म में, सनातन धर्म में, भगवद्गीता में वर्णन किया है उतनी स्पष्टता से अन्य धर्म में शायद ही हुआ होगा।

दुनिया के हर एक धर्म में देव, परमेश्वर की भावना तो होती ही है। स्वयं के माने हुए परमेश्वर, अल्लाह, क्राइस्ट या ऐसी ही अन्य व्यक्ति के प्रति उन-उन धर्म के अनुयायियों का इतना पूज्य भाव होता है कि वे ऐसा मानते हैं कि परमेश्वर केवल अपनी कृपा से ही मनुष्य को सुखी या दुःखी कर सकते हैं। परमेश्वर के प्रति पूज्य भाव की पुष्टि के रूप में यह सिद्धान्त शायद स्वीकार्य हो सकता है परन्तु तात्विक दृष्टि से यह सिद्धान्त मान्य रह सके ऐसा नहीं है। मनुष्य की उन्नति माने हुए देव की कृपा या अकृपा पर आधारित करने के बदले मनुष्य के शुभ अशुभ कर्मों पर आधारित करने से ईश्वर में निष्पक्षपात बुद्धि विशेष रूप से रहती है और अच्छे कर्मों के करने के प्रति समाज अधिक प्रेरित होता है। भगवदगीता में इस सिद्धान्त को खास ध्यान में रखा है। इस संबंध में श्रीकृष्ण जी ने कहा है कि :-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते।। ५–१४

परमेश्वर कर्तृत्व (Agency, Instrumentality) कर्म कर्मफल संयोग (Union with the fruits of action) उत्पन्न नहीं कराता है। यह सारी प्रक्रिया स्वभाव, कर्म की जाति, अच्छे या बुरे कर्म के नियमानुसार, कर्मयोग के सिद्धान्त के अनुसार चलती रहती है। इस सिद्धान्त को आगे के श्लोक में विशेष रूप से स्पष्ट किया है:–

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः। ५–१५

विभु–सर्वव्यापक परमेश्वर किसी भी मनुष्य के अच्छे अथवा बुरे कर्म लेता नहीं है। मनुष्य के अच्छे या बुरे कर्मों के फलों को मनुष्य को स्वयं ही भुगतना पड़ता है। ऊपर के श्लोक से समझ में आता है कि ईश्वर एक सर्वोपरि, सबसे परे की सत्ता है परंतु कर्मों के नियम इतने अटल, अडिग और चौकस हैं कि इन नियमों में ईश्वर भी बीच में नहीं आता। अपने धर्मशास्त्रों में इस सिद्धान्त को स्पष्ट करने हेतु बहुत दृष्टांत/उदाहरण दिये हैं। साक्षात देवताओं को, अवतारों को भी जो दुःख सहन करने पड़े हैं वे उन्होंने किये हुये पिछले जन्मों के कर्मों के परिणामस्वरूप ही थे यह हकीकत महाभारत तथा रामायण जैसे ऐतिहासिक ग्रन्थों के पढ़ने से स्पष्ट होती है। इन दृष्टांतों से यह हकीकत स्पष्ट होती है कि अच्छे कर्मों का फल अच्छा ही होता है।

अच्छे कर्मों के, पुण्य कर्मों के परिणाम इस दुनिया में सुख–प्राप्ति के रूप में दिखते हैं। एक अच्छा कर्म मनुष्य को अपनी जिंदगी .... इस दुनिया में सुख की प्राप्ति कराके–सुखी रखकर उसकी मृत्यु के बाद उसे स्वर्ग की प्राप्ति कराते हैं। स्वर्ग प्राप्ति का आधार कर्म पर है इतना ही नहीं परंतु व्यक्ति–विशेष स्वर्ग में कितने समय तक रहेगा उसका आधार भी कर्म पर ही है। इस संबंध में गीता में कहा है कि:–

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति । ९–२१

'पुण्य कर्मों के क्षीण होने से, खत्म होने से मनुष्य स्वर्गलोक में से वापस मृत्युलोक में इस दुनिया में आता है, जन्मता है।'

इस दुनिया में तथा परलोक में मनुष्य के सुख या दुःख का, उन्नति या अवनति का, स्वर्ग तथा नरक का, मोक्ष अथवा बंधन का मुख्य आधार उसके अच्छे अथवा बुरे शुभाशुभ कर्म ही हैं।

प्रत्येक मनुष्य, प्रत्येक प्राणी जिंदगी के हर एक क्षणों में कुछ कर्म करता है और ऐसा करने से जिंदगी के प्रत्येक क्षण में अपने भावी जीवन का (Future life) सृष्टा (Creator) बनता है। जैसे एक कुशल बेलदार एक–एक ईंट रखकर समयांतर में एक सुन्दर इमारत बनाता है उसी प्रकार सामान्य मनुष्य भी अपने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भावी जीवन का बेलदार है (Man is the architect of his own fortune.)। मनुष्य के जीवन में प्रतिक्षण होने वाला हर एक कर्म मनुष्य के भावी जीवन मंदिर की नींव में रखी ईंट है। जैसे एक अनजान बेलदार, कारीगर शिल्पशास्त्रों के नियमों के विरुद्ध ईंटों को रखकर, चुनाई कर भविष्य की इमारत को बदसूरत और जल्दी नाश होने वाली बना देता है, उसी प्रकार कर्म, विकर्म और अकर्म के यथाविधि ज्ञान के बिना मनुष्य अपना जीवन दुःखमय और अधोगामी बना देता है।

जिस कर्म से मनुष्य स्वयं सुखी होकर अपने आसपास के लोगों को सुखी करके स्वर्ग की, देवलोक की, सुख की, शांति की, निःश्रेयस की प्राप्ति कर सकता है उस कर्म शब्द का सही अर्थ क्या है, यह जानने की सबसे पहले आवश्यकता है। सामान्य मनुष्य को कर्म का सही अर्थ उसका सही स्वरूप जानने की जरूरत न हुई हो, वह अलग बात है परंतु कर्मरूपी इस जादुई छड़ी से इस भौतिक देह को देव जैसा पवित्र सुखी और सुखकर बनाने की महत्वाकांक्षा रखने वाले अभ्यासी को तो कर्म का सही अर्थ जानना जरूरी है। कर्म की गति गहन है सही, परंतु इस गहन विषय में प्रवेश करना हो तो कर्म का यथार्थ स्वरूप देखना और जानने का प्रयत्न करना इस दिशा में प्रथम सोपान जैसा उपयोगी है।

कर्म शब्द अत्यंत सामान्य है। गीता में कितनी जगहों पर इस शब्द को उपयोग में लिया है। गीता में कर्म जहाँ–जहाँ उपयोग में लिया है वहाँ एक ही अर्थ में इसको नहीं लिया है। कर्म शब्द एक होने से भी उसके अर्थ में कई जगहों पर भिन्नता है। एक 'कर्म' शब्द श्रीमदभगवदगीता में कई अर्थों में उपयोग में लिया है। इस कारण से गीता के अभ्यासी की पहली आवश्यकता प्रत्येक स्थान पर कर्म शब्द का सही अर्थ क्या है यही निश्चित करके समझने की है।

कर्म यानी कार्य कोई भी प्रकार की क्रिया करनी वह कर्म है। कर्म शब्द का यह वृहत् से वृहत् अर्थ है। श्वासोच्छ्वास लेना, हिलना, चलना वगैरह अपने रोज के जीवन को टिकाये रखने के लिये जो क्रिया जरूरी है, इन क्रियाओं से लेकर संध्या, स्नान, ध्यान, यज्ञ आदि स्वर्ग प्राप्त करने की क्रियाएं–कर्म तथा सन्यास, त्याग वगैरह मोक्ष पाने तक की सभी क्रियाओं का कर्म के सामान्य और वृहत् अर्थ में समावेश होता है। भगवद्गीता में कई जगहों पर कर्म शब्द इस्तेमाल हुआ है वह इस बृहत् अर्थ में उपयोग में लिया है। कर्मयोग इस शब्द में कर्म शब्द का समावेश है वह भी ऊपर दर्शित बहुत ही बृहत अर्थ में इस्तेमाल में लिया है। इस कारण से अपने जीवन की छोटी से छोटी क्रिया भी कर्मयोग की दृष्टि से करने में आये तो वह मनुष्य जीवन को बहुत जल्दी ही शुद्ध, संस्कारी और सुखकर बना सकती है।

यद्यपि सामान्य रूप से बहुत जगहों में भगवद्गीता में कर्म शब्द बहुत बृहत्

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थ में प्रयोग में लिया गया है फिर भी सभी जगहों पर उसी अर्थ में कर्म शब्द का प्रयोग नहीं किया गया। कितनी ही जगहों पर कर्म शब्द थोड़े सकुचित अर्थ में इस्तेमाल में लिया है।

कर्म यानी कर्मकांड ऐसे अर्थ में भी कर्म शब्द काफी जगहों पर भगवद्‌गीता में इस्तेमाल में आया है। स्वर्गप्राप्ति के साधन के रूप में कितने कर्मों को पूर्व मीमांसा में दर्शाया गया है। कर्म यानी स्वर्ग प्राप्ति के साधन रूप कर्म ऐसे संकुचित अर्थ में भी कर्मशब्द गीता में इस्तेमाल हुआ है। नित्यकर्म, नैमित्तिक कर्म, काम्यकर्म, यज्ञकर्म वगैरह कर्म के ऊपर दर्शित कर्म के संकुचित अर्थ में समावेश होते है। ऐसे कर्म को भगवद्‌गीता के दूसरे अध्याय के ४३वें श्लोक में क्रियाविशेष **(Specific Action)** ऐसा नाम दिया है यह बात खास ध्यान में रखने योग्य है।

कर्म यानी वर्णाश्रम धर्म के अनुसार प्राप्त कर्म ऐसे अर्थ में भी कर्म शब्द भगवद्‌गीता में कुछ जगहों में इस्तेमाल में लिया है। ऐसे कर्म को कुछ जगह में स्वकर्म या स्वधर्म नाम भी देने में आया है। स्वधर्म यानी अमुक व्यक्ति को अपने वर्णाश्रम धर्म के अनुसार प्राप्त हुए करने लायक कर्म। स्वधर्म से विरुद्ध भाव जताने वाला शब्द विधर्म भी गीता में इस्तेमाल हुआ है। इस प्रकार स्वकर्म से विरुद्धभाव को दर्शानेवाला विकर्म शब्द भी गीता में इस्तेमाल में आया है।

कर्म यानी करने लायक कर्म परिणाम में सुख उपजाने वाला कर्म–ऐसे कर्म को कुछ एक जगहों पर धर्म या पुण्य ऐसे नाम से भी दर्शाया गया है। ऐसे अर्थ में कर्म का अर्थ करने से पता चलता है कि इस प्रकार के कर्म के विरोधी अर्थ 'अकर्म' शब्द से भी समझाने में आया है। धर्म तथा पुण्य के भी वैसे ही विरोधी अर्थ वाले शब्द–अधर्म तथा पाप कर्म या तो ऐसे ही दूसरे अर्थ वाले शब्दों का गीता में प्रयोग किया है।

कर्म शब्द के कई अर्थ और भी हैं परंतु ऊपर के चार मुख्य अर्थ ध्यान में रखने से शुरुआत के अभ्यासी की कर्म के अर्थ संबंधी काफी मुश्किलें दूर हो जाती हैं। हर एक श्लोक में कर्म शब्द ऊपर के चार अर्थों में से किस अर्थ में इस्तेमाल हुआ है यह ऊपर के चारों अर्थ ध्यान में रखने से तथा पूर्वापर सम्बंध का विचार करने से प्रत्येक अभ्यासी अपने आप सरलता से निश्चित कर सकेगा।

भगवद्‌गीता जैसे छोटे ग्रन्थ में कर्म शब्द कई जगहों पर अलग–अलग अर्थ में इस्तेमाल होने से कर्म शब्द की व्याख्या नहीं दी जा सकती है। इस प्रकार की अड़चन के बावजूद कर्म की व्याख्या देने का प्रयत्न भगवान वेदव्यास ने किया है:–

भूतभावोद्‌भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः। ८–३

भूत–स्थावर जंगम पदार्थ तथा प्राणियों की उत्पत्ति तथा वृद्धि के लिए किया हुआ विसर्ग–सृष्टि व्यापार–त्याग ही कर्म कहलाता है। कर्म की यह व्याख्या केवल

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आठवें अध्याय में कहे हुए विषय के लिये ही है। सामान्य नहीं है। सृष्टि की उत्पत्ति तथा स्थिति की आवश्यकता सूचक यह व्याख्या है और उतनी हद तक वह उपयोगी है सही परंतु सारी भगवद्गीता मे उपयोग में लाये कर्म शब्द की अर्थसूचक नही है।

कर्म यानी क्रिया, क्रिया यानी कर्ता की शक्ति के कुछ अंश का एक (अमुक) भाग का व्यय (Expenditure of Energy) । द्रव्य खर्च करके जैसे हम अपने सुख के साधनो को खरीदते हैं उसी तरह शक्ति के व्यय रूपी द्रव्य देकर कर्म कर हम सुख के साधन रूप पदार्थ पाने की आशा रखते हैं।

अपने दैनिक व्यवहार में हम देखते हैं कि अपने हर एक कार्य का परिणाम हमेशा हमारी अपनी इच्छा–आशा के अनुरूप नहीं आता है। खरीददार/क्रेता में योग्य बुद्धि न हो–खरीदते समय योग्य ध्यान न दिया हो तो द्रव्य देकर, पैसा खर्च करके लाई हुई वस्तु भी हमारी इच्छानुसार नहीं निकलती। कर्म में भी वैसा ही है। क्रिया शक्ति रूप द्रव्य खर्च करके, मेहनत लेकर सुख मिलने की आशा से किया हुआ कार्य भी कितनी बार हमारी इच्छा के अनुसार सुख नहीं देता। इतना ही नहीं परंतु कितनी बार तो सुख लेने की आशा से मेहनत से किया हुआ कार्य महान दुःख का कारण बनता है।

एक शिकारी बाघ का शिकार करने जाता है। बाघ का शिकार होगा ऐसी आशा से वह अपने पैसों का व्यय करके अच्छी बंदूक तथा कारतूस खरीदता है। वह अपने आपको भी खतरे में डाल कर शिकार करने जाता है। ऐसे कार्य से बाघ का शिकार हो तो उसे आनन्द–सुख होता है। अपने द्रव्यत्याग तथा अपनी शक्ति के व्यय का बदला मिला, ऐसा शिकारी मानता है। परन्तु कितनी बार बाघ को मारने के लिए छोड़ी हुई गोली बाघ को न लग कर खाली जाती है, कितनी बार इतने से ही बात नहीं रुकती। बाघ को मारने के लिए छोड़ी हुई गोली से किसी मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। कितनी बार शिकारी खुद ही बाघ का शिकार बन जाता है। इस प्रकार से द्रव्य और शक्ति का व्यय सभी शिकारियों के पास समान होने से भी कुछ एक शिकारी ही बाघ के शिकार का सुख पाते हैं जबकि अन्य को कमोबेश मात्रा में दुःख होता है।

कर्म के संबंध में भी ऊपर का सिद्धान्त सही बैठता है। सुख पाने के खातिर, शांति पाने के खातिर सामान्य रूप से प्रत्येक व्यक्ति शक्ति का व्यय करता है कर्म करता है। इस प्रकार दुःख की निवृत्ति, सुख की प्राप्ति सभी कर्म का सामान्य ध्येय–हेतु होने से भी मनुष्य के प्रत्येक कर्म से प्रत्येक मनुष्य को हर समय सुख नहीं होता। कितनी बार तो ऐसा होता है कि सुख प्राप्ति के लिये किया गया कर्म उसके कर्ता के लिये महान दुःख का कारण होता है।

सुख–प्राप्ति के लिये किया हुआ प्रत्येक कर्म उसके कर्ता की इच्छा के

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनुसार केवल सुख ही उत्पन्न करे और इस कर्म में से इच्छा न किया हुआ दुःख उत्पन्न न हो ऐसी इस दुनियां में बसे प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा होती है। पुराने जमाने में बैलून ऊंचे हवा में उड़ते थे परतु बैलून हवा में किधर भी चले जाते। बैलून में बैठने वाला व्यक्ति तो कभी दरिया के बीच गिर जाता और प्राण त्यागता था। हवा की विद्या (Aironautics) जैसे-जैसे आगे बढ़ती गई वैसे-वैसे अकस्मात-नहीं सोचे हो वैसे परिणाम आने कम होते गये। अन्त में कितने विज्ञान-शास्त्रियों ने आज एरोप्लेन पर इतना काबू पा लिया है कि पहले के बैलून की तरह अब अकस्मात नहीं होते हैं और मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार अपनी मर्जी से इच्छित स्थान पर उसे ले जा सकते हैं। इतना ही नहीं परंतु उसकी गति भी अब अपनी इच्छानुसार कम-ज्यादा कर सकते हैं। (इस उदाहरण से पता चलता है कि यह पुस्तक कब लिखी गई है।)

जैसे बैलून के सम्बन्ध में हुआ वैसे सामान्य कर्म के संबंध में भी हो सकता है या नहीं? सुख प्राप्ति के लिए किये गये कर्मों से दुःख की प्राप्ति होती है। उसका क्या कारण है? कर्म का यह नहीं सोचा हुआ और अनिच्छित परिणाम रोककर प्रत्येक कर्म से इच्छित और पहले से सोचा हुआ परिणाम ला सकते हैं क्या? प्रत्येक शिक्षित संस्कारी मनुष्य को यह और ऐसे दूसरे प्रश्न हर घड़ी उपस्थित होते हैं। बैलून पर जहाँ तक बराबर-पूर्णरूप से काबू नहीं था तब तक बैलून समाज को बहुत उपयोगी नहीं थे परंतु हाल के जमाने में एरोप्लेन पर काबू पाने से वह हर एक देश को बहुत उपयोगी साबित हुए हैं और उसके कारण ही वे लोकप्रिय हुए। जैसे विज्ञान के विकास से बैलून पर काबू पाया है उस प्रकार कोई एक विशेष विद्या से, ज्ञान से ... कर्म पर काबू पा सकते हैं। प्रत्येक कर्म का इच्छित परिणाम-सुखकारक हो सके, उसका नहीं सोचा हुआ दुःखकारक परिणाम रोक सके, ऐसी कोई विद्या हो तो वह इस समाज के हर एक व्यक्ति को बहुत ही उपयोगी और उपकारक होगी। ऐसी विद्या के प्रचार से दुनिया को देवलोक में बदला जा सकता है।

हर एक कर्म का इच्छित परिणाम आये और अनिश्चित परिणाम न आये, इस प्रकार की विद्या (Science) भी है। प्रत्येक धर्म के आचार्यों ने इस विषय पर कमोबेश चर्चा की है। दुनिया के सर्व धर्मों से हिन्दू धर्म में, सनातन धर्म में इस विद्या के गहन अभ्यासी ऋषि-मुनि हुए हैं। उन्होंने सृष्टि का बंधारण समाज का बंधारण, मनुष्य स्वभाव का बंधारण तथा कितने ही कुदरती नियमों का लम्बे समय तक अवलोकन कर कुछ नियम कुछ कार्यपद्धति निश्चित की है। इन नियमों के अनुसार कार्य करने से, इस कार्यपद्धति से कर्म करने से, हर एक कर्म का इच्छित फल पाया जा सकता है। इस पद्धति से कर्म करने से मनुष्य अपने हर एक कर्म के अनिच्छित/नहीं सोचे हुए परिणामों को, दुःख को रोक सकता है। इतना ही नहीं परंतु हर एक कर्म का इच्छानुरूप परिणाम-सुख अपनी
CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इच्छानुसार सुख–आनंद–परमानंद पा सकता है। इस विद्या से हर एक व्यक्ति सुख संपादन कर सकता है। इतना ही नहीं परंतु सुख की पराकाष्ठा और मुद्दत समय भी अपनी इच्छा से बढ़ा सकता है। कर्मयोग, वह इसी विद्या का नाम है। कर्मयोग की पद्धति से किया हुआ प्रत्येक कर्म उसके कर्ता को कभी भी दुःखकारक तो होता ही नहीं है, परंतु कर्ता की इच्छानुसार उसे सुख, शांति, आनंद देता है। यह कर्मयोग की विद्या कैसी है ? क्या–क्या उसके सिद्धांत हैं और किस पद्धति से कर्म करने से कर्म की बंधन–शक्ति, दुःख देने की शक्ति नाश होती है, किस प्रकार का ध्यान रखने से कर्म, उसके कर्ता को सुख शांति तथा आनंद देता है यह इसके बाद के प्रकरणों में विचार करने में आएगा।

❑

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकरण–३

कर्म और कर्मयोग

'कर्मयोग' शब्द में कर्म और योग ऐसे दो शब्द हैं। इन दोनों शब्दों में से कर्म शब्द का अर्थ इससे पहले प्रकरण में विचार किया है। अब योग शब्द पर विचार करना है।

कर्मयोग के अभ्यासी को जैसे कर्म शब्द का सही अर्थ शुरुआत से ही समझने की जरूरत है वैसे ही 'योग' शब्द का अर्थ भी यदि शुरुआत से ही सही समझने में आये तो काफी मुश्किलें/मुसीबतें दूर हो सकती हैं।

योग शब्द संस्कृत के युज् धातु से बना है। युज् शब्द का सामान्य अर्थ (Dictionary Meaning) जोड़ना (Join, Unite) मिलाना, एक दूसरे के साथ लगाना ऐसा होता है। योग यानी जोड़ना (Union), संधारण, मिलाना।

योग के ऊपर दर्शित सामान्य अर्थ से योग शब्द का पारिभाषिक अर्थ उतर आया है। सामान्य रीति से योग यानी योगशास्त्र–इस अर्थ में योग शब्द प्रचलित है। जीव और शिव, शरीर और आत्मा यह स्वभाव से एकत्र होने से भी विकासक्रम में माया की वजह से अलग हुए से दिखते हैं। इस प्रकार के अलग हुए दिखते से दो अलग–अलग पदार्थों को जो मिलाये, इकट्ठा करे उसका संयोग कराये, जीव को शिवम् बनावे, शरीर में से शरीर का भाव भुला के सर्वात्मभाव की झाँकी कराये वह विद्या ही योग विद्या–योगशास्त्र (Science of Yoga) है।

इस योगशास्त्र के प्रणेता भगवान पतंजलि मुनि थे। पतंजलि मुनि के बनाये योगशास्त्र को पतंजलि योग या योग के नाम से जाना जाता है। यह शास्त्र बहुत महत्व का है। इस शास्त्र के अभ्यास से योगीजन कितने प्रकार की सिद्धि पाकर ब्रह्म भाव को पाते हैं।

यह योगशास्त्र बहुत महत्व का है। इसकी कितनी ही क्रियाएं सामान्य मनुष्य से नहीं हो सकतीं। इस योगशास्त्र की क्रिया में अखण्ड ब्रह्मचर्य, अडिग अपरिग्रह, प्राणायाम, सतत् ध्यान धारणा वगैरह करना होता है। सामान्य लोग 'योग' यानी ऊपर वर्णित पतंजलि योग के अर्थ में योग शब्द को समझते हैं परंतु यह मान्यता सही नहीं है।

श्रीमद्भगवद्गीता में पतंजलि योग का कुछ एक वर्णन है परंतु वह बहुत कम है। 'कर्मयोग' इस शब्द में योग यानी पतंजलि योग वाले अर्थ में नहीं उपयोग हुआ है। इस कारण से पतंजलि योग के आचरण करते जिस–जिस

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
प्रकार की मुसीबतों का, सुखत्याग, धन–दारादि त्याग, ब्रह्मचर्य आदि साधनों की आवश्यकता पड़ती है वह बहुत महत्व के नहीं हैं। ये साधन हों तो साधक की उन्नति का वेग बहुत बढ़ जाता है परंतु कर्मयोग के सिद्धान्तों को आचरण में लाने के लिए यह साधन अनिवार्य (Undispensible) नहीं हैं। संक्षिप्त में कर्मयोग के अभ्यासी को, कर्मयोग के सिद्धान्त अपने रोज के व्यवहार में रखने वालों के लिए उसे अपना रोज का धन्धा, व्यापार या नौकरी, स्त्री–पुत्र या मित्र या अपने शरीर को सामान्य रूप से सुख तथा सुविधा देने वाले साधनो का यकायक परित्याग करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

भगवद्गीता के हर एक अध्याय के मुख्य विषय को सूचित करने के लिए उस–उस अध्याय को विशेष नाम दिया गया है। इन प्रत्येक नाम के अंत में योग शब्द आता है। अर्जुन को हुए विषाद का वर्णन पहले अध्याय में आता है। उस अध्याय का नाम अर्जुन–विषाद योग ऐसा रखा गया है। इसी प्रकार सांख्य के बदले सांख्य योग ऐसा अध्याय का नाम दिया है। योग शब्द का अर्थ–भगवद्गीता में सामान्य रीति से जिस अर्थ में–उपयोग में लिया गया है वह निश्चित करने में यह हकीकत ध्यान में रखना जरूरी है।

कर्मयोग यानी कंर्मनिष्ठा, योग शब्द निष्ठा के अर्थ में उपयोग में लिया है। योग यानी परमात्मा को प्राप्त करने की एक प्रकार की साधन–पद्धति। कर्मयोग यानी परमात्मा को प्राप्त करने की–पूर्णानन्द प्राप्त करने की–सुखी होने की एक ऐसे प्रकार की साधन पद्धति जिसके अंदर मनुष्य के कर्म को मुख्यतः उपयोग में लिया है। संसार को त्याग करके नहीं, जगत को छोड़कर नहीं परन्तु संसार में रहकर, संसार के सब कार्यों, तमाम कर्तव्यों के रहस्य को समझकर उस प्रकार से संसार के प्रत्येक कार्य कंरके परमात्मा को प्राप्त करने की साधन पद्धति कर्मयोग है।

कर्मयोग शब्द में इस्तेमाल 'योग' शब्द का उपरोक्तानुसार अर्थ है। योग यानी साधन पद्धति। कर्म को प्रमुख स्थान देकर परमात्मा को प्राप्त करने की जो साधन पद्धति अपने ऋषि–मुनियों ने रची है उसका नाम है कर्मयोग। इस पद्धति के अनुसार आचरण करने वाले मनुष्य कर्मयोगी हैं। कर्मयोगी यानी कर्म के सिद्धान्त को, रहस्य को समझकर तदनुसार आचरण करने वाले पुरुष यानी व्यक्ति।

'योग' शब्द महत्व का होने से श्रीमद्भगवद्गीता नें भी उसको समझाया है। इस सम्बंध में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है–

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।। २–४८

हे धनंजय–अर्जुन ! योगस्थ.... कर्मयोग में स्थिर होकर, कर्मयोग के सिद्धान्त को समझकर, संग (attachment) का त्याग करके तथा सिद्धि (Success) या

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

असिद्धि (Non success failure) में समभाव रखकर तू कर्म कर। समत्व (Equality Mental Equallibriun) ... कार्य की सिद्धि या असिद्धि में समभाव, कर्म के फल के प्रति उदासीनता, वही योग कहलाता है।

समत्व वही योग, यह योग का लक्षण ऊपर के श्लोक में दिया है। योग शब्द का अर्थ स्पष्ट करने के उपरान्त कर्मयोग की कुंजी, कर्मयोग का मूल सिद्धान्त ऊपर के श्लोक में दर्शाया है। निष्काम कर्म का बीज ऊपर के श्लोक में है। प्रत्येक कर्म का परिणाम अच्छा या बुरा, इच्छित या प्रतिकूल, जय या पराजय, जीत या हार, ऐसे दो प्रकार का होता है। अपने कर्म का परिणाम अपनी इच्छानुसार आने से मनुष्य को सुख होता है। अपने कार्य का परिणाम अपनी इच्छा के विरुद्ध आने से उसे दुःख होता है।

इस प्रकार के कर्मजन्य सुख और दुःख से मनुष्य की कार्यशक्ति पर असर पड़ता है। अपनी इच्छा के विरुद्ध परिणाम आने से मनुष्य निराश हो जाता है और ऐसा होने से उसकी कार्य शक्ति में बहुत कमी आ जाती है। सुख–दुःख में समभाव रखने की आदत से मनुष्य अपनी कार्यशक्ति का बचाव (Conservation of Energy) कर सकता है। कर्मयोग के अभ्यासी के लिए सिद्धि–असिद्धि में समभाव रखने की आदत बनाना एक महत्वपूर्ण मानसिक कसरत (Mental Exercise) है। शारीरिक विकास (Physical Development) के लिए मानसिक कसरत की जरूरत है उसी तरह आध्यात्मिक (Spiritual) विकास के लिए मानसिक कसरत की जरूरत है। कर्मयोग व आध्यात्मिक विकास की इच्छा रखने वाले अभ्यासी/प्रशिक्षार्थी के लिए क्रमपूर्वक कुछ एक महत्व की मानसिक (Graded Mental Exercise) कसरत की एक साधन पद्धति है।

'योग' शब्द की एक दूसरी व्याख्या भी गीता में दी गई है। यह व्याख्या पहले दी हुई व्याख्या से अधिक व्यापक (Comprehensive) अर्थ वाली व्याख्या है। ऊपर जो व्याख्या दी गई है उससे दूसरी व्याख्या अलग दृष्टिबिन्दु से दी गई है। इस सम्बंध में कहा है कि:–

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।। २–५०

इस श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को कर्मयोग युक्त होने का आग्रह करते हैं। कर्मयोग युक्त होने का क्या प्रयोजन है, कर्मयोगी होने से क्या फायदा है यह भी ऊपर के श्लोक में कहा है। कर्मयोगी होने से, कर्मयोग के सिद्धान्तों को समझने से मनुष्य सुकृत्य और दृष्कृत्य को, सुकृत्य और दृष्कृत्य की भावनाओं का त्याग कर सकता है। ऐसा त्याग वास्तव में (In the Nature of action) कर्म में स्वभाव से नहीं है, परंतु कर्मयोगी, कर्मयोग के ज्ञान के बल से ऐसी भावनाओं का त्याग अभ्यास से कर सकता है क्योंकि कर्म करने में कुशलता ही कर्मयोग है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर्मयोग यानी कर्म करने में कुशलता। सामान्य मनुष्यों को जो कार्य कठिन लगते हैं, जो कार्य करने में सामान्य मनुष्यों को अधिक कठिनाई पड़ती है वह कार्य कुशल मनुष्य (Expert) बहुत सहजता से और सरलता से तथा सुख से कर सकते हैं। सुकृत्य और दुष्कृत्य की भावना सामान्य मनुष्यों से छोड़ी नहीं जाती परन्तु जो कर्म के नियम जानते हैं, जिन्होंने कर्मयोग के सिद्धान्त का अभ्यास किया है, जो कर्मयोगी हैं वे कर्म करने की विद्या के कुशल पुरुष हैं, वे इस भावना का त्याग कर सकते हैं। सामान्य पुरुष अपनी सामान्य बुद्धि से सुकृत्य–दुष्कृत्य की जिस भावना का त्याग नहीं कर सकते वही कर्मयोगी कर्म करने के अपने कौशल के कारण बहुत सरलता से उस भावना का त्याग कर सकते हैं।

इस सृष्टि में कितने प्रकार के ज्ञान–विज्ञान तथा विद्याएं हैं परन्तु वे प्रत्येक मनुष्य को एक जैसी उपयोगी, रोज के व्यवहार में उपयोगी नहीं होती। केवल कुशल पुरुष/दक्ष पुरुष ही इस दुनिया की प्रत्येक विद्या को लोकोपकारक बना सकते हैं। यह सिद्धान्त कर्म पर भी लागू होता है। कर्म में कुशल मनुष्य, कर्मयोगी ही, कर्म के सिद्धान्त को व्यवहार्य और लोकोपयोगी बनाकर दुनियां पर से दुःख का बोझा कम करने में शक्तिवान होते हैं।

अफीम, सोमल वगैरह ऐसे पदार्थ हैं जिन्हें यदि सामान्य मनुष्य उपयोग करे तो उससे उनके प्राण भी जा सकते हैं। इस प्रकार अफीम वगैरह पदार्थ स्वभाव से जहरीले होने के बावजूद एक कुशल मनुष्य के हाथ में, एक होशियार वैद्य के हाथ में बहुत लोकोपकारक दवा के रूप में इस्तेमाल होते हैं। अपने कौशल से वैद्य सोमल जैसे जहरीले पदार्थों के प्राण लेने वाले गुण को दबा सकते हैं और ऐसी जहरीली दवाओं से भी कुशल–वैद्य कितनी बार नवजीवन प्रदान करते हैं।

सामान्य मनुष्य पानी में गिरने से डूब जाते हैं परन्तु जिनको तैरना आता है, तैरने की विद्या में जो कुशल हैं वे पानी में से भी उस पार इच्छित स्थान पर जा सकते हैं। बहुत अच्छा तैराक १–२ मील तैरकर जा सकता है परन्तु पानी में हजारों मील की यात्रा करना सामान्य मनुष्य के लिए असंभव है फिर भी एक होशियार नाविक एक स्टीमर में हजारों मनुष्यों को हजारों मील की यात्रा सम्पूर्ण सुख और आराम के साथ करा सकता है, इसका क्या कारण है? कैप्टन की कुशलता–यही उसका कारण है। गुरुत्वाकर्षण के नियम के अनुसार एक कागज का टुकड़ा या पत्थर भी आप ऊपर से डालें तो नीचे ही गिरेगा। इस नियम के आधार पर छोटी से छोटी परन्तु वजनदार वस्तु पृथ्वी की तरफ ही आकर्षित होती है। इस प्रकार के सामान्य सिद्धान्त के होने के बावजूद उड्डयन–कला में कुशल पुरुष आजकल सैकड़ों मनुष्यों को जमीन से ऊपर ले जाकर हवा में घंटों रख, यात्रा कराते हैं। इस कार्य में भी कुशलता ही मुख्य कारण है।

कुशलता (Expert Knowledge) ही इस दुनिया के सभी आश्चर्यों की मुख्य

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बुनियाद है। एक लोहे जैसी कम कीमत की वस्तु को भी कुशलता से मनुष्य सोने से भी अधिक कीमती और उपयोगी बना सकता है। कुशलता से ही अफीम जैसे प्राणघातक द्रव्य भी नवजीवन देने वाले हो जाते हैं। कुशलता से ही गुरुत्वाकर्षण के सृष्टि के नियमों को भी काबू में किया जा सकता है। कुशलता यह एक प्रकार की पारसमणि है। जिस कुशलता की पारसमणि से अफीम जैसे प्राणघातक द्रव्य को भी अमृत जैसा बनाया जा सकता है, जिस कुशलता से समुद्र उल्लंघन करने का, हवा में उड़ने का, जमीन के नीचे रैंल चलाने का–ऐसे अनेक आश्चर्य में डालने वाले कार्य करना मनुष्य ने सीखा है, वही कुशलता यदि मनुष्य के रोज के जीवन–व्यवहार में, रोज के कार्यव्यवहार में आ जाए तो कुशलता की यह पारसमणि व्यक्ति को महात्मा बना दे, दुःखी दुनिया को स्वर्ग जैसा सुखी बना दे, दुनिया में से दुःख का नाश करके दुनिया के प्रत्येक मनुष्य को अखण्ड और चिरन्तन सुख दिलाके परमानन्द की प्राप्ति करा सकती है, इसमें कोई शंका नहीं है। कर्मयोग यानी कर्म करने की एक प्रकार की कुशलता।

कर्मयोग के पारसमणि से कर्मयोगी दुःख का नाश कर सकता है और सुख की, परमानन्द की प्राप्ति कर सकता है। यह सिद्धान्त शब्दशः/अक्षरशः (Literary) सही है।

इस दुनिया में आजकल कितनी विद्याएं प्रचलित हैं। विज्ञान के सत्य, नियम, जितने चौकस और निश्चित हैं उतने ही, या तो उससे भी अधिक चौकस और निश्चित कर्मयोग के नियम हैं। परन्तु जैसे प्रयोगशाला में गए बिना, प्रयोग किए बिना, विज्ञान के नियमों का सत्यापन नहीं होता, उसी प्रकार इस दुनिया रूपी प्रयोगशाला में कर्मयोग के आधार पर कर्म किए बिना, कर्मयोग के ऊपर के सिद्धान्त का महत्व/सत्यता सामान्य मनुष्य के समझ में नहीं आती। कर्मयोग के नियम के अनुसार, शुरुआत में छोटे–छोटे कर्म करने की आदत डालना वही कर्मयोगी होने का, कर्म की पारसमणि प्राप्त करने का पहला सोपान है।

जैसे अफीम में मनुष्य के प्राण लेने के तथा प्राण देने के गुण हैं उसी प्रकार मनुष्य के प्रत्येक कर्म के सुखकारक तथा दुःखदायक गुण, पुण्यकारी तथा पापी, धर्मी तथा अधर्मी गुण हैं। कुशलता से जैसे अफीम के प्राणनाशक गुण को दबाया जा सकता है, दूर किया जा सकता है उसी प्रकार कर्मयोग से प्रत्येक कर्म का दुःखदायक गुण दबाया जा सकता है, दूर किया जा सकता है और उसके सुखदायी गुणों का विकास किया जा सकता है।

कोई भी कर्म स्वभाव से (By Itself) बिल्कुल खराब या बिल्कुल अच्छा नहीं होता। कर्ममात्र में जैसे सुख की सम्भावना है उसी प्रकार प्रत्येक कर्म में दुःख का बीज बनने का दोष भी विद्यमान है ही।

कर्म का, प्रत्येक कर्म का संयुक्त स्वभाव स्पष्ट करने के लिए श्रीमद्भगवद

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गीता में एक अति सुन्दर उदाहरण दिया गया हैः–

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः।।१८–४८

हे कौन्तेय! सहज कर्म स्वभाव से उत्पन्न कर्म, सदोष और दोषवाला होने पर भी उसका त्याग नहीं करना, क्योंकि सभी कर्म दोषयुक्त हैं। जैसे प्रत्येक अग्नि धुएं से लिपटी होती है उसी प्रकार प्रत्येक कर्म दोषरूपी धुएं से बिल्कुल अलग कर सके ऐसा सम्भव नहीं है। जैसे सामान्यतया धुएँ के बिना अग्नि नहीं मिलती वैसे सामान्य रूप में बिना थोड़े दोष के कर्म नहीं होता। दोष यानी दुःख देने की, दुःख पैदा करने की सम्भावना और शक्ति (Potentiality) प्रत्येक कर्म चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों न हो फिर भी उसमें दुःख उत्पन्न करने/दुःखदायी होने की सम्भावना या शक्ति तो अवश्य है ही।

प्रत्येक कर्म में स्वाभाविक रूप में छिपी इस दुःखकारक सम्भावना और शक्ति को सम्पूर्ण रूप से नाश करके कर्म की सुख देने की सम्भावना तथा शक्ति का सम्पूर्ण रूप से विकास हो सके, ऐसी विद्या है तो उससे जगत की कोई और विद्या मनुष्य को, जनसमाज को विशेष हितकारक नहीं होगी। इस प्रकार की विद्या है और उस विद्या का नाम कर्मयोग है। इस दृष्टि से कर्मयोग का वर्णन करते हुए श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया हैः–

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।
बुद्धया युक्ता यया पार्थ कर्मबन्ध प्रहास्यसि।। २–३९

ऊपर के श्लोक कहने के पहले भगवान श्रीकृष्ण ने श्री अर्जुन को सांख्य योग–न्याय योग के सिद्धांतो को समझाया था। सांख्य योग कहने के पश्चात् भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि अब मैं तुझे बुद्धियोग–कर्मयोग कहूँगा। कर्मयोग का रहस्य समझाऊँगा। इस कर्मयोग का बुद्धियोग से युक्त होने से उसके बंधन से कर्म बंध कर्म के बंधनी–कर्म के दुःख देने की शक्ति को तू बिल्कुल नाश फिर से उत्पन्न न हो सके इस तरीके से कर पायेगा। ऊपर के श्लोक से समझ में आता है कि कर्म बंधनों को, कर्म के दुःख उत्पन्न करने की शक्ति का सम्पूर्ण नाश करने की विद्या वही बुद्धियोग कर्मशास्त्र है।

कर्मयोग यानि बुद्धियोग यह हकीकत भी ऊपर के श्लोक से समझ में आती है। कर्मयोग यानि कोई ऋषि मुनि या सामान्य शास्त्र के भरोसे पर माने हुए सिद्धान्तों का समूह ऐसा अर्थ नहीं है। कर्मयोग, यानि पूर्व के जमाने में जैसे बिना अर्थ समझे, बिना रहस्य समझे, अपनी धार्मिक क्रियाएं होती थीं उसी प्रकार की कोई क्रिया करना ऐसा नहीं है। कर्मयोग में किसी भी प्रकार की अश्रद्धा अथवा अंधश्रद्धा को स्थान नहीं है। बुद्धि का (Inteligent and Standing) कर्मयोग की पद्धति में प्रधान और प्रमुख स्थान होने से ही कर्मयोग को बुद्धियोग ऐसा नाम

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
गीता में कई स्थानों में दिया गया है।

बुद्धि—सार असार निर्णय करने की शक्ति (The power of Discrimination) सामान्य रूप से कम या अधिक मात्रा में सभी मनुष्यों में होती है। ऐसे होने के बावजूद कर्मयोगी की बुद्धिसामान्य मनुष्य से विशेष विकसित—दीर्घ दृष्टि वाली विशेष विशुद्ध तथा वृहद् दृष्टिमर्यादा वाली होती है। कर्मयोगी की बुद्धि कैसी होती है उसका वर्णन करते हुए भगवद्गीता में कहा गया है:—

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्।। २—४१

कर्मयोगी की बुद्धि व्यवसायात्मिक (One pointed) होती है, जबकि सामान्य मनुष्य की बुद्धि अव्यवसायात्मिक यानि बहुशाखा वाली होती है। व्यवसायात्मिक बुद्धि अव्यवसायात्मिक बुद्धि—एकाग्रचित और विक्षिप्तचित, एकत्रित हुई भावना तथा विखंडित शुभेच्छाओं के अर्थ और उसके बल को शुरुआत में ही जानने की आवश्यकता है। ऊपर दर्शित प्रत्येक शब्द का और उसके अर्थ का यदि उसके उस अर्थ के पीछे रही सही अद्भुत भावनाओं का तथा अखण्ड शक्ति का शुरुआत में ही विचार करें तो अभ्यासी की उन्नति का वेग अपने आप बढ़ जायेगा।

एक कुएँ में से यदि हम एक—एक घड़ा पानी बाहर निकाल रास्ते पर बिखेर दें और ऐसे प्रयत्न कई महीनों तक या वर्षों तक चालू रखें तो भी ऐसे कार्य से पानी में गति या पानी में खींचने की शक्ति को उत्पन्न नहीं कर सकेंगे। इस प्रकार करने के बदले यदि कुएँ के पानी में एक अच्छे पम्प द्वारा उसे खींचकर किसी एक नालिका से उसे निकालें तो नालिका में से निकलते पानी में इतना वेग और ताकत आ जाएगी कि उस पानी से मजबूत पत्थर की दीवारों को भी तोड़ा जा सकता है। कुएँ का पानी तो पहले था वही है फिर भी उसकी शक्ति में इतना महान फर्क कैसे आया? कुएं का पानी (पाइप) नालिका में एकत्रित होता है और उसे पम्प द्वारा ताकत मिलती है। उसी पाइप से जो पानी पहले कुछ नहीं कर सकता था वही बड़ी से बड़ी दीवार भी तोड़ सकता है।

कर्म के सम्बन्ध में भी ऊपर के सिद्धान्त लागू होते हैं। आप हमेशा सुबह से शाम तक कर्म करते रहें—शक्तिरूपी पानी का व्यय करते रहें फिर भी दुःख की दीवार जैसी की तैसी कायम रहेगी ही। यदि आप क्रियारूपी पानी को कर्मयोग के पम्प द्वारा कर्मयोग के सिद्धान्त के अनुसार उपयोग करें, कर्मयोग की दृष्टि से ही सारा काम करें तो ही दुःख की यह दीवार तोड़ी जा सकती है। जैसे सामान्य पम्प में पानी को गति देने के लिए एक विशेष काम की जरूरत पड़ती है वैसे ही मनुष्य के कार्य में दुःख नाशक अद्भुत शक्ति को उत्पन्न करने के लिए कर्मयोग के सिद्धांत की आवश्यकता है। भगवद्गीता का अन्तः निरीक्षण करने से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पता चलता है कि पहले अध्याय में अर्जुन की विषादग्रस्त स्थिति व आचरण की अव्यवसायात्मिक बुद्धि का अच्छे से अच्छा उदहारण है। आरम्भ में अर्जुन लड़ने को तैयार होकर कुरुक्षेत्र में लड़ने आते हैं। उस समय उसे दुर्योधन तथा उसके सैनिकों के प्रति तिरस्कार और अवज्ञा की बुद्धि उत्पन्न होती है। भीष्म तथा द्रोण आदि को देखने से उसकी वह बुद्धि फिर जाती है और वह कहते हैं:–

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावैरिसूदन।। २–४

हे मधुसूदन ! भीष्म, द्रोण आदि की तरफ मैं कैसे तीर फेंक सकता हूँ। इस श्लोक में अपने गुरु के प्रति अर्जुन की पूज्यभाव बुद्धि है। ऐसा देखने में आता है कि अर्जुन की दुर्योधन की तरफ द्वेष बुद्धि भी बदल जाती है और वे कहते हैं:–

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ।
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ।। १–३६

अर्जुन कहते हैं कि धृतराष्ट्र के पुत्र को मारने में क्या आनन्द है? उनको मारने से हमें तो पाप ही लगेगा। आगे चलकर कहते हैं कि–

कथं न ज्ञेयमस्माभि पापादस्मान्निवर्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भर्जनार्दन ।। १–३६

धृतराष्ट्र के पुत्रों ने गलत ढंग से पांडवों का राज्य छीन लिया उससे वह दंड के पात्र तो हैं परन्तु दुर्योधन आदि जिद्दी और हठी हुए तो क्या मुझे (अर्जुन) भी वैसा होना। उसने–दुर्योधन ने भूल की तो भले की परन्तु क्या मुझ अर्जुन को भी वैसी ही भूल करनी पड़े और क्या कुल के कुलनाशक पाप में से बचना अधिक अच्छा नहीं है? ऐसे अनेक तर्क–वितर्क अर्जुन को आते हैं। अर्जुन की अव्यवसायिक बुद्धि का बहुशाखा वाली बुद्धि का यह प्रमाण (Proof) है। अव्यवसायात्मिका बुद्धि का क्या परिणाम आता है वह भी अर्जुन के विषाद से तथा उसके शारीरिक और मानसिक शक्ति के नाश से स्पष्ट होता है। अर्जुन जैसे महान धर्नुधर के हाथ से धनुष गिर पड़ता है और उसका मुख सूख जाता है और वह हताश होकर हथियार छोड़ देते हैं। यह सारा अपनी बुद्धि में हुए भ्रम पर ही आधारित था।

अर्जुन का उत्साह वापस लाने में भगवान श्रीकृष्ण ने क्या कहा? उसकी अव्यवसायात्मिका भ्रम बुद्धि को व्यवसायिक, अध्यात्मिक बनाने का प्रयत्न किया। अर्जुन को कर्मयोग का ज्ञान दिया, कर्मयोग के सिद्धान्त समझाए।

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन के बहुशाखा वाली बुद्धि की एक के बाद एक शाखा काट डाली। उसकी बुद्धि को एकाग्रचित किया। भगवान ने आगे कहा कि भीष्म, द्रोण आदि मरे या जिएँ तू न नहीं करना। कुल नाश के दोष के धार्मिक झगड़े में तू मत उतरना वह तेरा काम नहीं है। तेरे लिए तो इन सब प्रश्नों को

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

छोड़ स्वधर्मपालन करना है। तेरे वर्णाश्रम के अनुसार अपना काम करना वही तेरा कर्तव्य है।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु।। १८–४५

हे अर्जुन ! प्रत्येक मनुष्य अपना स्वकर्म–अपना कर्तव्य सही करने से ही स्वयंसिद्धि (Perfection) को पाता है। इस प्रकार कहकर स्वकर्म से स्वयंसिद्धि की कैसे प्राप्ति होती है उसका विगतवार ज्ञान भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिया। स्वकर्म से स्वयंसिद्धि की प्राप्ति वह श्रीमद्‌भगवद्‌गीता का अमूल्य मंत्र लेख केवल हिन्दुओं को ही नहीं–हिन्दवासियों को ही नहीं, अपितु जगत को सभी प्रजा के सभी कामों में पूर्ण रूप से अनुकरणीय है। जाति–पाति, देशकाल आदि कोई भी कारण इस सिद्धान्त के पालन में बाधक नहीं होना चाहिए।

जब तक हिन्द की प्रजा ने इस सिद्धान्त का पालन किया तब तक हिन्द की प्रजा उन्नति के शिखर पर रही, लेकिन इस सिद्धान्त की थोड़ी अवज्ञा होते ही उसकी अवनति शुरु हुई।

जगत के महान धर्मो के प्रामाणिक और मुख्य ग्रन्थों में यदि भगवद्‌गीता को बहुत उच्च स्थान दिया जाता है तो उसके बहुत कारणों में से भगवद्‌गीता का कर्मयोग वह एक महत्व का कारण है। हिन्दू प्रजा आलसी, प्रवृतिपरायण नहीं निवृति की आकांक्षा रखने वाली है, और इसलिए उससे दुनिया का उद्धार नहीं हो सकता है, ऐसे आक्षेप देने वाले लोग हिन्दू धर्म के गीता के कर्मयोग के सिद्धान्त से बिल्कुल अनभिज्ञ हैं।

दुनिया के प्रत्येक धर्मग्रन्थों को देखने से पता चलता है कि प्रभू की कृपा पाने के लिए परमेश्वर की प्राप्ति करने के लिए मनुष्य को दुनिया से दूर जाना–अपने रोज के कार्य–व्यवहार को छोड़ देने या उसमें महत्त्वपूर्ण के बदलाव लाने को कहा गया है। संक्षिप्त में ईश्वर–प्राप्ति के लिए संसार व्यवहार–कर्म को अड़चन रूप माना गया है।

दुनिया के किसीं भी तत्ववेत्ता, धर्मनेता ने यदि ऊपर दर्शित सामान्य मान्यताओं के विरुद्ध जाकर कर्म करके ही ईश्वर की प्राप्ति का मार्ग बताया हो वैसा हिन्दुस्तान में ही संभव हुआ है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता एक अनुपम रूपक है। नाट्य दृष्टि से (स्टेण्ड प्वाइंट आफ द ड्रामा) देखने से भी भगवद्‌गीता व्यास की चातुर्य दृष्टि का अद्‌भुत व अद्वितीय नमूना है। जगत के सबसे प्रवृत्तिमय स्थान में, युद्धभूमि बहुत ही प्रवृत्ति वाली भूमि है। ईश्वर की प्राप्ति में यदि कोई बड़े से बड़ा विघ्न रूप हो तो वह हिंसा है युद्धभूमि यानि हिंसा का महान यज्ञ है। स्वाभाविक रूप से ऐसा करके सुख या परमानन्द की आशा नहीं रखी जा सकती है। अर्जुन को भी यह सब दुःखकर लगता था। सुख के लिए, शांति के लिए, प्रभू–

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राप्ति के लिए वह युद्धभूमि से भिक्षावृत्ति या सन्यास की तरफ आकर्षित हुए थे।

वास्तविक सुख अखण्ड शांति–प्रभू प्राप्ति–मोक्ष या परमात्मा–पृथ्वी से कहीं ऊपर आये किसी बदली के उस पार महल बनाकर नहीं रहते हैं। बहुत मुसीबतों से पहुँचा जाए वैसे दुनिया के किसी तीर्थ में छुपे नहीं बैठे हैं। ब्राह्मण, गाय या अन्य किसी प्राणी क़े घर में नहीं रह रहे। कोई महान मंदिर या मस्जिद की मोटी दीवारों के पीछे छोटे से आले में छिप के नहीं बैठे हैं। इस तरह का बोध यदि दुनिया के किसी धर्म ग्रन्थ में है तो वह श्रीभगवद्गीता में हैं। श्रीभगवद्गीता की पूरी रचना तथा उपदेश पद्धति को देखने से मालूम होता है कि भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं–अर्जुन सुख पाने के लिए–शांति की प्राप्ति के लिए–श्रेय की साधना के लिए, मोक्ष पाने के लिए तुझे जरा भी दूर जाने की जरूरत नहीं है। तू जो कर रहा है उससे दूसरा कार्य करने की भी जरूरत नहीं है। यदि तू कर्मयोग से, बुद्धि योग से, कर्मयोग का रहस्य समझकर कार्य करे तो तू जहाँ खड़ा है वहीं और तू अभी जिस कर्म से दूर भागने की इच्छा कर रहा है उसी कर्म से तुझे श्रेय, सुख और शांति मिलेगी। भगवान श्रीकृष्ण का यह संदेश केवल अर्जुन के लिए ही नहीं अपितु मनुष्य जाति के लिए है। कर्मयोग के सिद्धान्त के अनुसार कर्म करने से, युद्ध करने से, अर्जुन को युद्ध जैसे घोर कर्म से भी स्वराज्य प्राप्त हुआ। उसका विषाद दूर हुआ। उसे सुख तथा शांति मिली। कर्मयोग के सिद्धान्त ने जैसे अर्जुन की स्थिति में इतना अधिक बदलाव लाया उसी प्रकार कर्मयोग के सिद्धान्त के सही ज्ञान से प्रत्येक मनुष्य के जीवन में से विषाद (दुःख) दूर करके प्रत्येक मनुष्य का जीवन तेजोमय आनन्दी सुखी और सुखकर आज भी वह बनाया जा सकता है। भगवदगीता कहती है कि दुःखी जीवन को सुखी बनाने, मनुष्य को स्थानान्तर या तो स्थित्यान्तर (Change of place and Change in life) करने की आवश्यकता नहीं है। केवल कर्मयोग के सिद्धान्त के ज्ञान से, कर्म के पारसमणि से, प्रत्येक मनुष्य लोहे जैसे अपने फौलादी और दुःखी जीवन को सुवर्ण समान कीमती, उपयोगी और आनन्दी बना सकता है।

कर्मयोग यानि जीवन क़ी पूर्णता। कर्मयोग की कमी यानि उतने हद तक की अपूर्णता–कृपणता इस संबंध में गीता में किया हुआ विवेचन महत्व का हैः–

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः।। २–४६

कर्मयोग की पद्धति के अनुसार किये हुए कर्म तथा सामान्य बुद्धि से कर्मयोग के सिद्धान्तों को ध्यान में रखे बिना हुए कर्म की शक्ति में भेद बताया है। कर्मयोग की पद्धति से निष्काम प्रवृत्ति से किए हुए कर्म, सामान्य कर्म, सकाम कर्म बहुत ही निम्न प्रकार के है। धनंजय, अर्जुन तू बुद्धि का, बुद्धियोग का, कर्मयोग का आसरा ले क्योंकि फल की आशा से कर्म करने वाले सकाम कर्म करने वाले

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्यक्ति की स्थिति कृपण, दया करने जैसी है। सकाम कर्म करने वाले की स्थिति दया करने जैसी इसलिए है कि कर्मयोग से कर्म करने वाले को थोड़ी मेहनत से ही जो फल, जो सुख, शांति मिलती वह सुख शांति कर्मयोग बगैर कर्म करने वाले को नहीं मिलती। इतना ही नहीं परंतु ऐसे मनुष्य को सुख प्राप्ति की आशा से किये हुए कर्मों से कितनी बार दुःख प्राप्ति भी होती है। कर्मयोग के सिद्धान्त के अनुसार आचरण करने वाले कर्मयोग के सिद्धान्त को रोज के जीवन व्यवहार में उपयोग करने वाले व्यक्ति को गीता में कई जगह पर योगी–कर्मयोगी अथवा योगयुक्त ऐसे नामों से सम्बोधित किया है। जो व्यक्ति कर्मयोग के अनुसार कार्य नहीं करते हैं ऐसे व्यक्तियों के लिए अयुक्त ऐसा विशेषण दिया है।

युक्त तथा अयुक्त मनुष्य के कार्य में, कर्म में बड़ी भिन्नता होती है। फिर भी बाह्य दृष्टि से युक्त तथा अयुक्त के कर्म एक सरीखे दिखते हैं, इस प्रकार दोनों के कर्मों में बाह्य साम्यता होने से भी दोनों की कार्यपद्धति भिन्न होती है। इस कारण इन दोनों के, युक्त और अयुक्त के, कर्म देखने में एक सरीखे लगने के बावजूद उनके परिणामों में महान फर्क होता है। इस सम्बन्ध में श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है–

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ।। ५–१२

युक्त मनुष्य–कर्मयोग, कर्म फल की इच्छा का त्याग कर केवल स्वधर्म बुद्धि से कर्म करता है और इस तरह किए हुए कर्म से युक्त मनुष्य अपने कर्म से सम्पूर्ण सुख–शाश्वत शांति को पाता है। अयुक्त मनुष्य कर्मयोग के सिद्धान्त के अनुसार न चलने वाले फल की इच्छा से प्रेरित होकर कर्म करता है और इस कारण से ऐसे मनुष्य को उसके कर्म से सुख और शांति मिलने के बदले केवल बंधन, दुःख की प्राप्ति होती है। युक्त तथा अयुक्त के कर्मों के परिणाम में इतना महान भेद है।

प्रत्येक मनुष्य को उसके हरेक कर्म में से–कर्म के परिणाम रूप, कर्म करने वाले व्यक्ति के लिए तथा समाज के लिए दुःख की अत्यंत निवृत्ति तथा अक्षय सुख की प्राप्ति करवाने का, कर्मयोग का एक महत्व का और मुख्य मुद्दा है। सुख की प्राप्ति होने से पहले प्रत्येक मनुष्य के दुःख की निवृत्ति करने की जरूरत है। इस कारण से कर्मयोग के अभ्यासी के लिए दुःख का क्या मतलब है, दुःख किन–किन कारण से सामान्य रूप में उत्पन्न होता है तथा वह कारण किस रीति से दूर कर सकते हैं उसका व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने की जरूरत है। दुःख निवृति वही सुख है या नहीं उस विवादग्रस्त चर्चा को क्षण भर अलग रखें तो भी दुःख निवृति वह सुख प्राप्ति का एक महत्व का साधन है, यह सिद्धान्त तो सर्वमान्य है। इस कारण से दुःख के विषय में विचार करना कर्मयोग के अभ्यासी के लिए सुख पाने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति के लिए आवश्यक है। ❑

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकरण–४

दुःख और उसकी निवृत्ति

इस सृष्टि की ज़ब शुरूआत हुईं तब से अब तक, इस सृष्टि में जन्मे, जन्मकर जीवित सभी पशु–पक्षी, प्राणी और मनुष्य को कम या अधिक मात्रा में कभी न कभी दुःख का अनुभव तो होता ही है। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य को दुःख का स्वानुभव होने से सामान्य मनुष्य को उसके जीवन व्यवहार में दुःख क्या है? इस प्रश्न का विधिवत विचार करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

दुःख निवारण के लिये चौकस और पद्धति अनुसार सतत प्रयत्न करने की महत्वाकांक्षा रखने वाले अभ्यासी को तो दुःख का यथार्थ स्वरूप शुरुआत में ही तय करने की आवश्यकता है। दुःख क्या है? दुःख यानी सुख का अभाव या दुःख जैसी कोई खास वस्तु या चीज है? दुःख के प्रकार कैसे तय हों, तथा उसका प्रमाण–नाप कैसे निकालें? दुःख तत्व पर मनुष्य का काबू है या कि दुःख के पंजे में फँसा मनुष्य दुःख में से मुक्त होने में बिल्कुल अशक्त और निराधार है या कि दुःख दूर करने की या उसको कम करने की मनुष्य में सत्ता है? दुःख वह दैवी आफत है या मनुष्य ने स्वयं खड़ी की हुई वस्तुस्थिति है? यह और ऐसे अनेक प्रश्नों में जगत के महान तत्वेत्ताओं को उलझन में डाला है। अलग–अलग तत्ववेत्ताओं ने, अलग–अलग धर्मगुरुओं ने इस विषय में अलग–अलग निर्णय दिये हैं। दुःख का अस्तित्व तथा उसका परिमाण कम करने की अलग–अलग ज्ञान पद्धति, अलग–अलग रास्ते बताये हैं। इन प्रश्नों का विगतवार समालोचन करने का यह उचित स्थान नहीं है परंतु प्रत्येक मनुष्य विशेष दिशा में प्रयत्न करे तो अपना दुःख दूर कर सकता है या तो उस दुःख का परिमाण (Intensity) और समय (Duration) कम कर सकता है। यह सिद्धान्त शुरुआत में ही समझने की आवश्यकता है। दुःख दूर करने के सामान्य सिद्धान्तों को मनुष्य समझ सके, समझकर अपने रोज के जीवन व्यवहार में उसका आचरण कर अपने दुःख का बोझा कम कर सके, वैसी व्यवहार्य सूचना श्रीमद्भगवद्गीता में दी है। इस सम्बन्ध में कहा है कि:–

तं विद्यात् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो, योगोऽनिर्विण्णचेतसा।। ६–२३

दुःख के संयोग का वियोग, दुःख को नाश करने की विद्या उसका नाम योग। ऐसे योग का, दुःखनाश करने की विद्या का ज्ञान मन में उदासी लाये बिना सम्पादन करना और सम्पादन करने के पश्चात् उसका आचरण करना। ऊपर के श्लोक से पता चलेगा कि दुःखनाश करने की विद्या है और जिस विद्या से दुःख

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का मूलतः नाश हो वैसी विद्या से दुःख कम भी कर सकते हैं यह भी स्वाभाविक है।

इस सृष्टि के बनाने वाले परमेश्वर एक परम कृपालु पिता हैं और इस सृष्टि में सृजित सभी प्राणी उनके प्रिय बालक हैं। इस प्रकार होने से फिर परमेश्वर ने सृष्टि में दुःख क्यों पैदा किया होगा? एक सामान्य पिता भी अपने बालकों को दुःखी करने के साधन अपने घर में नहीं रखता है तो फिर परमेश्वर जैसे परम कृपालु पिता ने दुनिया में दुःख क्यों रखा होगा? यदि ईश्वर ने दुनिया में दुःख रखा हो तो क्या अपने जैसे अल्पबुद्धि वाले मनुष्य से दुःख दूर हो सकता है क्या? यह प्रश्न मनुष्य को उलझाता है। इस उलझन का कारण भी सही है।

परमेश्वर की परम कृपालुता के साथ दुनिया के दुःख का समन्वय (Reconcile) सामान्य मनुष्य की बुद्धि से नहीं होता है और उसी कारण से वह उलझन में पड़ता है, घबराता है, हताश होकर देव को दोष देता है। दुःख में से मुक्त होने के प्रयत्न नहीं करके दुःख में पड़ा रहता है।

ऐसी परिस्थिति में पड़े हुए को और मुक्त होने की इच्छा रखने वाले को, सहज सोच–विचार करने की आवश्यकता है। प्रत्येक पिता अपने बालकों के सुख के साधन रखता है। कोई भी पिता अपने घर में अपने बालकों को दुःख हो ऐसे साधन नहीं रखता है। इस प्रकार होने से भी वस्तु का सही स्वरूप समझे बिना अज्ञान से और बालक–बुद्धि से कितने कुछ साधन का दुरुपयोग होने से, कई बालकों को हैरान होते हम देखते हैं। रसोई के लिए रखी अंगीठी या प्राइमस से कितने ही बालकों को जलते हुए देखा है। ऐसे किस्सों पर विचार करने से पता चलता है कि बालक के सुख सुविधा के लिए रखे साधनों के दुरुपयोग से वे दुःखदायक होते हैं।

ऊपर का सिद्धान्त स्पष्ट करने के लिए एक और दृष्टांत सोचने की आवश्यकता लगती है। अस्पताल में प्रत्येक दर्दी को जीवन प्रदान करने की दवा रखी जाती है। किसी भी अस्पताल में दर्दी को मार डालने की दवा नहीं रखी जाती। इस प्रकार होने के उपरांत हमें कई बार सुनने में आता है कि शरीर पर बाह्य इस्तेमाल करने की दवा पीने से या गलती से एक या दूसरी दवा के उपयोग करने से कितने मनुष्य मर जाते हैं। दवा वह दर्दियों के आराम करने के लिए सुख देने के लिए बनाने में आने के बावजूद उसका भूल से दुरुपयोग या दूसरा उपयोग, दवा का स्वरूप समझे बिना उपयोग वह दुःख का साधन, मरण का कारण बनता है।

जैसे एक प्रेमी पिता अपने घर में या विद्वान डॉक्टर के अच्छे अस्पताल में बालक या दर्दी को आराम देने के, सुख देने के साधनों को ही रखता है वैसे यह सारी सृष्टि एक परम कृपालु परमेश्वर ने अपने प्यारे बालकों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के लिए, प्राणियों के विकास के लिए बनायी है। यह सृष्टि सुख के साधनों से भरी है। सृष्टा के सृजन में कोई भी प्राणी या मनुष्य को दुःख देने हेतु इसमें से कोई भी चीज बनाने में नहीं आयी है। विचार करने से लगेगा कि दुनियाँ में दुःख जैसी कोई वस्तु ही नहीं है जो हमें दुःख रूप दिखती है वह स्वयं अपना अज्ञान, वस्तु के सही स्वरूप के ज्ञान का अभाव इसके सही उपयोग की जानकारी न होना उसका दुरुपयोग ही है।

दुनियाँ में दुःख जैसी वस्तु नहीं है। अपने को जो दुःखदायक प्रतीत होता है वह वास्तव में दुखरूप नहीं परंतु कुछ वस्तुओं का हमारे द्वारा किया हुआ दुरुपयोग है। यह सिद्धान्त जल्दी से सामान्य मनुष्य की बुद्धि में उतरना मुश्किल है। मनुष्य यदि इस विषय में सहज विशेष आत्मनिरीक्षण करने की आदत, अभ्यास डाले तो यह सत्य उसकी समझ में आयेगा, इतना ही नहीं इस ज्ञान से मनुष्य अपना दुःख भी काफी कम कर सकेगा।

प्रत्येक मनुष्य ने कुछ एक संजोग को–कुछ एक वस्तुओं को–कुछ एक स्थिति को दुःख रूप मान लिया होता है। इस प्रकार की वस्तुस्थिति दूसरों को है या नहीं और उनको दुःखकारक है या नहीं–यह सवाल प्रत्येक दुःखी मनुष्य को अपनी जात से ही पूछना है। इस प्रकार से अपनी औरों से तुलना करने से पता चलेगा कि अपने जैसी परिस्थिति, वस्तुस्थिति में रहने वाले मनुष्य वैसी ही परिस्थिति होने के बावजूद सुखी हैं।

इस सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिये एक उदाहरण लेना पड़ेगा। किसी मनुष्य को अपने धंधे में नुकसान होता है–किसी करोड़पति सेठ की पाँच पचास लाख की रोकड़ कम हो जाये। द्रव्य की हानि से–पैसा खो बैठने से काफी लोग दिलगीर हो जाते हैं। ऐसी गमगीनी का वास्तविक कारण क्या है? लक्ष्मी का नाश नहीं हो सकता। द्रव्य का त्याग जो सामान्य मनुष्य को दुःखरूप है वही एक योगी को–त्यागी को अपूर्व सुख का साधन है। ऐसे महात्माओं के लिये तो द्रव्यत्याग जो सामान्य मनुष्य को दुःखरूप है वह उनको सुखकर स्वर्ग के द्वार के खुलने के समान होता है।

जो सिद्धान्त द्रव्य पर लागू होता है वही स्त्री, पुत्र, लोकैषणा वगैरह सामान्य दुनिया के माने हुए सुख के साधनों के नाश पर भी लागू होता है। वृद्ध, बच्चे स्त्री की मृत्यु से सामान्य मनुष्य को दुःख होता है जबकि नरसी मेहता जैसे भक्तजनों को स्त्री की मृत्यु के समाचार से दुःख न होकर 'भला हुआ छुटी जंजाल सुख से भजेंगे श्री गोपाल' ऐसी भावना उत्पन्न हुई।

स्त्री पुत्र और राजवैभव का त्याग तो सामान्य मनुष्य को खूब ही कष्टदायी लगता है जबकि भगवान बुद्ध जैसे महात्मा ने सुन्दर स्त्री, तुरंत के जन्मे हुए पुत्र तथा राजवैभव का त्याग किया तभी उनका दुःख दूर हुआ, उनका सुख हुआ और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उनकी आत्मा को शांति मिली।

ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट होगा कि कोई भी वस्तु स्वभाव से दुःखदायक नहीं है। वस्तु के वास्तविक स्वरूप का अज्ञान–वस्तु का दुरुपयोग ही दुःख का कारण है। इस सिद्धान्त का विचार करेंगे तो यह भी कह सकते हैं कि दुनियाँ में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जिसका दुरुपयोग करने से वह दुःखदायी न हो। दुःख किसी वस्तु में नहीं, दुःख कोई ईश्वर की पैदा की हुई स्थायी वस्तु नहीं है। मनुष्य का अज्ञान वही दुःख है, यह अज्ञान दूर करने से मनुष्य दुःख दूर कर सकता है। सुख या दुःख यह ईश्वर द्वारा निर्मित कोई स्थायी तत्व नहीं है परंतु मनुष्य द्वारा स्वयं अपने अज्ञान से खड़ी की हुई एक काल्पनिक मानसिक स्थिति है।

यह महान सत्य श्रीमद्भगवद्गीता में बहुत अच्छी तरह से समझाने में आया है। पश्चिम में नीतिशास्त्र के तथा मानस शास्त्र के अनेक ग्रन्थ हैं। दुःख तथा उसके विनाश के विषय में उसमें बहुत बारीकी से विचार किया गया है फिर भी जगत के तत्वों के पृथक्करण की पद्धति से सुख–दुःख के सम्बन्ध में, हिन्दु शास्त्रकारोने जिन तत्वों को ढूँढ निकाला है वे खूब सादे होने के साथ सरलता से व्यवहार में रख सकें, वैसे हैं।

सुख, दुःख वगैरह कितने तत्व केवल भावमय एक प्रकार की वृत्तिरूप हैं। इस सम्बन्ध में श्रीमदभगवदगीता में कहा हैः–

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः।
सुखं दुःखं भावोऽभावो भयं चाभयमेव च ।। १०–४
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ।। १०–५

बुद्धिज्ञान, असंमोह (Non-delusion) क्षमा, सत्य, दम, शम, सुख–दुःख, भाव–अभाव, अभय, अहिंसा, समता तुष्टि (Contentment) तप, दान, यश, अयश यह सारे भूतों के प्राणियों के–मनुष्यों के भाव (Moods) हैं।

ऊपर के श्लोक में आया हुआ भाव शब्द का अर्थ शुरुआत में ही ठीक से समझने की आवश्यकता है। भाव (Moods) यानी एक प्रकार की मानसिक स्थिति (Mental State) भाव यानी एक प्रकार का मानसिक दृष्टिबिन्दु, सुख या तो दुःख का भाव–सुख या दुःख के भाद बदलने के लिए वस्तुस्थिति को बदलने की जरूरत नहीं परंतु उस वस्तुस्थिति की तरफ अपने मनोभावों को बदलने से हम दुःख में से सुख की प्राप्ति कर सकते हैं। हर एक कार्य बार–बार करने से–उसकी आदत डालने से आरम्भ में मुश्किल लगने पर भी बाद में आसान लगता है। मनोभाव बदलने का कार्य–दुःख में से सुख अनुभव करने का कार्य भी शुरुआत में अभ्यासी को मुश्किल लगेगा परंतु इस दिशा में मनोभाव बदलने की

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आदत पड़ने के बाद यह कार्य भी अन्य किसीभी सामान्य कार्य जितना सरल लगेगा।

पूरी भगवद्गीता इस सत्य का उदाहरण है। अर्जुन लड़ने के लिए तैयार होकर कुरुक्षेत्र में आते हैं, रणक्षेत्र में प्राणत्याग करने को तैयार कुटुम्बीजनों को देख उनके मन में दया उत्पन्न होती है, दया में से क्षमा उत्पन्न होती है। राज्य लोभ के खातिर वह कुटुम्ब का नाश करने को तैयार हुआ है– ऐसा सोचकर अर्जुन को अपनी जात पर तिरस्कार बुद्धि उत्पन्न होती है। इन सभी घटना से अर्जुन विषादग्रस्त होता है–अर्जुन को दुःख होता है। यह दुःख कितना दुःसह था वह, अर्जुन की शारीरिक और मानसिक स्थिति का पहले अध्याय में वर्णन किया है, उससे अनुमान लगाया जा सकता है। दुनियां के सामान्य मनुष्य के दुःख के साथ तुलना करने से अर्जुन का दुःख परिमाण में बहुत ही दुःसह था। अर्जुन की भावनाओं की तीव्रता ने उसके दुःख को विशेष दुःसह बनाया था।

ऐसी विषादग्रस्त–दुःखदायक स्थिति में से मुक्त होने के लिए अर्जुन, श्रीकृष्ण की सलाह लेते हैं। श्रीकृष्ण भगवान की जगह यदि कोई अन्य व्यक्ति होता तो जिस युद्धभूमि पर आने से अर्जुन को विषाद हुआ, वहाँ से अर्जुन के रथ को किसी शांत जगह पर ले जाकर उन्हें आश्वासन देते। भगवान श्रीकृष्ण ने वैसा नहीं किया न तो अर्जुन के रथ को युद्धभूमि पर से पीछे हटाया.न ही लश्कर को हटाने के आदेश दिये, न ही सुलह के संदेश भेजे और न तो लड़ाई को स्थगित करने की तैयारियाँ की। अर्जुन जिस स्थिति में थे, जो कार्य करने आये थे, जो युद्ध करने से अपने को पाप लगेगा–अपने पितरों की असद्गति होगी ऐसा मानते थे–ऐसे महान युद्ध की वस्तुस्थिति को बदला नहीं, युद्ध को कायम रख अर्जुन से युद्ध करवा के युद्ध की तरफ अर्जुन का मानसिक रवैया, उसकी मनोवृत्ति बदल डाली। वस्तुस्थिति में दुःख नहीं है परंतु मनुष्य के दृष्टिबिन्दु में दोष है। इस मुख्य सिद्धान्त को अर्जुन को समझाने के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता की बोध पद्धति प्रणाली को स्वीकारा।

अर्जुन विषाद योग नामक पहले अध्याय में अर्जुन ने जिस स्थिति का वर्णन किया है उसे भगवान श्रीकृष्ण दुःख ऐसा नाम भी नहीं देते हैं। श्रीकृष्ण कहते हैं कि–

कुतस्त्वां कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरअर्जुन ।। २–२

हे अर्जुन ! तुम ऐसी दुर्बलता–नामर्दानगी को न जता। ऐसी दुर्बलता के लायक तू नहीं है इसलिये हे पार्थ, ऐसी हृदय की दुर्बलता को हृदय की कमजोरी का तू त्याग कर और हे परंतप ! तू लड़ाई करने को तैयार हो जा।

ऊपर के श्लोक से स्पष्ट है कि अर्जुन के विषाद को–दुःख को भगवान दुःख

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जैसा नाम देने में ख़ुश नहीं हैं। अर्जुन जिसे महान दुःख मानते थे वह तो भगवान की दृष्टि से तात्विक दृष्टि से केवल निर्बलता, नामर्दगी ही थी। अर्जुन ने जो स्थिति का वर्णन किया था वह दुःखरूप नहीं थी परंतु उसके हृदय की एक क्षुद्र निम्न प्रकार की, तुच्छ प्रकार की हृदय की दुर्बलता थी।

गीता के श्रवण के पश्चात अर्जुन के भावों में युद्ध के प्रति उसके दृष्टिबिन्दु में फर्क होता है। अर्जुन ने गीता सुनने के पश्चात अपनी मनोवृत्ति मानसिक स्थिति का वर्णन किया उससे स्पष्ट होता है—अर्जुन कहते हैं कि :—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।। १८—७३

मेरा मोह—वस्तुस्थिति का गलत ज्ञान, युद्ध के प्रति मेरी पापबुद्धि का नाश हुआ है। मेरी स्मृति—मेरा ज्ञान—सार असार को समझने की मेरी शक्ति—युद्ध करने से मुझे पाप नहीं लगेगा ऐसी मनोभावना मुझे हुई है। हे अच्युत—आपकी कृपा का—आपके सद्बोध का परिणाम है—मेरा संदेह—युद्ध के कार्य—अकार्य के विषय की शंका दूर हुई है, आपके वचनों के अनुसार युद्ध करने को मैं तैयार हूँ।

वस्तुस्थिति में नहीं, परंतु उसके प्रति मानसिक दृष्टिबिन्दु पर मनुष्य के सुख—दुःख का आधार है। इस महान सत्य के प्रतिपादन करने में ही गीता के रहस्य की कुंजी है। यह दृष्टिबिन्दु प्रत्येक मनुष्य बदल सकता है। दुःख में सुःख को उत्पन्न कर सकता है और यह करना चौकस—विशिष्ट विद्या है, यह हकीकत श्रीमद्भगवद्गीता से स्पष्ट होती है। निष्काम कर्मयोग दुःख को सुख में बदलने की साधनपद्धति का पारिभाषिक नाम है।

भगवद्गीता में दुःख के सम्बन्ध में ऋजु, सरल और सीधे रूप में बहुत विचार नहीं किया है परंतु दुःख के कारणों का, उसके स्वरूप का, उसके उत्पत्ति स्थान के बारे में तथा उसके विनाश के अलग—अलग कहीं—कहीं परंतु बहुत ही शास्त्रीय रूप से और पद्धति के अनुसार विचार किये हैं। गीता में दर्शित ज्ञान केवल प्रयोगात्मक स्थिति में नहीं रहा है परंतु सिद्धान्त रूप से है। इस ज्ञान को आर्य ऋषि—मुनियों ने अलग—अलग संयोगों में अलग—अलग जमाने में, समय में, आज़मा के परीक्षण करके देखा है और निर्विवाद रूप से सही सिद्ध प्रमाणित हुआ पाया है।

मोह—अज्ञान—वस्तुस्थिति के सही ज्ञान के अभाव के कारण को यदि निश्चित किया जाए तो उसे दूर करने के प्रयत्न हो सकते हैं, इसलिये उसका सही कारण क्या होगा, यह जानने की आवश्यकता है। इस सम्बंध में गीता में कहा गया है कि:—

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्।। ७—१३

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह सारा जगत–इस जगत में उत्पन्न हुए प्राणी–तीन गुण–सत्व रजस और तमस से मोहित हैं। इस तरह सभी प्राणी तीनों गुणों से मोहित होने से–वे अव्यय परमात्मा को–मुझे, श्रीकृष्ण को, सर्वसुख के अगाध भण्डार को नहीं जानते हैं। इस श्लोक में भाव शब्द है और भाव त्रिगुणात्मक तीनों गुणों से उत्पन्न होता है। भाव से मनुष्य को मोह उत्पन्न होता है। भाव और मोह दोनों बदलने वाले तत्व हैं।

भाव में मानसिक दृष्टिबिन्दु में बदलाव आने से उस वस्तु के प्रति मोह में बदलाव आता है। अपने शास्त्रों में भाव–संशुद्धि को (Purity of mind feeling) बहुत महत्व दिया गया है। उसका कारण भी ऊपर के श्लोक से स्पष्ट होता है।

सत्व, रजस और तमस–यह तीनों गुण दुःखदायक तो हैं ही परतु प्रत्येक गुण में दुःख देने के परिमाण में, मात्रा में बहुत फर्क/भिन्नता है। सत्व गुण से होने वाला दुःख बहुत ही कम है और कई बार वह दुःख सुख जैसा दिखता है/भासता है जिनको साधारण लोग दुःख कहते हैं वह तो रजस गुण का परिणाम है। इस सम्बंध में श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है किः–

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्विकं निर्मलं फलम् ।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ।। १४–१६

सुकृत– सात्विक कृत्यों का फल सात्विक और निर्मल है, रजस का फल दुःख है और अज्ञान तमस गुण का फल है। रजस गुण का फल दुःख है यह तो समझा परंतु रजोगुण क्या है यह समझे बिना उसे दूर नहीं किया जा सकता और जब तक रजोगुण में बदलाव लाने की शक्ति अभ्यासी में नहीं आती है वहाँ तक दुःख दूर करने की शक्ति का विकास नहीं किया जा सकता। इस कारण से रजोगुण के स्वरूप को समझना जरूरी है। इस सम्बंध में श्रीमद्भगवद्गीता में कहा हैः–

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासंगसमुद्भवम् ।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसंगेन देहिनम् ।। १४–७

रजोगुण का स्वभाव रागात्मक–राग को उत्पन्न करने का है। यह रजोगुण तृष्णा और आसंग में से उत्पन्न होती है। हे कौन्तेय ! देहधारी प्राणी इस रजोगुण से कर्मसंगी–कर्म में आसक्ति वाला होता है।

यह श्लोक पूरे कर्मयोग की कुंजी जैसा है। रजोगुण का स्वरूप उसकी उत्पत्ति और उसके व्यक्त स्वरूप का इस श्लोक में बहुत ही अच्छा वर्णन है। तृष्णा और आसंग वह रजोगुण में से उत्पन्न होते हैं–रजोगुण के अस्तित्व के यह विश्वसनीय प्रमाण हैं। रजोगुण एक अव्यक्त तत्व होने से सामान्य मनुष्य इसे जल्दी से पहचान नहीं पाता।

तृष्णा और आसंग को पहचानना भी मुश्किल नहीं है। जहाँ जिस कार्य में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तृष्णा, आशा, स्वार्थबुद्धि है वहाँ उस कार्य में तृष्णाभंग, निराशा, असंतोष के अपार दुःख का भय है। जिस व्यक्ति को आशा नहीं है उस व्यक्ति के लिए निराशा का दुःख इस दुनिया में तो क्या, तीनों लोक में नहीं है। तृष्णा, आशा, स्वार्थबुद्धि के बिना किया गया कर्म ही निष्काम कर्म है। निष्काम कर्म में–कर्मयोग में जो दुःख दूर करने की शक्ति है वह उसमें स्थित तृष्णा के त्याग में ही छिपी है। जब तक अर्जुन में राज्य संपादन करने की तृष्णा थी तब तक उसे लाभ–अलाभ का डर था, तब तक उसे जयाजय का विचार सताता था। तृष्णा के नाश होते ही अर्जुन का वह दुःख अपने आप दूर हो गया और केवल स्वधर्मपालन के साधन हेतु युद्ध करना, अर्जुन के लिए स्वधर्म पालन के साधन हेतु युद्ध करना, अर्जुन के लिए स्वधर्मपालन के सुख के अलावा युद्ध में कोई भी अनिष्ट परिणाम न बचा। इस प्रकार का अर्जुन के हृदय में मानसिक बदलाव आने से युद्ध के प्रति अर्जुन के मनोभावों के बदलने से अर्जुन की दुःख की भावना कम होने लगी और दुःख की भावना कम होते–होते खत्म हो गई और घोर युद्ध को भी अर्जुन ने सुख के श्रेय के साधन के रूप में स्वीकारा। भगवद्गीता ने अर्जुन के सुख के लिए क्या किया–प्रत्येक मनुष्य के सुख के लिए भगवद्गीता कितना कर सकता है, यह उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

काम, क्रोध, लोभ, मोह–यह तृष्णा तथा आसंग के अलग–अलग नाम तथा स्वरूप हैं। इस कारण से भगवदगीता में हर एक जगह पर काम, क्रोध, लोभ, मोह, इच्छा, तृष्णा आदि से दूर रहने का अर्जुन को–अभ्यासी को कहने में आया है। हर एक जगह पर इस विषय पर जोर देने के बाद भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को नीचे के श्लोक के अनुसार बोध दियाः–

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।। १६–२१

काम, क्रोध और लोभ वह आत्मा का–सर्वसुख का–परम शांति का हनन करने वाले हैं उतना ही नहीं परंतु यह तीन दोष नरक के द्वार रूप महादुःख के कारण रूप हैं। इस कारण से ये तीनों दोषों को अर्जुन को–अभ्यासी को प्रारम्भ में ही त्यागना, यह दुःख निवृत्ति का अक्सीर उपाय है।

दुःख तत्व पर काबू पाकर समय आने पर दुःख का परिमाण कम करने तथा उसे पूरा दूर करने के लिए अभ्यासी को अनुकूल हो वैसे व्यवस्थित ज्ञान की रूपरेखा ऊपर दी है। रासायनिक शास्त्रों की पुस्तकों के पढ़ने से ही कोई व्यक्ति होशियार रसायनशास्त्री नहीं हो सकता परन्तु वैसा बनने के लिए उसे प्रयोगशाला में कितने प्रयोग करने पड़ते हैं। कर्मयोग में भी वैसा ही है। दुःख सम्बन्ध के कर्मयोग के सिद्धान्त बहुत सादे तथा सरल हैं परन्तु उसके सत्य को समझने के लिए मनुष्य को उन सिद्धान्तों को अपने रोज के व्यवहार में आज़मा कर देखने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
की–आजमा के उसके सुखदायक परिणामों को सत्यापित करने की जरूरत है। इस प्रकार करने से सिद्धान्तों की सत्यता के विषय में अभ्यासी में श्रद्धा उत्पन्न होती है। ऐसी अडिग श्रद्धा उत्पन्न होने से अभ्यासी का रोज़ का व्यवहार भी उस सिद्धान्त के अनुसार अपने आप होता चला जाता है। ऐसा व्यवहार होने से मनुष्य का जीवन, जनक–वैदेही की भाँति उत्तरोत्तर सुखी बनता जाता है।

दुःख निवृत्ति के सम्बध में व्यवस्थित ज्ञान संपादन करने जितना समय और बुद्धिबल जिसमें न हो ऐसे अभ्यासी के लिए गीता में जगह–जगह पर व्यवहार्य सूचना दी गयी है। व्यवस्थित तथा बुद्धिपूर्वक अभ्यास हो सके वह उत्तम है। परंतु ऐसा न बन सके तो भी गीता के इस विषय के सद्‌वाक्यों को रोज के व्यवहार में लाया जा सके तो केवल उतने से भी दुःख की निवृत्ति तो हो ही सकती है। इस सम्बन्ध में गीता में कुछ श्लोक दिये हैं। इन्द्रिय, मन, बुद्धि–ऐसे बारीक तत्वों की सामान्य मनुष्य को तुरंत पहचान नहीं पड़ सकती। इस कारण से ऐसे बारीक तत्वों पर सामान्य मनुष्य एकदम काबू नहीं पा सकता। ऐसे मनुष्यों के लिए स्थूल शरीर की शुद्धि इस उन्नति का–दुःखनाश का पहला सोपान है। स्थूल शरीर का आधार आहर पर होने से आहार में बदलाव लाने से सामान्य मनुष्य भी अपने स्थूल शरीर के गठन के तत्वों में बदलाव ला सकता है। इस कारण से किस प्रकार के आहार या खुराक से दुःख होता है वह भी श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में बताया है–

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिन।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ।। १७–९

कड़ुवा, खट्टा, खारा, अति गरम, तिक्त आहार राजसी व्यक्तियों को प्रिय होता है। इस प्रकार का आहार दुःख तथा शोक को बढ़ाने वाला है। इस कारण से ऐसा खुराक त्यागने योग्य है।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ।। ५–२२

दुःख की उत्पत्ति किससे होती है उस सम्बंध में कहा है कि संस्पर्शजन्यसं स्पर्श से उत्पन्न होने वाले तमाम भोग–सुख, आदि और अन्त वाले होने से नाशवान हैं तथा आदि और अंत वाले तमाम सुख ही दुःख की उत्पत्ति के स्थान हैं। शरीर की इन्द्रियों की बाहर के विषय के साथ संबंध होने से और उसके संस्पर्श से ठंडी गर्मी आदि जो अनुभव होते हैं उन सभी को संस्पर्शजन्य भोगों में समावेश होता है। ऐसे संस्पर्शजन्य भोग अंततः दुःख की योनि रूप है (Womb of unhappiness)। इस कारण से दुःख का अन्त लाने की आकांक्षा रखने वाले को संस्पर्शजन्य भोगों में बहुत अधिक रस लेने से रुकना चाहिए।

भगवद्‌गीता के अभिप्राय से केवल दुःख का अन्त लाने से ही मनुष्य सुखी होता है ऐसा नहीं है, फिर भी दुःख का अन्त लाना–दुःख कम करना–दुःख का बिल्कुल विनाश करना भी महत्व की स्थिति है। भगवद्‌गीता के अन्त में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है:–

सुखं त्विदानीं त्रिविधं श्रृणु मै भरतर्षभ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुखान्तं च निगच्छति।। १८–३६

हे अर्जुन ! तू अब मेरे पास से तीन प्रकार के सुख के बारे में सुन। सुख सम्पादन करने की विद्या का ज्ञान सम्पादन करना, इस विद्या के ज्ञान से, उसके अभ्यास से, उसके आचरण से मनुष्य अपने दुःखों का अन्त कर सकता है–अपने दुःखों की निवृत्ति कर सकता है। ऊपर के श्लोक में दर्शित सुख क्या है और उसके कितने प्रकार हैं और उसका अभ्यास करना सुख प्राप्त करने के लिए–परमानंद की प्राप्ति के लिए क्या करना जरूरी है उसका इसके बाद के प्रकरणों में विचार करने में आयेगा।

❑

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकरण–५

सुख–उसका स्वरूप और साधन

सब अंशों में सम्पूर्ण हो ऐसे सुख शब्द की व्याख्या किसी भी तत्ववेत्ता ने नहीं दी है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी सुख शब्द की व्याख्या नहीं दी है। सुख शब्द की व्याख्या नहीं देने का कारण भी स्पष्ट है। सुख कोई स्थायी वस्तु या वस्तुस्थिति नहीं है। दुःख के माफिक सुख भी एक प्रकार का मनोभाव या मनोवृत्ति है। प्रत्येक मनुष्य के मनोभाव का नाप निकालना मुश्किल है। कुछ एक संयोगों से एक व्यक्ति को हर्ष होता है जबकि उन्हीं संयोगों से दूसरे को दुःख होता है। एक ही वस्तु उसी व्यक्ति में अलग–अलग समय पर और अलग–अलग भावों को–सुख और दुःख की भावना को उत्पन्न करती है। यह और इस प्रकार की अन्य मुश्किलातों के कारण सुख शब्द की कोई भी शास्त्रीय व्याख्या नहीं दी है।

सुख शब्द की व्याख्या तय नहीं हो सकती है। इसी हकीकत पर से सुख के स्वरूप का–सुख के तत्वों का विचार करने की महत्ता कम नहीं होती है। सुख यानि क्या? सुख में क्या–क्या तत्व छिपे हैं। सुखी होने की इच्छा रखने वाले को क्या करना, क्या नहीं करना यह सारे प्रश्न सुख की इच्छा रखने वाले मनुष्य के लिए बहुत महत्त्व के हैं। इन प्रश्नों के सही उत्तर पर ही मनुष्य के भावी सुख का आधार है। इन महत्त्व के प्रश्नों का विचार श्रीमद्भगवदंगीता में किया है। श्रीमद्भगवद्गीता में दिये हुए निर्णय बहुत व्यावहारिक हैं।

जो करने से अपने को आनन्द हो वह सुख है। सामान्य मनुष्यों के लिए यह व्याख्या थोड़े समय के लिए कामचलाऊ संतोष दे सकती है **(Temporary satisfaction)**। यह व्याख्या समान्य मनुष्य को चाहे तुरन्त संतोष दे, परन्तु अभ्यासी को, उन्नति क्रम में आगे बढ़ने की इच्छा रखने वाले को, मुमुक्षु को ऐसी व्याख्या से संतोष नहीं होगा। जब तक मनुष्य एक विषय की पूरी माहिती नहीं पा लेता, जब तक कोई एक विषय के सभी तत्त्वों का सम्पूर्ण ज्ञान नहीं होता तब तक उन तत्त्वों पर नियंत्रण नहीं पा सकता। ज्ञान एक शक्ति है यह बात सही है, परन्तु शक्ति रूप होने के लिए ज्ञान विगतवार, विस्तृत और सम्पूर्ण होना जरूरी है। कुछ एक तत्त्व पर किसी एक वस्तुस्थिति पर मनुष्य को काबू पाना हो, नियंत्रण करना हो तो–वस्तुस्थिति चाहे ऊपर से कितनी ही दुःखदायी हो तो भी उसमें से सुख की उत्पत्ति करनी हो तो सुख शब्द के पीछे छिपी भावनाओं के सभी तत्त्वों का ज्ञान पाये बिना नहीं चल सकता। सुख का विचार, यह ऐसे अभ्यासी के लिए, तो सुख सम्पादन करने का अपार खजाना है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुख शब्द की व्याख्या जो ऊपर दी गई है उसमें एक शब्द बहुत ही मुश्किल है–गलत रास्ते ले जाने वाला–बहकाने वाला–भ्रामक है। मैं सुखी होऊँ–मुझे आनन्द हो तब मैं सुखी हुआ कहलाऊँगा। 'मैं', 'मुझे' यानि क्या? दुनिया का प्रत्येक मनुष्य सुख क्या है यह अनुभव करता है। दुनिया के प्रत्येक तत्ववेत्ताओं ने सुख क्या है उसकी समझ दी है। ऐसे प्रत्येक वर्णन में अपार मतभेद है। इतना ही नहीं कुछ एक विचार तो एक दूसरे के विरुद्ध भी है।

'मैं' शब्द का सही अर्थ नहीं समझने से यह मतभेद हुआ है। 'मैं' यानि हाथ पैर, आँख, नाक, सिर वाला मनुष्य। यह मान्यता प्रथम दृष्टि से सही दिखती है परन्तु वास्तव में सही नहीं है। प्रत्येक मनुष्य एक इकाई व्यक्ति है, यह सिद्धान्त पूर्ण रूप से सही नहीं है। मनुष्य को एक व्यक्ति माने तो भी वह व्यक्ति कितने तत्त्वों का बना है। सुख का स्वरूप तय करने में हरेक तत्त्ववेत्ता हरेक मनुष्य के कई तत्त्वों में से कुछ एक तत्त्वों को प्रमुख स्थान देकर अपने सुख के विचारों का–सुख भावना का आदर्श खड़ा करते हैं। दुनिया के अलग–अलग देशों में अलग–अलग तत्ववेत्ताओं की अलग–अलग मनुष्यों की सुख की भावना के विषय में जो अन्तर निकाले हैं वह ऊपर के कारणों से ही है। मनुष्य के, व्यक्ति के कुछ एक तत्वों को कम या अधिक महत्व देने से दुनिया के काफी नीतिशास्त्र के लेखकों की पुस्तकों में चाहते हुए या न चाहते हुए भी, एकदेशीयता आ जाती है। ऐसे एकदेशीय लेखकों के सुख संबंध के आदर्शों में कुछ ही मात्रा में सत्य होता है। ऐसा सिद्धान्त किसी एक समय या एक वस्तुस्थिति में सही होता है।

अन्य तत्व ज्ञान की पद्धति–अन्य धर्म से सनातन धर्म पश्चिम के देशों में भी अधिक आदरणीय माना गया है तो उसका एक कारण यह है कि सुख के संबंध में सनातन धर्म के विचार अधिक परिपक्व है। 'मैं' का अर्थ करने में अन्य देशों के विचारकों ने जो भूल की है उस भूल को सनातन धर्म में, हिन्द के तत्त्वज्ञान में स्थान नहीं है।

'मैं' मनुष्य यानि एक व्यक्ति नहीं, परन्तु पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच भूत तत्व, पाँच प्राण, मन, बुद्धि, अहंकार वगैरह तत्वों के समूह। इतने सारे तत्वों में से किस तत्व को सुख मिले–किस तत्व का विकास करें उसे सुख मानना? मनुष्य–मनुष्य जाति के विकास क्रम की शुरुआत में शारीरिक सुख–इन्द्रियाराम इच्छित है। यह सुख क्षणिक–थोड़े समय चलने वाला होता है। कई बार ऐसे क्षणिक सुख भविष्य में बड़े दुःख का कारण बनते हैं। इस प्रकार सुख का निश्चय करने में कुछ एक कार्य की वर्तमान में होने वाली असर पर विचार करने के साथ उसका भविष्य में क्या असर होगा यह विचार भी आवश्यक है। पश्चिम के काफी देशों में केवल शारीरिक सुख के पीछे मतवाले होकर लोग मदिरापान, स्त्री–सेवन, धन–संचय इत्यादि में ही सुख मानते हैं। सुख की ऐसी संकुचित भावना, उनकी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपूर्ण भावनाओं का अधूरे विचार का ही परिणाम है।

अपना सुख निश्चित करने में मनुष्य को अपने स्वयं के अलावा, अपने सगे–सबंधियों के सुख, अपने आसपास के लोगों के सुख, समाज के सुख का भी विचार करना जरूरी है। स्वार्थ और परमार्थ का समन्वय किये बिना की सुख भावना परिणाम में दुःखकारक होती है। यह हकीकत भी शुरुआत में ध्यान में रखने जैसी है।

ऊपर के सभी तत्वों को ध्यान में लेकर श्रीमद्भगवद्गीता में 'सुख' के विषय में विचार किया है। इसके उपरान्त श्रीमद्भगवगीता की वास्तविक महानता तो यह है कि मनुष्य सुखी हो–सुख को प्राप्त करे जरूर, परन्तु ऐसा करने में उसका अधोपतन न हो। सुख के सम्पादन करते–करते मनुष्य उन्नति क्रम में आगे बढ़ता जाए–उत्तरोत्तर अधिक अच्छे सुखों को भोगता जाए और अंत में सर्वोत्तम सुख सदैव के लिए भोगे–भोगने के लिए शक्तिमान हो ऐसी कार्यपद्धति को दर्शाना वह श्रीमद्भगवद्गीता का मुख्य उद्देश्य है।

ऐसे उच्च उद्देश्य को सफल करने की कार्यप्रणाली में सामान्य मनुष्य की हर रोज की कमजोरियों को–मनुष्य की कमियों को भुलाया नहीं गया है। मनुष्य के स्वभाव को ध्यान में रखकर उसकी कमियों की तरफ सहानुभूतिपूर्वक विचार करके सुख के सम्बंध में श्रीमद्भगवद्गीता में विचार किया है। इस कारण से यह विचार बहुत ही उपयोगी होने के उपरान्त बहुत ही सादा सरल और व्यावहारिक है।

ऊपर के तथा ऐसे ही दूसरे सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर श्रीमद्भगवद्गीता में सुख के तीन विभाग किये हैं। ऐसे त्रिविध सुख के विचार से–त्रिविध सुख के विवेक से त्रिविध सुख का विवेक तथा उस प्रकार का आचरण करने से क्या परिणाम आता है उस सम्बंध में कहते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैः–

सुखं त्विदानीं त्रिविधं श्रृणु मे भरतर्षभ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति।। १८–३६

हे भरतर्षभ, हे अर्जुन! अब मैं तुझे सुख के त्रिविध–तीन प्रकार के सुख की अलग–अलग तीन जाति समझाता हूँ। तीन प्रकार के इस सुख का ज्ञान पाकर इस तरह से अभ्यास करने वाले को–उस प्रकार से आचरण में उतारने वालो को– उस प्रकार से अपने जीवन को नियंत्रित करने वाले को वैसा करते–करते आनन्द होता जाता है। ऐसे प्रकार के ज्ञान से तथा उसके आचरण से मनुष्य अपने दुःख का अंत भी ला सकता है। सुख के अलग प्रकार का, अलग–अलग जाति का– त्रिविध सुख का विचार करने से मनुष्य क्षुद्र प्रकार के हल्की जाति के सुखों का त्याग करता है और विशेष चिरस्थायी और विशेष सुखदायी विषयों को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। यह प्रयत्न करते–करते भी मनुष्य को एक नवीन आनन्द होता जाता है। स्वयं के माने हुए कितने सुखों को वह क्षणिक मान

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उनका त्याग करता है और उससे विशेष उच्चतर सुख की तरफ वह आकर्षित होता है और ऐसा करते–करते अधिक से अधिक श्रेष्ठ सुखों को प्राप्त करता जाता है।

मानव जाति का काफी भाग विकास क्रम में बहुत पीछे है। उनको खाने पीने का, धन–संचय का शौक होता है। यदि ऐसे मनुष्य को यह कहने में आवे कि उसे सब छोड़ त्यागी और सन्यासी बनना चाहिए तो ऐसा बोध उसे समझ में नहीं आएगा, उसके गले नहीं उतरेगा। यह आदर्श ऐसे सामान्य प्रकार के लोगों के लिए लगभग अशक्य मृगजल जैसा लगेगा। इस कारण से आदर्श की उच्चता जानने के बावजूद वह उस दिशा में प्रयत्न नहीं करेगा–स्वयं के माने हुए क्षुद्र सुखों को नहीं छोड़ पाएगा और आगे बढ़ने का प्रयत्न भी नहीं करेगा। ऐसे मनुष्यों को ललचाने के लिए उसे यकायक उँचे आदर्श को न दिखाकर क्रमशः आगे चलाया जाए तो वह आगे बढ़ सकता है। इसी हेतु श्रीमद्भगवद्गीता में त्रिविध सुखों पर विचार किया गया है।

तामसिक सुख जनसमाज में क्षुद्र मनुष्यों द्वारा माना हुआ सुख है। इस सम्बन्ध में श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है:–

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ।। १८–३९

जिस सुख से आत्मा शुरुआत में तथा अन्त में मोह में–अविद्या में अज्ञान में, अविवेक में पड़ जाता है वैसे प्रकार का सुख तथा जो सुख निद्रा, आलस्य और प्रमाद में से उत्पन्न होता है वह सुख तामसिक सुख कहलाता है। निम्न प्रकार का इन्द्रियों का लालन–पालन तामसिक सुख का उत्पत्ति स्थान होता है। आरोग्य शास्त्र की दृष्टि से और वैद्यकीय दृष्टि से देखने से भी अतिनिद्रा, अति प्रमाद, अति आलस्य वे क्षणिक आराम तो देते हैं परन्तु अन्त में ऐसे प्रकार के सुख को भोगने वाला अपना तथा अपने कुटुम्ब का नाश करता है। आलसी व्यक्ति उद्योगी हो ही नहीं सकता और बिना उद्योग के उदर निर्वाह के आदर्श साधन मिलना मुश्किल है। सोते रहने में, आलस्य कर पड़े रहने से, उद्योग करने में होने वाले परिश्रम नहीं करने पड़ते हैं, उतनी हद तक नींद, आलस्य, प्रमाद सुख के साधन जैसे दिखेंगे परन्तु यह साधन परिणाम में व्यक्ति का नाश करते हैं। ऐसे साधनों में सुख–बुद्धि रखने वाले को यह एक सूचना है। अपने विनाश में से बचने की एक अलग चेतावनी (Warning) है।

समाज के कुछ भाग ऊपर का सत्य समझते हैं और इसीलिए निद्रा, आलस्य और प्रमाद में दिखने वाले सुखों को दूर, अलग कर योग्य मेहनत करते हैं। ऐसे व्यक्तियों का सुख का ख्याल तामस व्यक्ति से अधिक उच्च किस्म का है। परन्तु उसमें भी दुःख के बीज तो हैं ही। ऐसे व्यक्ति का सुख किस प्रकार का होता है
CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथा क्या परिणाम आता है यह सोचना जरूरी है। इस संबंध में कहा गया हैः–

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ।। १८–३८

विषय और इन्द्रियों के सहयोग से उत्पन्न होने वाले सुख स्पर्शजन्य सुख, शुरुआत में अमृत जैसे मधुर मीठे और आकर्षक दिखते हैं परन्तु परिणाम में यह विष जैसे जहरीले हैं। इस प्रकार के सुख वास्तविक सुख नहीं परन्तु सुख का आभास मात्र है। इस कारण से वैसे सुख–त्याग करने योग्य हैं। इस प्रकार का विचार श्रीमद्भगवद्गीता में दूसरी जगह भी बताया गया हैः–

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ।। ५–२२

स्पर्शजन्य भोग दुःख योनि और दुःख उत्पत्ति के स्थान हैं। इस प्रकार के भोग आदि और अंत वाले हैं। इस प्रकार के सुख सामान्य मनुष्य को आनन्ददायक, सुखदायक लगते हैं परन्तु बुद्धिमान व्यक्ति उसमें आनन्द नहीं मानते हैं।

ऊपर के श्लोक के पीछे छिपे सिद्धान्त को स्पष्ट समझने की जरूरत है। जो सुख संस्पर्शजन्य (**Contact Bond**) होते हैं उन सुखों का काल–समय बहुत थोड़ा होता है। विषयों के साथ जब तक इंद्रियों का स्पर्श रहता है वहीं तक वह सुख चलता है। संस्पर्श–संयोग के बंद होते ही–संयोग का वियोग होते ही सुख बंद होता है, वियोग यानि दुःख।

वास्तविक सुख तथा संस्पर्शजन्य सुख का सूर्य के प्रकाश और बिजली के दिये जैसा सम्बंध है। सूर्य का प्रकाश पूरे दिन प्रकाश देता रहता है। बिजली का दिया जब तक धन और ऋण (**Positive and Negative**) दो तारों का संस्पर्श होता है तभी तक प्रकाश देता है। सूर्य के प्रकाश में दिन हो वहाँ तक अंधेरे का डर नहीं। परन्तु बिजली के दिये में संस्पर्श बंध होने से स्विच को दबाने से भी प्रकाश देने की शक्ति रहती नहीं है।

समाज का काफी भाग राजसी सुख की इच्छा रखता है। इस कारण से यह सुख कैसे प्राप्त होता है यह बराबर समझने की जरूरत है। प्रत्येक मनुष्य एक केन्द्र बिन्दु जैसा है। पूरी सृष्टि के तमाम पदार्थ उसके आसपास हैं। यद्यपि पूरी सृष्टि के सभी पदार्थ उसके आस–पास आने से भी जब तक इन पदार्थों के साथ उसका संयोग नहीं होता तब तक इन पदार्थ की अच्छी या बुरी असर–सुख या दुःख मनुष्य को नहीं होते । यह संयोग मनुष्य को इंद्रिय द्वारा होता है। आपके समक्ष एक नवयौवना सुन्दर स्त्री खड़ी हो परन्तु जब तक आप ने उसे आँखों से देखा नहीं तब तक उस विषय का, सुन्दरी का, आपके चक्षु इन्द्रियों के साथ संयोग नहीं हुआ तब तक उसके रूप, गुण, यौवन से आपको आनन्द नहीं होता। इस प्रकार आनन्द–सुख संस्पर्श जन्य है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह आनंद–यह सुख संस्पर्शजन्य होने से उसके वियोग में उस सुन्दर स्त्री के आपके पास से चले जाने से या तो आप अपनी आँख उस पर से हटा दो तो संस्पर्शजन्य सुख बंध होता है। वह सुख बंध होने से खत्म होने से दुःख उत्पन्न होता है। इस कारण से संस्पर्शजन्य सुख, सुखाभास जैसे है–वह सुख जैसे दिखते हैं परंतु अन्त में दुःख योनि–दुःख के कारण रूप है।

जगत में विषय (Object) अनेक अनगिनत हैं इस कारण से सुख–दुःख के कारण भी अनगिनत हैं–बहुत हैं। यद्यपि इस तरह से सुख–दुःख के साधन अनेक है परंतु मनुष्य को वह केवल पाँच तरह से ही असर कर सकते हैं। मनुष्य की पाँच इन्द्रियाँ हैं–आँख, नाक, कान, जिह्वा तथा चमड़ी वह पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। रूप, शब्द, गंध, रस और स्पर्श का ज्ञान इन इन्द्रियों द्वारा ही मनुष्य अनुभव करता है।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इन पाँच में से किस विषय में मनुष्य सुख मानता है उस सुख का विचार करें। अपने माने हुए सुख से वह खुद कितनी बार कितनी हद तक आफत में, दुःख में पड़ा है उसका मनुष्य स्वयं विचार करेगा–जरा आत्मनिरीक्षण करेगा तो संस्पर्शजन्य सुख, दुःख योनि रूप है इस तत्व का सही रहस्य समझेगा–समझकर वैसे सुख से दूर रहकर उससे विशेष उच्च सुख प्राप्त करने के प्रयत्न करेगा–प्राप्त कर सकेगा, आत्म सुधार का यह प्रथम और महत्व का सोपान है।

मनुष्य के माने हुए सुखों में कहाँ–कहाँ कमी है कहाँ डिफेक्ट है,कहाँ दुःख छिपा बैठा है वह दर्शाया गया। आगे सुख का प्रमाण बहुत अधिक और दुःख का अस्तित्व बहुत कम हो वैसे प्रकार का सुख कौन सा है और यह सुख कैसा होता है वह जानने की अभ्यासी को आवश्यकता है। इस कारण से वैसे सुख का भी वर्णन करने में आया है:–

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धि प्रसादजम् ।। १८–३६

सही सुख, वास्तविक सुख, सात्विक सुख वही है जो शुरुआत में विष जैसा दिखे परंतु जिसका परिणाम अमृत जैसा मीठा और जीवन प्रदान करने वाला हो। इस प्रकार का सुख आत्मबुद्धि के प्रसादजन्य होता है। विद्याभ्यास इस प्रकार के सुख का एक दृष्टांत है। विद्याभ्यास करने में शुरुआत में बहुत सुखों का त्याग करना पड़ता है। इस दृष्टि से प्रारंभ में वह विष जैसा दुःसह दिखता है, लगता है फिर भी प्रारंभ में विद्याभ्यास के लिए किये गये सुख त्याग, भविष्य के वास्तविक सुख का कारण बनते हैं। इस प्रकार के सुख में दुःख की मात्रा बहुत ही कम होती है। उच्च कक्षा के लोगों को इस प्रकार के सुख को ही अपना आदर्श मानने की जरूरत है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

सुख का वास्तविक स्वरूप निश्चय करने में ऊपर के श्लोक अभ्यासी को मदद करने योग्य हैं। उन श्लोकों पर से ज्ञात होता है कि अमुक कार्य की भविष्य में लम्बे अरसे तक सुख देने की कितनी शक्ति है उस पर आधार रखकर ही उन श्लोकों को लिखा हो ऐसा दिखता है।

सुख सम्पादन की इच्छा करने वाले अभ्यासी को, सुखी होने की इच्छा रखने वाले को दूसरी भी कितनी व्यावहारिक सूचनाएँ भगवद्गीता में दी गयी हैः—

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः।। ४—४०

अज्ञानी मनुष्य सत्यासत्य का—सुख, दुःख के विवेक नहीं करने वाले मनुष्य, शास्त्र और सदुपदेश में श्रद्धा नहीं रखने वाले और संशयात्मा ऐसी मानसिक स्थिति वाले मनुष्यों का नाश होता है। ऐसे संशयात्माओं के लिए इस लोक और परलोक में सुख नहीं है। जो लोग अज्ञानी हैं, जो लोग शाश्वत और सच्चा सुख किसमें है यह नहीं जानते वैसे लोग अपने अज्ञान के कारण सच्चे वास्तविक सुख से दूर रहते हैं। ऐसे व्यक्ति सुख की शोध में भटक—भटक कर सुखाभास रूप दुःख में ही फँस जाते हैं।

किस वस्तु को पाने से मनुष्य सुखी होता है, उसकी भी शुरुआत में विचार करने की आवश्यकता है। साधारण रूप से सामान्य मनुष्य की मान्यता ऐसी होती है कि धन की प्राप्ति से मनुष्य सुखी होता है, इस विषय में बारीकी से देखने से पता लगता है कि बढ़ते हुए धन के साथ—साथ उपाधि भी, तकलीफ भी बढ़ती है। पैसा पैदा करने में कितनी बार ऐसे साधनों का प्रयोग करना पड़ता है जिससे मनुष्य की अन्तर आत्मा सदा के लिए दुःखित रहती है। कितने अघटित कृत्य न करने वाले कार्य जो कि सामान्य मनुष्य करने में झिझकते हैं वह पैसे के लोभ में मनुष्य करता है। ऐसे कार्य को करने से कभी शायद धन की प्राप्ति होती होगी परन्तु धन प्राप्त करने में किये कृत्यों में इतनी तो अनीति होती है कि वह याद आने से मनुष्य को आघात—दुःख होता है।

सुख, शाश्वत सुख प्राप्त करने के लिये पैसों की, स्त्री की, पुत्र की, अधिकार की अपेक्षा नहीं होती। यह महत्व का तथा उपयोगी सत्य भगवद्गीता में सहज अप्रत्यंग रूप से परन्तु बहुत अच्छी तरह से समझाया गया हैः—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।। २—६४
प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।। २—६५
नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्।। २—६६

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुखी होने की इच्छा रखने वाले के लिये ऊपर के तीन श्लोक बहुत ही महत्व के हैं। इन तीन श्लोकों में सिद्धान्त और दलील दोनों का समावेश किया है। सुख की प्राप्ति के लिये सुखी होने के लिये शांति बहुत महत्व का तत्व है। इस कारण से श्लोक २–६६ में बताया है कि अशांति–शांति बिना मनुष्य को सुख कहाँ हो सकता है।

शांति का दूसरा नाम प्रसाद है। प्रसाद–शांति प्राप्त होने से तमाम दुःख की निवृत्ति होती है। जिसने शांति–प्रसाद प्राप्त किया है ऐसा मनुष्य प्रसन्न चेतस कहाता है। इस प्रकार से मनुष्य का मन प्रसन्न होने से उसकी बुद्धि तुरंत स्थिर होती है– तेज होती है, तीव्र होती है। सार–असार का भलीभाँति विचार करने वाली बुद्धि को युक्त कहा है। युक्त से विपरीत बुद्धि अयुक्त बुद्धि–अयुक्त बुद्धि में दोष होने से सार–असार का सत्य–असत्य का, सुख–दुःख का सही निरूपण नहीं कर सकती है। इसी कारण से वह जिसे सुख के साधन मानती है वह कई बार दुखदायक होते हैं। अयुक्त बुद्धि के निर्णय में जो यह महान कमी है वह युक्त बुद्धि के निर्णय में नहीं होती है।

सुख संपादन करने वाले अभ्यासी की बुद्धि युक्त होनी चाहिए और उसका परिणाम प्रसाद–शांति होना चाहिए। इस वजह से बुद्धि को युक्त कैसे बनाना, बुद्धि को क्या करने से वह अयुक्त होती है और क्या दूर करने से वह युक्त बनती है यह प्रश्न महत्व का है।

इस महत्व के प्रश्न का निर्णय २–६४ श्लोक में दृष्टव्य है। राग और द्वेष वह दो बुद्धि के मल है। उसके स्पर्श से बुद्धि में राग–द्वेष उत्पन्न होने से बुद्धि अयुक्त होती है। यह दोनों दोष दूर होने से बुद्धि युक्त होती है। इस प्रकार की बुद्धिवाला मनुष्य विषयों को भोगता हुआ भी प्रसाद को **(Peace tranquility)** पाता है।

मानसशास्त्र की दृष्टि से विचार करने से भी ऊपर का श्लोक बहुत महत्व का है। सुख का आधार जैसे इन्द्रियों पर है वैसे मन पर–मानसिक स्थिति पर भी है। मानसिक शांति वह सुख का महत्व का तत्व है। मानसिक शांति आई तो तमाम दुःख अपने आप दूर हो जाते हैं। शांत मन वाला मनुष्य शांत चित्त से–निष्पक्षपात बुद्धि से राग द्वेष से रहित होकर सार–असार के विवेक का विचार कर सकता है। इस प्रकार से किये हुये विचार से–निर्णय से मनुष्य को सुख शाश्वत सुख अपने आप मिलता है।

ऊपर का सिद्धांत इतना महत्व का है कि श्रीमदभगवदगीता में अलग–अलग स्थान पर अलग–अलग शब्दों में इस विषय पर जोर देने में आया है। सामान्य मनुष्य के सुख के विचार में और तत्वज्ञानी के विचार में कितना अंतर है वह भी ऊपर के श्लोक से समझ में आता है। यह सिद्धांत को और एक प्रकार से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समझाते हुए कहा है कि:–

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्।। ६–२७

उत्तम सुख, सर्वोत्तम सुख किसे प्राप्त होता है वह इस श्लोक में बताया है। सर्वोत्तम सुख की इच्छा–आकांक्षा रखने वाले को किन–किन गुणों को विकसित करना चाहिए, वह ऊपर के श्लोक में कहा है। जिस योगी का, अभ्यासी का, मुमुक्षु का मन बहुत शांत हुआ हो, जिसके मन में से राग–द्वेष बिल्कुल निकल गये हो जिसका रजसगुण बिल्कुल शांत हो गया हो, जो अकल्मष, पापरहित हो वैसे योगी को सर्वोत्तम सुख की प्राप्ति होती है।

सुख के संबंध में ऊपर जो विवेचन किया है उससे सुखी मनुष्य किसे कहते हैं, सुखी की व्याख्या ढूँढ़ निकालनी मुश्किल नहीं है। तात्विक दृष्टि से ढूँढ निकाली हुई व्याख्या सामान्य मनुष्य के दृष्टि बिन्दु से इतनी तो भिन्न होती है कि पुनरावर्तन करके भी इस दृष्टि बिन्दु को स्पष्ट करना ही भगवान वेद–व्यास का आग्रह हो ऐसा दिखता है। इस कारण से वे फिर से बताते हैं कि:–

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः।। ५–२३

इस शरीर–स्थूल शरीर में से मुक्त होने से पहले–मनुष्य के जीवन दरम्यान जो मनुष्य काम–राग–द्वेष–इच्छा–वासना तथा क्रोध के वेग को सहन कर सकता है, दबा सकता है, काबू में रख सकता हैं, वही मनुष्य सुखी है। ऊपर के श्लोक से लगेगा कि 'युक्त' और 'सुखी' करीब–करीब पर्याय शब्द जैसे ही इस्तेमाल हुये हैं।

काम और क्रोध के वेग को दबाकर रखने वाला–काम क्रोध के वेग को सहन करने वाला ही वास्तविक सुखी है। इस सत्य के साक्ष्य में मनुष्य जाति का पूरा इतिहास प्रस्तुत कर सकते हैं। महान राज्यों पर विजय पाने पर भी विजेता को शांति नहीं मिली इसके अनगिनत उदाहरण प्रत्येक देश के इतिहास में है। महान लक्ष्मी संपादन करने पर भी शांति नहीं मिलती। सुख नहीं मिलता। वह हकीकत अभी भी दुनियां में दृष्टिगोचर होती है। सुंदर स्त्रियों को पाने पर भी सुख नहीं होता परन्तु इसके विपरीत दारुण दुःख पाने के उदाहरण प्रत्येक देश के इतिहास में मौजूद हैं। इस तरह सामान्य मनुष्यों के माने हुये सुख के साधन दुःख रूप साबित हुये हैं। इस तरह अपने माने हुये सुख के साधन यदि दुःख रूप हैं तो फिर वास्तविक, सच्चा सुख किसमें है? इस प्रश्न का उत्तर भगवान व्यास ने दिया है–काम क्रोध के वेग को सहन करने से, अपनी आत्मा पर काबू पाने से (Self Control) मनुष्य, जगत के सभी तत्वों पर काबू पाता है। जगत के सर्व तत्वों पर समृद्धि पर पाया हुआ काबू, अपनी स्वयं की आत्मा पर के काबू के बिना

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जितना बेकाम निकम्मा है, उतना ही दुःखकर है। आजकल के जमाने में इस सत्य का मनन करने की विशेष आवश्यकता है।

जिस काम और क्रोध के वेग को सहन करने को हमें कहा जाता है वह काम और क्रोध मनुष्य के शरीर में कहाँ रहते हैं, कैसे हैं और कैसे काम करते हैं आदि हकीकत जानने में आये तो ही उस पर काबू पाया जा सकता है। अपने स्थूल शरीर में–घर में प्रवेश करके छुपकर चोरी करने वाला चोर अपने घर में–शरीर में कहाँ छुपा है वह जगह जानी जाये तो ही उसे आसानी से बाहर निकाल सकते हैं और अपने घर की–अपने शरीर की सुख संपति की रक्षा कर सकते हैं।

अपने शरीर में कोई बाहर का पदार्थ घुस गया हो तो हमें दुःख होता है ऐसे समय में हम डॉक्टर के पास जाते हैं। एक्स रे से डॉक्टर तुरन्त बाहर के पदार्थ की जगह निश्चित करते हैं। वैसा करने के पश्चात वह दुःख देने वाले पदार्थ को बाहर निकालते हैं।

काम और क्रोध के सम्बन्ध में भी वैसा ही है। मनुष्य के शरीर के किस भाग में कैसे छुपे रहते हें यह जाने बिना उन्हें दूर नहीं कर सकते। प्रत्येक अभ्यासी स्वयं ही यह हकीकत निश्चय कर सके–निश्चय कर काम क्रोध को दूर कर सके उसके लिये भगवान वेद व्यास ने श्रीमद्भगवद्गीता में सूचना दी हैः–

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम्।। ३–४०

इन्द्रिय, मन और बुद्धि, ये काम क्रोध के रहने के अधिष्ठान–जगह है। काम और क्रोध इन्द्रिय मन और बुद्धि के अन्दर छिपे रह कर मनुष्य के ज्ञान विवेक बुद्धि को ढँक देते हैं।

मनुष्य के तमाम तत्वों में, तमाम अवयवों में से अभ्यासी के लिये इन्द्रिय मन तथा बुद्धि, यह तीन तत्व बहुत महत्व के हैं। इन तीन तत्वों का ही ज्ञान सम्पादन हो तो ही उस पर काबू पाकर–उसमें से काम क्रोध को दूर किया जा सकता है।

इन्द्रिय, मन और बुद्धि पर मनुष्य के भावी सुख–उन्नति का आधार है। ये तीनों तत्व बहुत सूक्ष्म हैं फिर भी उन्नति मार्ग में आगे बढ़ने वाले अभ्यासी के लिये यह तीनों तत्वों का चौकस और व्यावहारिक ज्ञान बिना कोई और उपाय नहीं है। अर्जुन जैसे उच्च अधिकारी को भी यही रास्ता स्वीकारना पड़ा था अर्जुन को भी भगवान श्री कृष्ण ने कहा था कि :–

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्।। ३–४१

हे अर्जुन! इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि यह तीन महत्व के तत्व होने से आपको इन्द्रियों को नियम में लाकर इन्द्रिय पर काबू पाना इन्द्रियों का निग्रह करना।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस प्रकार करने से ज्ञान तथा विज्ञान के नाश करने वाले–ज्ञान तथा विज्ञान प्राप्ति में प्रतिबंध रूप पाप का नाश होगा। ऐसे पाप के नाश होने से ही अभ्यासी का ज्ञान और विज्ञान का, सत्यासत्य का साक्षात्कार होगा।

इन्द्रिय, मन, बुद्धि ये तीन तत्त्व बहुत महत्व के हैं उन पर काबू पाना बहुत महत्व का है। इन तीनों तत्वों पर काबू पाने के लिये भी एक क्रम से चलने में–आगे बढ़ने से बहुत सरलता होगी। ऊपर के तीन तत्वों में से मन और बुद्धि बहुत सूक्ष्म/बारीक तत्व है। उस पर विचार करने के पहले इन्द्रिय तत्व का पद्धति अनुसार और विगतवार विचार करने की जरूरत है। इन्द्रिय यानी क्या ? वे कितनी हैं। कैसे कार्य करती है? मनुष्य के जीवन में कौन सी इन्द्रिय कैसा और कितना पार्ट अदा करती है? इन्द्रियों पर काबू कैसे मिल सके और वैसा करने से मनुष्य के जीवन में कितने महत्व का और अजीब जैसा बदलाव आता है इस पर इसके बाद के प्रकरणों में विचार होगा।

❑

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकरण–६

इन्द्रिय विज्ञान और इन्द्रिय निग्रह

'इन्द्रिय' यह इतना आसान, सरल और परिचित शब्द है कि उस पर विचार करने की जरूरत है ऐसा कई लोगों को लगता भी नहीं है। इन्द्रिय के साथ सम्बन्धित 'अर्थ' इस प्रकार का दूसरा शब्द है। 'अर्थ' शब्द 'इन्द्रिय' शब्द से भी आसान दिखता है फिर भी उसका सही अर्थ समझने की जरूरत है। 'इन्द्रिय' और 'अर्थ' यानी क्या? उन दो के बीच कैसा और कितना सम्बन्ध है, इन्द्रिय के प्रशिक्षण से अर्थ पर और अर्थ के प्रशिक्षण से इन्द्रिय पर किस प्रकार का असर होता है। इस प्रकार की इन्द्रिय पर होने वाले असर में मनुष्य अपने प्रयास से प्रशिक्षण से कितना और कैसा बदलाव ला सकता है और इस प्रकार के बदलाव से दुनिया की तरफ की दृष्टि मर्यादा कितनी विशाल होती है, इन तमाम विषयों पर पद्धति अनुसार विचार किए बिना कोई भी मनुष्य दुनिया में, व्यापार में, शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक उन्नति में–विकासक्रम में आगे बढ़ नहीं सकता।

दुनिया के प्रत्येक धर्मशास्त्र में इन्द्रिय निग्रह को बहुत ही महत्व का स्थान दिया है। हिन्दू धर्मशास्त्रों में इन्द्रिय निग्रह विषय पर बहुत व्यवस्थित तथा सूक्ष्मता से विचार किया है। व्यक्ति का, समाज का, राज कारोबार का उदय विकास और वृद्धि प्रत्येक व्यक्ति के इन्द्रिय निग्रह पर आधार रखती है। इस सत्य को ध्यान में रखकर हिन्दूधर्म में इन्द्रिय निग्रह की भावना को दृढ़ किया गया है।

आजकल के जमाने में अक्षर ज्ञान बहुत बढ़ गया है। प्रजा में भी साक्षरता का प्रतिशत बढ़ा है। जैसे खाया हुआ परंतु बिना पचाया हुआ अन्न मनुष्य के स्थूल शरीर की वृद्धि करने के बदले रोग उत्पन्न करने का कारण होता है वैसे ही जिस साक्षरता से, पठन–पाठन, से मनुष्य की इन्द्रियों पर असर नहीं होता–काबू नहीं पाया जाता–इन्द्रिय निग्रह करने में उपयोगी नहीं होता, वैसा पठन–पाठन, वैसी साक्षरता मनुष्य को मदद नहीं करती। इतना ही नहीं परंतु कई बार वह केवल भाररूप बनती है।

प्रत्येक प्रजा आजकल शरीर के ऐश–आराम के साधनों की तरफ आकर्षित होती है। ऐसे जमाने में इन्द्रिय निग्रह के लिए आग्रह करना लोगों में प्रचलित विचार के विरूद्ध है। यह सत्य होने पर भी समाज का कुछ अंश अब समझने लगा है कि मनुष्य जाति का वास्तविक सुख इन्द्रिय आराम, इन्द्रियों के लालन–पालन में नहीं परंतु इन्द्रिय निग्रह में ही है। इन्द्रिय आराम यानी ऐश–आराम–आलस्य,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन्द्रिय निग्रह यानी उद्योग, विषय सुख की बेपरवाही। इन्द्रिय निग्रह धार्मिक दृष्टि से मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति के लिए जरूरी है इतना ही नहीं परंतु सामाजिक तथा राजकीय दृष्टि से भी समाज को तथा राज्य को सुव्यवस्थित बनाकर सुदृढ़ और आबाद करने के लिए बहुत ही महत्व का है।

दुनिया की प्रत्येक सभ्य प्रजा ने शारीरिक कसरत को प्रजा के स्थूल शरीर के विकास के लिए एक महत्व का साधन माना है—स्वीकारा है। इस प्रकार की कसरत के बिना प्रजा का शरीर दिन पर दिन घिसता जाता है। कसरत के अभाव में प्रजा सत्वहीन बनती,अधिक से अधिक गिरती जाती है और अंत में ऐसी प्रजा का नाश होता है।

इन्द्रिय निग्रह भी एक प्रकार की कसरत है। जैसे शारीरिक कसरत के बिना मुनष्य के स्थूल शरीर का नाश होता है उसी प्रकार से इन्द्रिय निग्रह के अमूल्य कसरत के बिना प्रजा का मानस और आध्यात्मिक शरीर घिस जाता है और नाश होता है। इन्द्रिय निग्रह की कसरतों में कुछ हद तक शारीरिक कसरतों का भी समावेश हो जाता है। इन्द्रिय निग्रह यानी वैद्य या डॉक्टर की मँहगे मूल्य की दवाओं के बिना शारीरिक आरोग्य को सँभालकर रखने की एक अमूल्य कुजी। इन्द्रिय निग्रह यानी इंग्लैण्ड या अमेरिका के कीमती विश्वविद्यालय में जाने के खर्च किए बिना मानसिक तेज तीक्ष्णता और मनोविकास का एक अमूल्य साधन। इन्द्रिय निग्रह यानी कीमती और मनुष्य संहार करने वाली युद्ध की सामग्री के बिना दुनिया की सभ्य प्रजा में श्रेष्ठपद संपादन करने का एक सस्ता परंतु चौकस साधन।

इन्द्रिय निग्रह एक प्रकार की कसरत है। कसरत की कितनी भी पुस्तकें पढ़ने से और कसरत के असंख्य चित्र देखने से नहीं परंतु थोड़ी भी कसरत करने से ही मनुष्य का देह मजबूत होता है। इन्द्रिय निग्रह में भी वैसा ही है। इन्द्रिय निग्रह के विषय में बहुत पढ़ने से नहीं परंतु हर रोज थोड़ा बहुत भी इन्द्रिय निग्रह की आदत डालने से मनुष्य का सूक्ष्म देह बहुत दृढ़ होता है। सामान्य मनुष्य अपने रोज के व्यवहार में इन्द्रिय निग्रह करने की आदत डाले और वैसा करने में उसे व्यावहारिक मदद मिले इसीलिए इन्द्रिय क्या है और उसका क्या अर्थ है? आदि प्रश्नों का बहुत सूक्ष्मता से नहीं परंतु काम चलाऊ और व्यावहारिक ज्ञान मिले उतनी पद्धति अनुसार विचार करने की हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, क्रिश्चियन आदि प्रत्येक धर्म के मनुष्य की धार्मिक उन्नति के लिए और व्यावहारिक उन्नति के लिए जरूरी है।

इन्द्रियों का दूसरा नाम 'करण' है। 'करण' यानी साधन, करण यानी बाहर के विषयों को ग्रहण करने, समझने का साधन। बाहर जितना मर्जी आवाज होता हो परंतु कर्णेन्द्रिय के बिना—कान के साधन के बिना हम सुन नहीं सकते। कितने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ही सुशोभित रंग होने पर भी बिना आँख खोले, चक्षु इन्द्रिय के बिना हम देख नहीं सकते। जितना मर्जी स्वादिष्ट भोजन हो परंतु जब तक उसका जीभ से संपर्क न हो, रसना इन्द्रिय का संयोग न हो तब तक भोजन की मिठास का पता नहीं चलता। इस कारण से कान आवाज को सुनने की इन्द्रिय–साधन है। उसी प्रकार आँख और जीभ रंग रूप और स्वाद को परखने वाली इन्द्रियाँ साधन हैं।

इन्द्रियों की संख्या के विषय में भी कितने मतभेद हैं। कुछ तत्ववेत्ता तेरह इन्द्रियों को मानते हैं, कुछ ग्यारह और कुछ दस इन्द्रियाँ मानते हैं। इन्द्रियों की संख्या के सम्बन्ध में जो मतभेद हैं वे वास्तविक नहीं परंतु बाहरी या छिछला है।

चक्षु–आँख, श्रोत्र–कान, प्राण–नाक, रसना–जीभ और त्वक्–चमड़ी ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ कहलाती हैं। दुनिया के सभी विषयों को जानने में समझने में ये इन्द्रियाँ बहुत महत्व की मदद करती हैं। इस कारण से इन पाँच इन्द्रियों को कुछ एक तत्ववेत्ता बुद्धि इन्द्रिय भी कहते हैं। मनुष्य को बाह्य जगत का जो–जो ज्ञान होता है वह इन इन्द्रियों द्वारा ही होता है। इस सम्बन्ध में श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है कि :–

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ।। १५–६

जीव–पुरुष–पुरुषोत्तम, श्रोत्र, चक्षु, स्पर्श–चमड़ी, रसना–जीभ और घ्राण इन्द्रियों पर अधिष्ठान पाकर ज्ञानेन्द्रियों द्वारा विषयों का सेवन करता है–विषयों का अनुभव पाता है। मन को भी कुछ लोग इन्द्रिय में गिनते हैं उसी से इस श्लोक में मन को भी इन्द्रियों की संख्या में गिना है।

ऊपर के श्लोक में तीन अलग–अलग व्यक्ति–त्रिपुटी हों ऐसा दिखता है। एक तो जीव–आत्मा–पुरुषोत्तम–इन्द्रिय द्वारा विषय का सेवन करने वाला, दूसरा इन्द्रियाँ बाह्य पदार्थों को अनुभव करने वाले किसी व्यक्ति का इन्द्र का साधन, त्रिपुटी का तीसरा अंग ये विषय–सृष्टि के पदार्थ हैं। इस पर से समझ में आता है कि जगत के दो बड़े विभाग–पुरुष और प्रकृति, जीव और जगत आत्मा और अनात्मा–जड़ और चेतन को जोड़ने वाली इन्द्रियाँ ही हैं। जैसे दो बड़े समुद्रों को एक नहर जोड़ती है उसी प्रकार जड़ और चेतन का संयोग इन्द्रिय रूपी नहर द्वारा होता है। जैसे सामान्य नहर रेत से भर जाने से दो समुद्रों के बीच का प्रवाह ठीक से आ जा नहीं सकता–प्रसारित नहीं हो सकता उसी प्रकार इन्द्रियाँ बराबर न हों तो प्रकृति और पुरुष का, जीव और जगत का, चेतन और जड़ का व्यवहार बराबर नहीं चलता है। ऐसे व्यवहार में दखल होने से जीव को, पुरुष को, मनुष्य को जगत में से जो अनुभव तथा जो आनन्द मिलना चाहिए वह बराबर नहीं मिलता। इन्द्रिय रूपी नहर का एक छोर पुरुष के साथ जुड़ा हुआ है और दूसरा छोर बाहर की दुनिया–अर्थ–विषयों के साथ जुड़ा हुआ है। जैसे इन्द्रियों के बिना

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषयों–अर्थों का हमें ज्ञान नहीं होता वैसे ही विषयों, अर्थों के बिना इन्द्रियाँ बेकार हो जाती हैं। इस तरह होने से इन्द्रिय और अर्थ का बहुत प्रगाढ़ सम्बन्ध है।

ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच प्रकार की होने से विषयों को भी उतने ही भागों में विभक्त किया जा सकता है। जैसे नाक को गंध का ज्ञान होता है, कान को शब्द का ज्ञान होता है, उसी तरह प्रत्येक इन्द्रिय अपने स्वभाव से, अपने बनावट से अमुक प्रकार के विषय का ही ज्ञान ग्रहण करने लायक होती है।

प्रत्येक इन्द्रियों का अर्थ अलग–अलग है। अपने–अपने अर्थ वर्ग में (Class of objects) भी दो विभाग में विभक्त हैं। स्वाद वह रसना जीभ का अर्थ वर्ग है। कुछ एक स्वाद अच्छे–मीठे होते हैं। ऐसी चीजों के प्रति इन्द्रियों को राग–सुख की भावना होती है। सानुकूलता की भावना होती है। कुछ स्वाद खराब होते हैं। ऐसे स्वाद के प्रति द्वेष–दूर करने की इच्छा, दुःख की भावना, प्रतिकूलता की भावना होती है। जैसे जीभ के सम्बन्ध में उसी प्रकार अन्य चार इन्द्रियों के अपने अर्थ, वर्ग होते हैं और उसमें उन अर्थ वर्ग में विषयों में उसे राग द्वेष होता है। इस सम्बन्ध में गीता में कहा है:–

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ।। ३–३४

प्रत्येक इन्द्रिय को अपने–अपने अर्थ में, विषय में राग–अनुकूलता तथा द्वेष, प्रतिकूलता रहती है। विषयों के प्रति, इन्द्रियों के इस राग द्वेष के काबू में न आना– राग द्वेष के अधीन न होना। मनुष्य की उन्नति के मार्ग में यह राग–द्वेष विघ्न करने वाले होने से इस प्रकार के राग–द्वेष से दूर रहने का प्रत्येक धर्म में आग्रह किया गया है।

ऊपर पाँच ज्ञानेन्द्रियों का वर्णन किया। इसके उपरान्त और पाँच इन्द्रियाँ हैं। वाक्, मुँह, पाणि–हाथ, पाद–पैर, गुदा और उपस्थ ये पाँच इन्द्रियाँ कर्म करने में उपयोगी हैं। इस कारण से इन इन्द्रियों को कर्मेन्द्रियाँ कहते हैं। इस दृष्टि से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ मिलकर दस इन्द्रियाँ होती हैं। इस सम्बन्ध में गीता में कहा है कि :–

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इन्द्रियाणि दशैकं च पंच चेन्द्रियगोचराः ।। १३–५

पृथ्वी, आग, तेज, वायु, आकाश ये पाँच महाभूत, अहंकार, बुद्धि और मन ये आठ तत्व तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ एवं पाँच कर्मेन्द्रियाँ मिलकर दस इन्द्रिय के गोचर–इन्द्रियों के विषय हैं। इन्द्रिय तथा अर्थ–विषयों के सम्बन्ध को समझाने के लिए ऊपर के श्लोक में गोचर शब्द का प्रयोग किया है। गो शब्द के दो अर्थ होते हैं। गो यानी गाय और गो यानी इन्द्रियाँ। जैसे गायों को चरने …

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गोचरा निश्चित किए हैं वैसे ही इन्द्रियों को चरने के लिए—इन्द्रियों के कार्यक्षेत्र के रूप में अर्थ के वर्ग—विषयों के क्षेत्र निश्चित किये गये हैं।

पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ इस प्रकार से दस इन्द्रियाँ हैं। इस तरह होने के बावजूद कुछ एक तत्ववेत्ता मन को भी इन्द्रिय गिनते हैं, क्योंकि वह भी ज्ञान पाने का साधन—करण है। कुछ एक उससे भी आगे बढ़कर अहंकार और बुद्धि को भी ज्ञान पाने के साधन गिनते हैं, क्योंकि आखिर में बुद्धि के निर्णय के बिना ज्ञान प्राप्त होता नहीं है। इस प्रकार गिनने से अन्ततः १३ इन्द्रियाँ होती हैं। इन १३ इन्द्रियों में से पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा पाँच कर्मेन्द्रियों का अधिकतर कार्य बाह्य इन्द्रियाँ करती हैं। मन, अहंकार और बुद्धि ये, बाह्य विषयों का ज्ञान मनुष्य को होने के बाद उन पर विचार करते हैं, उस कारण से उन्हें अन्तःकरण कहते हैं। अन्तःकरण यानी बाहर के विषयों के ज्ञान होने के बाद उस ज्ञान पर विचार कर उस पर निर्णय लेने वाले अन्दर की इन्द्रियों का समूह।

इन्द्रियों के सम्बन्ध में जो विचार ऊपर किया गया है उसका संक्षिप्त पुनरावर्तन नीचे अनुसार कर सकते हैं:—

	ज्ञानेन्द्रियाँ	उसके विषय	महाभूत
१.	श्रोत्र—कान	शब्द	आकाश
२.	त्वक्—त्वचा	स्पर्श	वायु
३.	चक्षु—आँख	रूप	तेज
४.	जिह्वा—जीभ	रस	आब
५.	घ्राण—नाक	गंध	पृथ्वी

ऊपर अनुसार ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इन पाँच इन्द्रियों के ऊपर दर्शित पाँच अर्थ—पाँच विषय हैं। प्रत्येक विषय का ज्ञान उस विषय की निश्चित की हुई इन्द्रियों से ही होता है। इस प्रकार का प्रत्येक ज्ञान मनुष्य में राग और द्वेष, सुख व दुःख की भावना उत्पन्न करते हैं। ऊपर के राग—द्वेष देने वाले ज्ञान का एक विशिष्ट महाभूत के साथ सम्बन्ध है। प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय का तथा उसके विषय का किस महाभूत के साथ सम्बन्ध है यह भी बताया है। इन्द्रिय को—गो को अपना विशिष्ट गोचर होता है। प्रत्येक इन्द्रिय का विषय अर्थ वर्ग ही उसका गोचर है।

ज्ञानेन्द्रिय से जो—जो ज्ञान मनुष्य को मिलता है उस ज्ञान के अनुसार क्रिया करने को मनुष्य प्रेरित होता है ऐसी क्रिया कर्मेन्द्रिय द्वारा होती है। कर्मेन्द्रियों का पुनरावर्तन नीचे अनुसार कर सकते हैं:—

	कर्मेन्द्रिय का नाम	उसका काम
१.	हस्त—हाथ	दान
२.	पाद—पैर	गति

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

३.	वाणी–मुँह	वचन
४.	वायु–गुदा	मलत्याग–विसर्ग
५.	उपस्थ–जननेन्द्रिय	स्पर्शजन्य सुख

कर्मेन्द्रियों का कामं ज्ञानेन्द्रियों से अलग है। कर्मेन्द्रियाँ शरीर का कार्यकारिणी अंग हैं।

इसके उपरान्त अतःकरण–अन्दर भी तीन इन्द्रियाँ हैं उनके नाम तथा कार्य निम्नलिखित हैं:–

	इन्द्रियों का नाम	उनका कार्य
१.	मन	संकल्प–विकल्प करना
२.	अहंकार	व्यक्तित्व देना
३.	बुद्धि	चौकस निर्णय करना

इस प्रकार संकल्प–विकल्प करना मन का धर्म है। एक विषय को बाकी सब विषयों से अलग करके उसे व्यक्तित्व (Individality) देना अंहकार का कार्य है। कुछ विषय पर विचार करने के बाद उस पर चौकस निर्णय देना बुद्धि का कार्य है। यह सारे विकार मनुष्य के शरीर के अन्दर होने से मन अहंकार बुद्धि की त्रिपुटी को अन्तःकरण कहा गया है।

ऊपर अनुसार तीनों प्रकार की इन्द्रियों का–ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, अंतःकरण–उसके विषयों का तथा उसके कार्यक्षेत्र का तथा विषयों में स्वाभाविक राग–द्वेष का तथा उसके कारणों का शुरुआत में ही विचार करने की अभ्यासी को बहुत जरूरत है। इस प्रकार के विचार वह आत्मनिरीक्षण (Self Introspection) एक बहुत महत्व का भाग है। राग द्वेष, काम क्रोध इन्द्रियों में, इन्द्रियों के विषयों में छिपे होने से, इस प्रकार का निरीक्षण आत्मसुधार के लिए महत्व का है। इस प्रकार की पद्धति अनुसार निरीक्षण की आदत डालने से कम समय में मनुष्य की उन्नति का वेग बहुत बढ़ जाता है। इस प्रकार निरीक्षण करने से अपने में गुप्त रीति से छिपे हुए दोषों को भी मनुष्य ढूँढ सकता है–उसे दूर कर सकता है। ऊपर के विवेचन से पता चलेगा कि इन्द्रिय और दुनियां के विषयों–अर्थ के बीच एक तरह का सम्बन्ध है। इन्द्रिय और अर्थ का सम्बन्ध मनुष्य के सुख–दुःख का कारण है। यह सम्बन्ध होते समय यदि ध्यान रखा जाय तो दुनिया के दुःख का काफी भाग कम हो सकता है।

खराब–गंदा पानी पीने से कालरा आदि रोग पैदा होते हैं। जैसे खराब पानी का मनुष्य की आँतों के साथ सम्बन्ध होने से मनुष्य को कालरा आदि रोग होते हैं–दुःख होता है उसी प्रकार खराब विषयों का इन्द्रियों के साथ सम्बन्ध होने से मनुष्य को दुःख होता है। खराब पानी को जैसे हम छानकर उसके हानिकर तत्वों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को हम दूर कर सकते हैं और वैसा पानी पीने से होने वाली शांति को पा सकते हैं उसी प्रकार विषयों को भी छाना जा सकता है–विषयों के दोषों को भी दूर किया जा सकता है। इन्द्रिय निग्रह विषयों के दोषों को भी दूर किया जा सकता है। इन्द्रिय निग्रह से विषयों के दोष दूर करने का एक साधन है। जैसे दोष दूर किए हुए पानी से मनुष्य का आरोग्य अच्छा होता है उस प्रकार से विषयों के दोष दूर कर उसका उपयोग करने से मनुष्य का आध्यात्मिक देह पुष्ट होता है। कचरा जैसे पानी का मैल है, हानिकारक तत्व है, उसी तरह विषय में स्थित राग–द्वेष की भावना उसका मल है।

इन्द्रिय निग्रह यानी विषयों में स्थित राग द्वेष का त्याग करना। इन्द्रियाराम यानी राग द्वेष से दूषित हुए विषयों का सेवन करना। गन्दे पानी में से मल दूर न कर निर्मल नहीं किए हुए पानी से जैसे मनुष्य का शारीरिक स्वारथ्य तथा आरोग्य बिगड़ता है, उससे कहीं अधिक मल वाले, राग द्वेष वाले विषयों के सेवन से मनुष्य का शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक स्वास्थ्य और आरोग्य बिगड़ता है।

लोहा बहुत सस्ती धातु है फिर भी उस पर प्रशिक्षणं करने से, उसको सुधारने से वह सोने से भी अधिक महंगे दामों पर बेचा जाता है। इन्द्रियों के साथ भी वैसा ही है। एक जंगली मनुष्य की इन्द्रियाँ प्रशिक्षित न होने से उसे उनके द्वारा बहुत सुख नहीं मिलता है। जैसे लोहे को सुधार कर उसे बहुत ही कीमती बनाया जा सकता है उसी प्रकार इन्द्रियों को भी प्रशिक्षित किया जा सकता है। कान को प्रशिक्षित करने से, मनुष्य शब्द के अलग–अलग भेद–उच्च प्रकार के संगीत का आनन्द ले सकते हैं। आँख के प्रशिक्षण से उच्च प्रकार के सृष्टि सौंदर्य और चित्रकला का आनन्द पा सकते हैं। मनुष्य यदि प्रयत्न करे–अपनी इन्द्रियों को प्रशिक्षित करे–इन्द्रियों को खराब विषय–अर्थ का संग न होने दे और उसे उच्च पदार्थों, विषयों, अर्थों को देखने की सुनने की आदत डाले तो थोड़े समय में मनुष्य की इन्द्रियाँ बहुत तेज होती हैं। ये इन्द्रियाँ एक प्रकार की छननी जैसी होती है। ऐसी इन्द्रियों द्वारा हुए अनुभव दुःख रूप नहीं होते । इस प्रकार की इन्द्रियों का प्रशिक्षण इन्द्रिय निग्रह है। इस प्रकार के प्रशिक्षण के विरुद्ध, इन्द्रियों को उनके स्वाभाविक जंगली स्थिति में रहने देने का नाम ही इन्द्रियाराम इन्द्रियलोलुपता है।

प्रशिक्षण का प्रत्येक काम आसान नहीं होता। एक बार शुरु करने के पश्चात उस कार्य पर सतत चौकसी रखनी पड़ती है। यह हकीकत गीता में भी कही गयी है:–

> यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
> इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।। २–६०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे कौन्तेय ! अर्जुन, इन्द्रिय निग्रह करने के प्रयत्न करने वाले सयाने मनुष्यों की इन्द्रियाँ भी उसके मन का हरण कर लेती हैं। इस प्रकार यदि इन्द्रियों से मन आकर्षित हो जाए–इन्द्रियों के विषयों में मनुष्य मन से भी आकर्षित हो जाए तो उसकी कैसी स्थिति होती है? इस सम्बंध में कहा है कि :–

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि।। २–६७

यदि इन्द्रियों के पीछे मन भी आकर्षित हो–इन्द्रियो के विषय में जो मन लुभा जाय तो जैसे पानी की नाव पवन से बह जाती है वैसे सयाने मनुष्य की प्रज्ञा–विवेक बुद्धि इन्द्रियों के विषय रूप महासागर में बह जाती है। प्रज्ञा का, सार–असार की विवेक बुद्धि का नाश होता है। ऊपर के श्लोक पर से पता चलेगा कि मनुष्य की विवेकबुद्धि की स्थिरता का आधार उसके वाचन पर नहीं, उसके विचार पर नहीं, उसके तप पर नहीं परन्तु इन्द्रिय निग्रह पर है। इन्द्रिय निग्रह यानी विषय के लालच से लालची नहीं बनने की मनुष्य की शक्ति प्रत्येक मनुष्य में ऐसी विकसित हो और उसकी वृद्धि हो उस मुख्य हेतु से प्रत्येक धर्म के आचार–विचार धार्मिक क्रियाएँ, व्रत और दूसरे विधानों की योजना की है। ये सारे व्रत और विधानों का मुख्य उद्देश्य इन्द्रिय निग्रह में मनुष्य को प्रशिक्षित करना ही है।

महासागर के अन्दर पानी और पवन से इधर–उधर फेंके जाने वाले एक निश्चेष्ट लकड़ी के टुकड़े में और बुद्धिपूर्वक तैरकर उस पार जाने वाले एक बहादुर नाविक में जितना फर्क है, उतना और वैसा ही फर्क एक साधारण मनुष्य में और एक विवेक के अनुसार तथा बुद्धिपूर्वक इन्द्रिय निग्रह करने वाले अभ्यासी में है। इन्द्रिय निग्रह नहीं करने वाला मनुष्य संसार में इधर–उधर बिना कोई आदर्श के बिना टकराता रहता है। इन्द्रिय निग्रह करने वाला अपना गन्तव्य सही जानता है। उसकी प्रत्येक प्रवृत्ति उसे हर पल उस स्थान की तरफ ले जाती है। भगवद्गीता में ऐसे मनुष्य का नीचे अनुसार वर्णन किया है और उसकी कैसी गति होती है यह भी बताया है:–

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति।। ३–१६

ऊपर अनुसार तीसरे अध्याय के श्लोक ६–१५ तक में दर्शित सृष्टिचक्र, सृष्टि की उत्पत्ति तथा अस्तित्व का रहस्य नहीं जानने वाला उसके अनुसार वर्तन नहीं करने वाला, अघायु और इन्द्रियाराम– इन्द्रियों के विषय में ही आराम–आनन्द मानने वाला है। इन्द्रियाराम मनुष्य का जीवन भी वृथा है। मनुष्य की जो उन्नति होनी चाहिए वह इन्द्रियाराम से नहीं होती–उससे उसके जीवन का हेतु नहीं मिलता–जीवन वृथा जाता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रत्येक मनुष्य की ऊपर बताये अनुसार पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और उसके द्वारा वह दुनिया के हर एक विषयों का अनुभव करता है। सामान्य मनुष्य को तो कर्मेन्द्रियों का भी निग्रह करने की जरूरत है। यह दस इन्द्रियों का निग्रह करने की विगतवार पद्धति भगवद्गीता में नहीं है। प्रत्येक मनुष्य विकासक्रम में कम ज्यादा आगे बढ़ा हुआ होता है। सभी मनुष्य एक समान रीति से ही आगे बढ़े नहीं होते। इस कारण से पाँच कर्मेन्द्रियों में से किसी को कोई विशेष इन्द्रिय पर विशेष काबू रखने की जरूरत होती है। ज्ञानेन्द्रिय में ऐसा ही है। इस प्रकार होने से प्रत्येक मनुष्य को आत्मनिरीक्षण कर अपनी हर एक इन्द्रियों में से किस इन्द्रिय पर किस प्रकार का और कितना अधिक काबू रखने की जरूरत है यह उसे स्वयं को ही निश्चित करना पड़ेगा। ऐसे विषय में प्रत्येक मनुष्य के खास संयोग, उसकी खास व्यक्तिगत निर्वसत, उसकी मात्रा तथा विस्तार पर आधारित होने से दुनिया के किसी भी ग्रन्थ में सभी मनुष्यों को पूर्णरूप से और सर्वोत्तम रीति से अनुकूल होवे वैसी सूचना देना अशक्य होगा। भगवद्गीता में भी वैसे प्रकार की सूचना की आशा नहीं रखी जा सकती, फिर भी कुछ एक सामान्य सूचना जिसे भगवद्गीता में दिया है वह सामान्य रूप में बहुत उपयोगी है। उसकी कीमत तथा उपयोगिता, उसको सिर्फ पढ़ने मात्र से नहीं, अपितु उसको आचरण में लाने के प्रयत्न करने से ही जाना जा सकता हैः–

इन्द्रिय निग्रह कैसे करना उसकी व्यावहारिक कार्यपद्धति, श्रीमद्भगवद्गीता में कछुए का उदाहरण देकर बहुत अच्छी तरह से समझायी गयी हैः–

यदा संहरते चायं कूर्मो अंगानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। २–५८

जैसे कछुआ सब तरफ से अपने अंगों को सिकोड़ लेता है उस प्रकार जब मनुष्य, अभ्यासी, अपनी सर्व इन्द्रियों को इन्द्रियों के अर्थों से सिकोड़ ले तब ही उसकी प्रज्ञा–विवेक बुद्धि स्थिर होती है। इस उदाहरण का सही रहस्य समझने के लिए मनुष्य को पानी में तैरते हुए कछुए का निरीक्षण करने की जरूरत है। स्वाभाविक स्थिति में कछुआ पानी में आनन्द से घूमता है। इस समय उसके पैर गर्दन वगैरह सभी अवयव फैले हुये होते हैं, बाहर से भी इन अवयवों को देखा जा सकता है। कछुए को थोड़ा भी भय लगे कि वह तुरन्त ही अपने अंगों–पैर, गर्दन वगैरह को अपने शरीर में सिकोड़ लेता है। कछुए के अंग नाजुक होते हैं। उसकी पीठ का भाग बहुत सख्त होता है इस प्रकार नाजुक अवयवों को सख्त खोल के नीचे सिकोड़ लेने से कछुआ अपने प्राणों की रक्षा कर सकता है।

मनुष्य में भी कछुए का यह दृष्टांत अनुकरणीय है। जब तक कोई जोखिम नहीं, पतित होने का डर नहीं, लालच के लिए स्थान नहीं तब तक अर्थ–विषयरूपी सागर में मनुष्य चाहे तैरा करे, परन्तु थोड़ी भी विषय की लालच में लपटाने का आभास हो कि तुरन्त भयभीत कछुए की माफिक उसे अपनी सर्व इन्द्रियों की

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वृत्ति को सिकोड़ लेना, उस पर काबू पाना, इन्द्रिय निग्रह करना है। इस प्रकार इन्द्रिय निग्रह क़रने से मनुष्य की विवेक बुद्धि, सार असार की शक्ति का नाश होने से रुकेगा। इस प्रकार रक्षित प्रज्ञा मनुष्य के आध्यात्मिक प्राण बचाकर उसको पतित होने से रोकेगी और उन्नत स्थिति में पहुँचायेगी।

ऊपर बताये अनुसार विगतवार समझ न पड़े वैसे मनुष्यों के लिए एक अँगूठे के नियम के रूप में एक सादी और सरल शिक्षा गीता में दी है:–

वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। २–६१

जिनकी इन्द्रियाँ वश में है–काबू में हैं उनकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित स्थिर है। इन्द्रियों को कैसे वश में रख़ना उस सम्बन्ध में किसी को शंका हो तो उसका भी स्पष्टीकरण आगे किया है–

तस्मादस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। ३–३४

हे महाबाहो–अर्जुन ! जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों को इन्द्रियों के अर्थ में से दूर रख सके–काबू में रखे उसकी प्रज्ञा स्थिर रहती है।

एक इन्द्रिय को दबाना, एक इन्द्रिय का निग्रह करना भी बहुत दुष्कर है तो फिर दसों इन्द्रियों को, सभी इन्द्रियों के समूह को दबाना हो, कछुए के सभी अंगों के संकुचन के माफिक तमाम इन्द्रियों का निग्रह करना हो तो वह किस रीति से करना यह महत्व का प्रश्न उठता है। भगवद्गीता में इस मुश्किल का हल भी दिया गया है:–

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः।। ६–२४

संकल्प विकल्प से उत्पन्न हुए सर्व कामों को–इच्छाओं को–अभिलाषाओं को, सम्पूर्ण रीति से त्यागकर, मन से इन्द्रियों के समूह को–इन्द्रियों की अभिलाषाओं को सब तरह से दबाना। पूरी ट्रेन में बहुत डिब्बे होते हैं परंतु गार्ड केवल एक ही ब्रेक से सभी डिब्बों को रोक सकता है। इन्द्रिय बहुत होने से भी केवल एक मन से ही उसे दबाया जा सकता है। उसके तमाम इन्द्रियों का निग्रह कर सकता है।

इन्द्रियों के निग्रह करने की इच्छा रखने वाले के लिए दो मुख्य पद्धति है एक पद्धति में विषयों को इन्द्रिय से दूर किया जाता है। चोरी करने की इच्छा वाले को द्रव्य के पास से–पैसे की तिजोरी के पास से दूर कर कारागार में रखने जैसी यह पद्धति है। लालच दूर करने से मनुष्य लालच में लिपटने से बचता है। इतनी हद तक इस पद्धति का फायदा है, इस पद्धति के सम्बन्ध में भगवदगीता में कहा है कि :–

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।। २–६८

विषयों में से–अर्थों में से जिसकी इन्द्रियाँ निग्रहित हुई हैं, दूर रखी गई हैं उसकी प्रज्ञा भी स्थिर रहती है।

इस पद्धति में लाभ है, परंतु वह थोड़ी देर टिकने वाला– क्षणिक है। जहाँ तक इन्द्रियों और अर्थों का सम्बन्ध न हो वहाँ तक तो ठीक परन्तु यदि सम्बन्ध हो जाये तो इस पद्धति पर प्रशिक्षित अभ्यासी अडिग नहीं रह सकेगा। दूर की हुई लालच सामने आने से अभ्यासी के पतित होने के लालच में लिपटने के भय फिर से खड़े हो जाते हैं।

इस प्रकार होने से, ऐसे प्रकार के इन्द्रिय निग्रह को गीता में दुत्कारा गया है–निम्न प्रकार का गिना गया है:–

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ।। ३–६

विषयों में से कर्मेन्द्रियों का निग्रह करने के बाद यदि कोई मनुष्य मन से इन्द्रियों का स्मरण करता है तो ऐसे व्यक्ति को विमूढ़, मिथ्याचारी और ढोंगी कहा गया है।

इन्द्रिय निग्रह की दूसरी और उत्तम पद्धति तो मन से इन्द्रियों को वश में करने की है। विषय इन्द्रियों के समीप होने के बावजूद उस तरफ आकर्षित न हों वही उत्तम प्रकार का इन्द्रिय निग्रह है। इस सम्बन्ध में कहा है कि :–

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ।। ३–७

हे अर्जुन ! जो अभ्यासी–जो मनुष्य कर्मेन्द्रियों को मन से नियम में रख, वश में रख, आसक्ति के बिना, कर्मेन्द्रियों से कर्मयोग करें वही विशेष है, वही उत्तम है।

ऊंपर के श्लोक पर से पता चलेगा कि इन्द्रिय–निग्रह करने में मन बहुत महत्व का साधन है। विषयों को दूर करके किए हुए इन्द्रिय–निग्रह के बदले मन से किया हुआ इन्द्रिय निग्रह बहुत ही उत्तम है। पहले में कुछ एक संयोग में च्युत (गिरने का) होने का जो भय रहता है वह दूसरे में नहीं रहता है। इन्द्रिय निग्रह में मन महत्व का तत्व होने से, मन क्या है उसका प्रकार कैसा है किन संयोगों में और कैसे सिद्धान्तों का अनुसरण करके मन कार्य करता है इस विषय पर विचार जरूरी होने से इसके बाद के प्रकरण में विचार किया जाएगा।

नोट– विशेष और तुलनात्मक अभ्यास के लिये इसी लेख का गीताभ्यास ज्ञानयोग प्रकरण ३ देखें। **'श्रद्धावान और संयतेन्द्रिय'**।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकरण—७

मन, मनोविकास और मनोनिग्रह

मनुष्य के संघटन में उपयोग में लाये हुए सभी, तमाम तत्वों में मन तत्व का बहुत महत्व है। मन को एक तत्व ;म्समउमदजद्ध मानें या सृष्टि के पदार्थों को ग्रहण करने का शरीर का साधन इन्द्रिय माने, उससे मूल रूप में बहुत फर्क नहीं पड़ता। ऊपर की दो दृष्टि में से जिस भी दृष्टि से देखने से मन का महत्व किसी प्रकार से कम नहीं होता है।

इन्द्रियों से ग्रहण किये हुए ज्ञान पर विचार करना मन का मुख्य काम है। मुख से खाया हुआ अन्न जब तक होजरी में जाकर पच नहीं जाता तब तक अनाज खाने से मनुष्य में जो शक्ति आनी चाहिए वह नहीं आती। मन का भी उसी तरह है। इन्द्रिय से ग्रहण किये हुए विषयों पर जब तक मन, संकल्प—विकल्प विचार करता नहीं है तब तक उस पदार्थ का सही ज्ञान नहीं होता है।

इस दुनियाँ में कोई भी वस्तु—पदार्थ स्वभाव से (By it Nature) सुखदायक या दुःखदायक नहीं है परंतु उस वस्तु के संबंध में मन जैसा और जितना विचार करता है उतने हद तक ही, उस विचार करने वाले व्यक्ति को सुख या दुःख होता है। अफीम जहरीली चीज है। वह खाने से सामान्य मनुष्य के प्राण जाते हैं फिर भी व्यसनी मनुष्य को वह सुखदायक लगता है। व्यसनी व्यक्ति उसे अपने सुख का साधन मानता है।

मन की कितनी अद्‌भुत शक्ति है उसके लिये भगवद्‌गीता से अधिक (Effective) सचोट उदाहरण शायद ही कहीं मिले। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के पहले अध्याय में भगवान व्यास ने युद्धभूमि का वर्णन किया है। लड़ने को तैयार दोनों पक्ष युद्धभूमि में आमने—सामने खड़े हैं। ऐसे समय में सेनानायक का गुस्सा और जोश किस प्रकार का होता है उसका प्रत्येक व्यक्ति ख्याल कर सकता है। पहले अध्याय की शुरुआत में और विशेष रूप में २१—२३ के श्लोक में वर्णित अर्जुन की स्थिति से समझ में आता है कि अर्जुन में भी वैसा उत्साह प्रकटित हो रहा था। अर्जुन का मन लड़ने के लिये—विजयी होने को, कौरवों का संहार करने को तत्पर हो रहा था।

अर्जुन का रथ भगवान श्रीकृष्ण आगे करते हैं और अर्जुन अपने आचार्यों को, सगे सम्बन्धियों को, कौरवों को देखता है, देखते ही उसकी मानसिक स्थिति में बदलाव होता है। यह बदलाव, मानसिक बदलाव होने से अर्जुन की स्थिति कितनी बदल जाती है उसका वर्णन पहले अध्याय के आखिरी श्लोकों में दिया है। अर्जुन बिल्कुल विषादग्रस्त, शोकातुर हो जाता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

युद्ध के प्रति अर्जुन का रुख पहले कैसा था ? युद्ध अर्जुन के लिये सुख का साधन था। इस युद्ध से दुष्ट कौरवों का संहार करके अपना राज्य वापस पाने की अर्जुन आशा रखते थे। इस युद्ध से सती द्रौपदी पर हुए घोर अपमान और अन्याय का बदला लेना था। युद्ध के प्रति जब तक अर्जुन का ऐसा रुख था तब तक युद्ध उसके लिए आनन्ददायक, सुख का साधन था। पहले अध्याय में वर्णित शंखनाद और सिंहनाद अर्जुन के योद्धाओं के आंतरिक आनन्द की बाह्य प्रतिध्वनि थी। वह भी एक प्रकार की मन की स्थिति, एक दृष्टिबिन्दु था।

इस स्थिति को बदलने के लिए बाह्य स्थिति में बदलाव लाने की आवश्यकता नहीं थी। अर्जुन की यह स्थिति बदली, तब अर्जुन की विजय की अभिलाषा को, पराजय की निराशा में बदल दे वैसा एक भी प्रसंग युद्धभूमि पर नहीं हुआ था। श्रीकृष्ण उसके सारथी ने, उसके योद्धाओं ने, सरदारों ने या तो सिपाहियों ने उसे दगा या धोखा नहीं दिया था। जो कुछ बदलाव था वह अर्जुन के मनोराज्य में ही था। हजारों योद्धाओं तथा उनके हथियारों से अर्जुन जैसे महावीर के लड़ने के निश्चय में बदलाव करवाना तो अशक्य था। युद्धभूमि पर प्राण गँवाकर भी पीठ दिखाये वैसे अर्जुन नहीं थे। एक महान योद्धा के मनोभावना में बदलाव आने से जैसे छननी में से पानी निकल जाता है वैसे ही अर्जुन के शरीर में से युद्ध का उत्साह, क्षत्रिय का तेज, महान योद्धा का अडिग धैर्य वह तमाम चले गये। एक डरपोक और हताश हुए मनुष्य की माफिक थोड़े समय पहले का सिंह जैसा अर्जुन वह मेंढे से भी गरीब और निर्बल हो गया। राज्य पाने की महत्वाकांक्षा को उसने तिलांजलि दे दी। पेट भरने के लिये एक भिक्षुक के भिक्षापात्र ही उसके योग्य है वैसा वह मानने लगा। अर्जुन की मानसिक स्थिति में आये बदलाव युद्ध की तरफ उसकी सुख बुद्धि को बदल कर उसके प्रति दुःख बुद्धि की उत्पत्ति वही इस बदलाव का कारण था।

एक ही वस्तु के प्रति, युद्ध के प्रति बाह्य संयोगों में सहज भी बदलाव के बिना, सुख की भावना दारुण दुःख में, केवल मानसिक रुख मनोवृत्ति से बदल जाती है उसका ऊपर दर्शित उदाहरण है। भगवद्गीता में इसके विपरीत उदाहरण का दुःख, में से केवल मनोभाव बदलने से सुखी होने का भी एक अनुपम उदाहरण/दृष्टान्त है। श्रीकृष्ण भगवान ने विषादग्रस्त अर्जुन को बोध दिया– गीता की शिक्षा दी और वैसा करने से केवल उसकी मनोभावना में और एक बदलाव को लाये। इस बदलाव से अर्जुन का विषाद दूर हुआ। १८वें अध्याय के अन्त में उसने स्वयं अपनी स्थिति का वर्णन किया है। उसके अनुसार वे युद्ध के लिए तैयार हुए–युद्ध के प्रति उनकी दारुण दुःख की भावना से निवृत्ति भी मिली और सुख की भावना उत्पन्न हुई।

इससे स्पष्ट है कि सुख या दुःख वह कोई एक चीज या वस्तुस्थिति में नहीं है परंतु मनुष्य के मन में मनोभावों में ही है। प्रत्येक मनुष्य को कुरुक्षेत्र में खड़े

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

रहने की जरूरत नहीं पड़ती, परंतु प्रत्येक मनुष्य के जीवन में अर्जुन के जैसे बहुत प्रसंग आते हैं। किसी एक वस्तु से कभी उसे सुख होता है और उसी से कभी बहुत दुःख होता है। अर्जुन की माफिक सामान्य मनुष्य के सुख–दुःख का आधार किसी चीज या वस्तु पर नहीं है, परंतु उसके मन पर उसके मनोभावों पर है। इस कारण से मनुष्य का मन कैसा है, किस तरह से वह कार्य करता है, एक–एक से बिल्कुल विरुद्ध भावों को वह क्यों धारण करता है, इस विषय पर विचार करने की जरूरत है। इस प्रकार के परस्पर विरुद्ध भावों का आना वह एक प्रकार से आघात लगने जैसा है। ऐसे यकायक आते आघात से मनुष्य शरीर को बचाया जा सकता है या नहीं और यदि बचाया जा सकता है तो वह किस प्रकार इस प्रश्न पर विचार करने की प्रत्येक मनुष्य को जरूरत है।

मनुष्य के सुख दुःख की भावनाओं के अनुभव में, उसकी शारीरिक शान्ति में और आरोग्य में तथा उसकी आध्यात्मिक उन्नति में मन कितने महत्व की भूमिका अदा करता है उसका थोड़ा ख्याल ऊपर के उदाहरण से हुआ होगा। मन की इतनी महत्ता होने के कारण अपने धर्मशास्त्रों में, उपनिषदों वगैरह में मन पर काबू पाने की, मनोनिग्रह करने की बहुत ही अहम् परंतु बहुत सादी और उत्तम पद्धतियाँ बताई गई हैं। योग दर्शन में चित्त–चित्तवृत्ति, मन, मन की भावनाओं के विषय में पद्धति अनुसार और बहुत बारीकी से विचार करने में आया है। भगवद्गीता भी हिन्दू धर्म का बहुत महत्व का ग्रन्थ होने से उसमें भी मन, मनोविकास, मनोनिग्रह पर विचार करने में आया है। उसके मनन से अभ्यासी की उन्नति का वेग बहुत बढ़ जाता है। इसके श्लोक के पढ़ने मात्र से नहीं परंतु उसके विचार से उसके मनन से, उसके आचरण से मनुष्य बहुत उच्च कक्षा तक पहुँच सकता है।

मनोनिग्रह के सम्बन्ध में भगवद्गीता में दी हुई सूचनाओं में आडम्बर से उपयोग अधिक है। अपने धर्मग्रन्थों का ऐसी दृष्टि से शायद ही निरीक्षण किया गया है। परंतु जब तक इस दृष्टि से भगवद्गीता का अध्ययन नहीं होगा तब तक केवल उसके रटे हुए पाठ से अभ्यासी की अधिक उन्नति होने की सम्भावना बहुत कम है। भगवद्गीता में मन तथा मनोनिग्रह के श्लोक बहुत अलग–अलग जगह पर हैं, अलग–अलग प्रसंगों पर अर्जुन की अलग–अलग शंकाओं के समाधान हेतु कहे गये हैं। इस कारण से सामान्य अभ्यासी को उसको समन्वित करना मुश्किल पड़ता है। इस कारण से इन श्लोकों की अभ्यास में उपयोगिता के अनुसार क्रमवार लेकर उसके पीछे छिपे रहस्य को स्पष्ट करने का प्रयत्न इस प्रकरण में किया है। यह विषय इतना तो गहन है कि इस प्रकरण में दी हुई सूचना तो अभ्यासी के लिए इस सम्बन्ध की बालपोथी के समान ही है परन्तु उतनी सूचना भी बराबर समझकर उसको अमल में लाने से उन्नति मार्ग में अभ्यासी की बहुत प्रगति होगी। मन बहुत महत्व का तत्व है यह हिन्दूधर्म के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
शास्त्रकारों ने प्रारम्भ से अच्छी तरह से समझा था। इस कारण से श्रीमद्भगवद्गीता जैसे छोटे से ग्रन्थ में भी इस विषय में बहुत महत्व की और व्यावहारिक सूचना दी है।

हिन्दू धर्म शास्त्रकार जो प्रारम्भ से ही समझे थे वह अब पश्चिम के तत्वेत्ता भी समझने लगे हैं। मन (Psyche) क्या है यह अब भी पश्चिम ने सही प्रकार से समझा नहीं है परतु मन महत्व का तत्व है और इस कारण से उसका पद्धति अनुसार अवलोकन होना चाहिए इस बात पर तो वे लोग भी सहमत हैं। ऐसे मन के अवलोकन पर से मानस शास्त्र नाम की विद्या–विज्ञान–ज्ञान की एक शाखा निश्चित करने में आयी है। मानस शास्त्र के अभ्यास को उच्च शिक्षण में बहुत ऊँचा स्थान दिया गया है। जैसे–जैसे मानस शास्त्र का अभ्यास बढ़ता जाता है वैसे–वैसे उसकी महान महत्ता स्वीकारी जाती है। शरीर का आधार मन पर है (Physiological Psychology) इसलिए मनोनिग्रह से कितनी बीमारियाँ भी ठीक हो सकती हैं ऐसा अब मानने में आता है। शिशु का शिक्षण भी अब बाल मानसशास्त्रों के सिद्धान्तों पर अवलम्बित कर निश्चित किया जाता है। उद्योग व्यापार में भी (Industrial Psychology) मानस शास्त्र का महत्त्व स्वीकार किया गया है। समाज के व्यवहार में भी मानस शास्त्र के महत्व को स्वीकार किया गया है। संक्षिप्त में अगर कहें तो मन और जीव का बहुत गहरा संबंध होने से जीवित प्राणियों के साथ काम लेने से पहले मनुष्य तो क्या प्राणियों के भी मानसशास्त्र का पता लगाने के प्रयत्न जारी हैं।

पश्चिम के देशों में कुछ सदी से ही मन की महत्ता पर ध्यान गया है परतु थोड़े समय में ही मानसशास्त्र के बहुत विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ उन देशों में तैयार हुए हैं। हिन्द में इस विषय पर प्रारम्भ में ही बहुत ध्यान दिया गया था परंतु बाद में इस विषय को समझने जितनी भी अपनी शक्ति नहीं रहने से हिन्दूधर्मशास्त्र में यह ज्ञान कहीं–कहीं अलग–अलग जगह पर मिलता है। पश्चिम के देशों में उपरोक्तानुसार मानसशास्त्र के सम्बन्ध में विशिष्टता है परंतु मानसशास्त्र की हिन्दू धर्मग्रन्थों में दी हुई सूचना सादी सरल और अनुभवसिद्ध है।

हिन्दू धर्मग्रन्थों में मानसशास्त्र की जो सूचनाएं हैं वह एक और दृष्टि से भी बहुत महत्व की हैं। पश्चिम का मानसशास्त्र मुख्य रूप से सामान्य मनुष्य का मन कैसे कार्य करता है उसके सिद्धान्तों को निश्चित करता है–किस प्रकार से किस पद्धति से–कैसे आचार और व्यवहार से मनुष्य का मन उच्चस्थिति पर पहुँचाया जा सके इस विषय पर पश्चिम के मानसशास्त्र में बहुत विचार नहीं है। हिन्दुस्तान के मानसशास्त्र में पश्चिम के जितनी बारीकी और विद्वत्ता तथा उतना सूक्ष्म विश्लेषण तो नहीं है परंतु किस प्रकार के आचार से सामान्य मनुष्य का मन उच्च प्रकार का बनाया जा सकता है वैसी क्रियाएँ बहुत सादी, सरल और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

असरकारक रीति से मनुष्य के दैनिक जीवन व्यवहार में समाविष्ट कर दी है। हिन्दूधर्म की यह विशेषता बहुत कम धर्मो में है। इसके उपरांत जिन ऋषि-मुनियों ने अपना दैनिक आचार निश्चित किया वे लोग मानसशास्त्र के गहन अभ्यासी थे, यह हकीकत उनके दिये हुए नियमों के अवलोकन पर से ही पता चलती है। पश्चिम के मानसशास्त्र के महान और अग्रगण्य लेखकों के ग्रन्थ पढ़ने के बाद, हिन्दूधर्मशास्त्र में दी हुई और सभी अलग-अलग जगहों से प्राप्त मानसशास्त्र सन्बन्ध की सूचनाओं पर विचार करें तो पता चलता है कि किसी समय में यह शास्त्र हिन्दुस्तान में बहुत अच्छी तरह से समझा गया होगा। पश्चिम का मानस शास्त्र आजकल जितना आगे बढ़ा हुआ है उससे हिन्दू धर्मशास्त्र का मानसशास्त्र कहीं अधिक आगे बढ़ा हुआ होना ही चाहिए।

मनुष्य के विकास में मन बहुत महत्व की भूमिका निभाता है इतना ही नहीं परंतु मनोनिग्रह बहुत मुश्किल कार्य है। इस विषय में गीता में भी अर्जुन ने कहा है।अर्जुन बहुत प्रशिक्षित और सुशिक्षित पुरुष थे। साक्षात श्रीकृष्ण जैसे महापुरूष के प्रत्यक्ष शिक्षण का उसे अमूल्य लाभ था। यह होने पर भी मनोनिग्रह की अपनी मुश्किलात अर्जुन नीचे अनुसार बताते हैं:-

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।। ६-३४

हे कृष्ण ! मन बहुत चचल है। मन चंचल-जल्दी से पकड़ में नहीं आये वैसा होने के उपरांत वह अविवेकी, उतावला, उपद्रवी और उत्पाती है। बलवान या निर्बल मनुष्य के वश में न हो सके वैसा, और दृढ़-इच्छित दिशा में मोड़ने में मुश्किल पड़े वैसा कठिन है। ऐसे उत्पाती बलिष्ठ और मजबूत मन का निग्रह करना पवन के निग्रह करना जितना मुश्किल है। इस श्लोक में मनोनिग्रह की मुश्किल दर्शाने के उपरांत मन के स्वरूप का वर्णन भी किया है।

मनोनिग्रह यानी मन को काबू में रखना-मनोनिग्रह यानी मनोभावनाओं का यकायक रूपान्तर न हो जाये। मनोभावनाओं में यकायक बदलाव होने से मनुष्य को क्या नुकसान होता है वह समझाने के लिए अर्जुन का दृष्टांत ऊपर दिया गया है। मनुष्य के लिए मनोनिग्रह एक प्रकार का प्रतिरोधक है, जैसे एक रेल का डिब्बा दूसरे के साथ जोर से टकराव में आये तो उसके टूट जाने का डर रहता है उसी प्रकार से मनुष्य के साथ मन के साथ बाहर के विषयों का संग हो-जोर से टकराव हो तो मन को आघात पहुँचता है। मनोनिग्रह यानी इस प्रकार का आघात न पहुँचे वैसा मन का प्रशिक्षण। दुनिया की अच्छी या बुरी घटनाओं से मनुष्य के मन को यकायक आघात लगकर वह अर्जुन की माफिक शक्तिहीन या सुन्न न हो जाए उसके लिए मन की साम्यता को बढ़ाने की जरूरत है। मन की सन्तुलन को बढ़ाने की जरूरत है। ऐसा धक्का लगने पर मन को आघात नहीं लगने देकर उसे वापस खींच लेना-वही मन पर काबू-वही मनोनिग्रह है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मन को काबू में रखने के लिए–मनोनिग्रह करने के लिए मनुष्य को क्या करना चाहिए ? मनोनिग्रह कैसे होता है, मनोनिग्रह करने की कौन सी रीति है, यह जानने की अर्जुन को– प्रत्येक मनुष्य को जरूरत है। इस कारण से मनोनिग्रह की सबसे अच्छी रीति कौन–सी है इस विषय में अर्जुन श्रीकृष्ण से पूछते हैं जिसके जवाब में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि :–

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।। ६–३५

वास्तव में अर्जुन, मन बहुत ही चंचल है उसके निग्रह करने का कार्य बहुत कठिन है सही, परंतु अभ्यास और वैराग्य से उसका निग्रह किया जा सकता है। अभ्यास और वैराग्य ये दो मन को वश में करने के साधन हैं। इन दोनों का अर्थ प्रारम्भ में ही ठीक तरह से समझने की जरूरत है।

'अभ्यास' यानी पुस्तकों का पढ़ना नहीं। यद्यपि अभ्यास शुरु करने से पहले कुछ पुस्तकों का पढ़ना जरूरी है परंतु पढ़ना ही अभ्यास नहीं है। अभ्यास यानी एक ही कर्म को बार–बार करना जिससे वह कार्य करने में किसी विशेष प्रयत्न की जरूरत न पड़े परंतु वह कार्य करने का अपना स्वभाव बन जाएः–

यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।। ६–२६

जब–जब जिस–जिस कारण से जिस–जिस जगह से अस्थिर और चंचल मन बाहर जाता है–मुख्य विषय पर से दूसरे विषयों का विचार करने लगता है–निश्चित किए हुए रास्ते पर से दूसरे टेढ़े रास्ते पर जाता है तब–तब उसे आत्मा से, सार–असार का विचार करने की शक्ति से नियम में लाना।

प्रत्येक मनुष्य यदि थोड़ा भी आत्मनिरीक्षण करेंगे तो देखेंगे कि वे स्वयं जब कोई एक विषय पर विचार करने लगते हैं कि तुरंत ही उस विषय के विरुद्ध के अथवा दूसरे अन्य विचार उसके मन में उत्पन्न होते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो मनरूपी घोड़ा जब तक स्वच्छन्दी होकर अपनी इच्छानुसार चलता है तब तक उसके चलाने वाले मालिक को, अभ्यासी को वह कितना उत्पाती है उसकी सही खबर भी नहीं पड़ती। मन को जब एक दिशा में एक विषय के विचार करने से रोका जाए तभी उसके बल का, उत्पाती स्वभाव का उसकी चंचलता का और अस्थिर स्वभाव का ख्याल आता है। अभ्यासी के निश्चित किए हुए विषय को एक तरफ रहने देकर दूसरे विषय का विचार करना शुरु करता है। जैसे होशियार गाड़ी चालक अपने निश्चित किए हुए मार्ग से दूसरे रास्ते जाते हुए घोड़े को लगाम से रोककर निश्चित मार्ग पर ही ले जाते हैं उसी प्रकार अभ्यासी को भी मन जरा भी निश्चित किए हुए विषय पर से अलग विषय पर जाए तो तरंत ही उसे वैसा करने से रोकना होगा। इस प्रकार बार–बार टेढ़े रास्ते जाने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वाले मन को वहाँ जाने से रोककर, निश्चित किए हुए रास्ते पर ले जाना उसका नाम अभ्यास है। जैसे होशियार गाड़ी चालक बार–बार टेढ़े रास्ते जाने वाले स्वच्छन्दी घोड़े की इस बुरी आदत को टेढ़े रास्ते जाते समय हर बार रोकर भुलवा देता है उसी प्रकार होशियार अभ्यासी चंचल तथा अस्थिर मन को टेढ़े रास्ते पर जाने पर बार–बार रोककर, अभ्यास से मन को वश में करते हैं। मनोनिग्रह जैसा मुश्किल कार्य भी आसानी से कर सकते हैं।

मन जब–जब निश्चित किए हुए रास्ते से, विषय पर से टेढ़े रास्ते जाता है तब वह किस रास्ते–किस विषय पर जाता है उसके सूक्ष्म निरीक्षण की, आत्मनिरीक्षण की जरूरत है। जिस विषय पर मन टेढ़े रास्ते जाता है उस विषय के लिए अभ्यासी में एक प्रकार का राग होना चाहिए। मन का स्वभाव ही ऐसा है कि जिस विषय के लिए उसे राग होता है–जिस विषय के लिए उसकी इच्छा होती है–जिस विषय का पहले उसने अनुभव किया होता है–जिस विषय से पहले उसे सुख या सुखाभास हुआ हो तो वह उस विषय की तरफ ही जाता है। बिल्कुल अज्ञात और बिल्कुल अनुभव न किए हुए विषय की तरफ स्वाभाविक रूप में मन यकायक आकर्षित नहीं होता है। मन की यह विशिष्टता भगवान व्यास के ख्याल से बाहर नहीं थी इस कारण से ऐसे प्रसंगों पर अभ्यासी को क्या करना चाहिए उस विषय में नीचे अनुसार सूचना दी गयी है:–

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः।। ६–२४

संकल्प से उत्पन्न होने वाली सभी कामनाओं–इच्छाओं–तृष्णाओं का सम्पूर्ण रीति से बिल्कुल जरा भी बाकी न रहे इस तरीके से त्याग करना। इस प्रकार तमाम तृष्णा के त्याग करने के बाद मन से, इन्द्रियग्राम–इन्द्रिय के समूह को सब तरह से नियम में–काबू में लाना। ऊपर के श्लोक से स्पष्ट है कि कामनाओं का त्याग करने से मन का उस तरफ आकर्षित होना अपने आप बन्द हो जाता है। मन को विषयों की तरफ से आकर्षित होने से रोकना ही विराग–वैराग्य है। इस प्रकार के वैराग्य से और अभ्यास से मन को वश में किया जा सकता है।

मन को टेढ़े रास्ते ले जाने में संकल्प बहुत महत्व की भूमिका अदा करता है। वह ऊपर के श्लोक से स्पष्ट है। यह सिद्धान्त इतना महत्व का है कि भगवद्गीता में दूसरी जगह पर भी कहा है :–

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ।। ६–२

हे पाण्डव, जिसको सन्यास कहते हैं वही योग है। कर्म के फलों का– फल की इच्छा का–संकल्प से उत्पन्न होने वाले काम का सन्यास–त्याग वही कर्मयोग है; संकल्प का सन्यास, इच्छा का त्याग किए बिना कोई भी अभ्यासी कभी भी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

योगी–कर्मयोगी हो नहीं सकता। योगी–कर्मयोगी होने की इच्छा रखने वाले को संकल्पों–संकल्प से उत्पन्न होने वाली कामना का त्याग करना पहला सोपान है।

जैसे लौह चुम्बक लोहे के टुकड़े को अपनी तरफ खींचता है उसी प्रकार इच्छा–तृष्णा–वासना–संकल्पजन्य काम, मन को सीधे रास्ते न जाने देकर अपनी तरफ खींचते हैं। इस प्रकार होने से मन की साम्यावस्था का–शान्ति का भंग होता है। मन की साम्यावस्था की इच्छा करने वाले को संकल्पजन्य काम का शुरु से ही त्याग करने की आदत डालनी चाहिए।

शरीर का मन पर असर होता है और मन की–मानसिक स्थिति का शरीर पर असर होता है। शरीर और मन का एक दूसरे पर असर होता है यह मानसशास्त्र का महत्व का सिद्धान्त है। इस महत्व के सिद्धान्त पर भगवद्गीता में बहुत जोर दिया है। शुरुआत के अभ्यासी के लिए यह सूचनाएँ बहुत महत्व की हैः–

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ।। ६–११
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ।। ६–१२

पवित्र देश में–स्थान में–जगह पर बहुत ऊँचा या बहुत नीचा नहीं वैसा, दर्भ का मृगचर्म या कपड़े का स्थिर आसन बनवाना। शुरुआत के अभ्यासी का मन आसपास के वातावरण पर काबू रख नहीं सकता इस कारण से आसपास का वातावरण भी ऐसा होना चाहिए कि शुरुआत के अभ्यासी को वह मददरूप बने इसी कारण से ही पवित्र स्थान और सुखदायक आसन की जरूरत है।

इस प्रकार देश तथा आसन की व्यवस्था करने के बाद क्या करना उसकी सूचना बाद के श्लोक में दी है। ऐसे आसन पर बैठकर मन को एकाग्र करना–मन से एक ही विषय का विचार करना–मन को अपनी मर्जी से भटकने न देकर–मन को एक ही विषय पर लगाना। मन को एकाग्र करने से पहले चित्त का संकल्प–विकल्प का व्यापार–क्रिया तथा इन्द्रिय की क्रियाओं का निग्रह करना। इन्द्रिय तथा चित्त के निग्रह के बिना मन एकाग्र नहीं हो सकता।

मन को एकाग्र करना यानि मन को इधर–उधर भटकने न देना–मन को एकाग्र करना यानी मन से एक विषय का चिन्तन करना। कौन से एक विषय का चिन्तन करना यह विचारणीय है। सामान्य बुद्धि से सोचने पर भी पता चलता है कि चिन्तन करने का विषय जितना बने उतना उच्च होना चाहिए। मनुष्य जैसा विचार करता है वैसा वह हो जाता है। इस सिद्धान्त को लक्ष्य में रखकर प्रत्येक ध्यान का ध्येय रूप निश्चित होता है। भगवद्गीता में भी इस सिद्धान्त को ध्यान में रखकर हो सके उतना उच्च ध्येय अभ्यासी के समक्ष प्रस्तुत किया है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सभी मनुष्य एक ही प्रकृति के नहीं होते हैं। सभी मनुष्यों का ध्येय (Ideal) एक समान नहीं होता है। भिन्न–भिन्न प्रकृति के मनुष्यों को अनुकूल हो इसलिए गीता में अलग–अलग ध्येय बताये हैं। महत्व के ध्येय निम्नलिखित हैं:–

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ।। ६–१४

आत्मा को बिल्कुल शान्त कर भय को त्याग कर निर्भय होकर ब्रह्मचारी वृत्ति में दृढ रहकर, मन को संयम करके, मेरे में–परमेश्वर में चित्त को लगा, मैं परमेश्वर ही गन्तव्य हूँ–इष्ट वस्तु हूँ ऐसा विचार करके मन को एकाग्र करना। इस श्लोक में मन को एकाग्र करने की पद्धति भी है और मन को परमेश्वर में एकाग्र करने का सिद्धान्त भी दिया है। ब्रह्मचारी व्रत,वीर्य रक्षा की भी इस श्लोक में आवश्यकता दर्शित की है। एकाग्रचित्त होने की इच्छा करने वाले को सुदृढ़ शरीर दृढ मनोबल की जरूरत है। ब्रह्मचर्य–वीर्य, वायु–प्राण तथा मन को एक–दूसरे के साथ बहुत निकट का सम्बन्ध है। वीर्य तथा वायु के निग्रह करने से मनोनिग्रह अपने आप होता है। इस कारण से ब्रह्मचर्य की जरूरत प्रत्येक धर्म में देखने में आयी है।

प्रभु की भावना प्रत्येक मनुष्य की उच्च से उच्च भावना है। इसी कारण से मन को, चित्त को, प्रभु में एकाग्र करने की भगवद्गीता में जगह जगह सूचना दी है:–

सर्वद्वाराणि संयम्य मनोहृदि निरुध्य च ।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितौ योगधारणाम् ।। ८–१२
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ।। ८–१३

सभी द्वार का–इन्द्रिय का संयम कर–मन को हृदय में निरोध कर मन को भटकने से रोककर प्राण को योगधारणा से मस्तक में स्थापित कर समाधि लगाकर ब्रह्मरूप एकाक्षर ओम शब्द का जप करते–करते मेरा–परमात्मा का स्मरण करते–करते जो मनुष्य मरता है, देह छोड़ता है वह परमगति को–उच्च स्थान को पाता है। इस श्लोक में भी मन को ईश्वर परायण–ईश्वर में एकाग्र करने को कहा है। इन्द्रिय निग्रह रूप दूसरी क्रियाएँ मन को एकाग्र करने में सहायक होती हैं। ईश्वर का ध्यान करने वाला ईश्वर जैसा होता है वह सिद्धान्त भी दोहराया है। इसी मतलब का दूसरा श्लोक नीचे के अनुसार है:–

प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ।। ८–१०

अचल मन से दृढ़ भक्ति और श्रद्धा से मरते समय परमात्मा का ध्यान करने वाले व्यक्ति दिव्य पुरुष को प्राप्त होते हैं। प्राण और मन का सम्बन्ध कैसा है वह

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऊपर बताया है जिसके कारण योगबल से प्राण को दो भौंहों के वीच में स्थिर करने की सूचना दी है।

विज्ञान की दृष्टि से देखने से भी ऊपर की सूचना बहुत ही व्यावहारिक है परंतु प्रत्येक मनुष्य को वैज्ञानिक दृष्टि से इस विषय पर विचारने का समय तथा बुद्धि बल नहीं हो सकता। ऐसे मनुष्यों को भी विज्ञान न जानते हुए भी उन्हें विज्ञान की शोध का लाभ मिले इसलिए वैसे अभ्यासियों को सादी और सरल सूचना दी है:–

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि, मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः।। १२–८

अर्जुन! अभ्यासी तू तेरा मन मुझमें–श्रीकृष्ण में, परमेश्वर में एकाग्र कर तेरी बुद्धि को मुझमें पिरो। इस प्रकार करने से अभ्यासी मुझे ही परमेश्वर को ही पायेगा उसमें संदेह नहीं है। मन में उच्च भावना रखने से मन परमात्मा में पिरोने से मनुष्य अभ्यासी परमात्मा जितनी उच्च पदवी को पाता है इस महान सत्य को इस श्लोक में भगवान व्यास ने संग्रहीत किया है।

मन की एक दूसरी भी विशिष्टता है। मन को कुछ आधार कुछ अवलम्बन, कुछ विचार करने के विषय की जरूरत है। सामान्य मनुष्य का मन किसी भी प्रकार के आलम्बन के बगैर रह नहीं सकता। मन की उन्नति तथा अवनति का आधार उसके ऊँचे या नीचे आलम्बन पर है। ऊपर के श्लोक से स्पष्ट है कि मनुष्य के–अभ्यासी के मन को ऊँचे से ऊँचा आलम्बन भगवद्गीता में दिंया गया है। मनोविकास की यह पद्धति बहुत सादी, सरल फिर भी बहुत सचोट उच्च आलम्बन पर मन को लगाने से मनुष्य को कोई द्रव्य व्यय करने की जरूरत नहीं है और महान कष्ट उठाने की भी जरूरत नहीं है। केवल उच्च भावना से ही मनुष्य का मन बहुत उच्चस्थिति पर पहुँच सकता है। इस पद्धति से मनुष्य का मनोविकास हो सकता है। मन को हल्के विचारों में से रोककर उच्च विचारों में जोड़ना इस पद्धति का मुख्य स्तम्भ है।

अभ्यासी के लिए यह महत्व की सूचना है, परंतु इस सूचना के अनुसार अमल करता हुआ अभ्यासी कैसे जाने कि उसका मन कब एकाग्र हुआ है। अभ्यासी को अपनी परीक्षा करने का साधन मिले वैसी व्यवस्था भी श्रीमद्भगवद्गीता में रखी है:–

यथो दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः।। ६–१९

निर्वात–पवन बगैर के स्थान पर दिये की ज्योति जैसे स्थिर रहती है, उसी तरह से योगी का चित्त–मन स्थिर रहता है। दिये का यह उदाहरण बहुत मननीय है। दिये की ज्योति पवन के झोकों से अस्थिर होती है और कभी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बिल्कुल बुझ भी जाती है उसी प्रकार मन की स्थिरता संकल्प से,संकल्पजन्य कामना, वासना से अस्थिर होती है, उसका प्रकाश कम होता है और कभी बिल्कुल बुझ भी जाता है। उपरोक्तानुसार प्रशिक्षित मन–निर्वात दीप की माफिक स्थिर किया हुआ मन–साम्यावस्था में सुदृढ़ हुआ मन कितना उपयोगी है इस सम्बंध में कहा है कि :–

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः ।। ५–१६

इस लोक में, इस दुनिया में जिस मनुष्य का मन स्थिर होता है वही प्रत्येक वस्तु पर जय पा सकता है। निर्दोष और महान ब्रह्म तत्व ही सम–स्थिर है। इस कारण से जो अभ्यासी साम्य मन वाले,मन की साम्य स्थिरता वाले हैं, वे यहाँ भी इस लोक में भी ब्रह्म में स्थित हुए–बहुत उच्चस्थिति को प्राप्त हैं।

इन्द्रिय द्वारा पड़े हुए प्रभाव को–इन्द्रिय द्वारा हुए ज्ञान पर मन संकल्प–विकल्प करता है परंतु उस पर सार–असार का परिमाण निश्चित कर उस पर अंतिम निर्णय देना बुद्धि का काम है। बुद्धि यानी क्या ? उसमें क्या–क्या दोष छिपे हैं तथा उस बुद्धि की शुद्धि किस तरीके से होती है उस पर इसके बाद के प्रकरण में विचार करेंगे।

❑

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकरण–८

बुद्धि और उसकी शुद्धि

बुद्धि यानी सार–असार का निर्णय करने की शक्ति। बुद्धि के विकास से ही मनुष्य को मनुष्यत्व मिलता है। मनुष्य का मूल्यांकन भी उसकी बुद्धि के विकास पर आधारित है। हजारों मनुष्यों की शारीरिक मेहनत से जो काम नहीं बन सकता वह काम बुद्धिवाला मनुष्य बहुत ही कम मेहनत से बहुत ही कम खर्च मे तथा बहुत सुगमता से कर सकता है। इसी कारण केवल शारीरिक बल से बुद्धि की व बुद्धिबल की कीमत अधिक मानी जाती है। अशिक्षित मनुष्य से, अनपढ़ मनुष्य से पढ़े हुए मनुष्य की कीमत अधिक होती है, उसका कारण प्रशिक्षित मनुष्य के केवल अक्षर ज्ञान में नहीं परंतु उसकी बुद्धि के विकास में है।

श्रीमद्भगवद्गीता में कुछ एक जगह पर बुद्धि को कुछ अलग अर्थ में भी इस्तेमाल किया है। बुद्धि यानी सार–असार का विचार करने की शक्ति यह उसका सामान्य अर्थ है। इस दृष्टि से देखने से बुद्धि एक प्रकार की शक्ति है। इस बुद्धि रूप शक्ति के विकास करने में ज्ञान बहुत महत्व का भाग अदा करता है। इस तरह होने से कुछ लोग तो ऐसा भी मानते हैं कि ज्ञान ही शक्ति है।

मनुष्य के संघटन में कितने एक तथ्य शामिल होते हैं। बुद्धि मनुष्य के संघटन में शामिल होने वाला एक तत्व है। यह तत्व बहुत ही बारीक और उच्च प्रकार का है। इस विषय में श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है:–

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।। ७–४

भूमि, आप्र–पानी, अनल–अग्नि, वायु .... आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार यह मेरी–परमेश्वर की आठ प्रकार की प्रकृति है। पृथ्वी, पानी, तेज, वायु, आकाश वगैरह की तरह बुद्धि भी एक तत्व है। यह ऊपर के श्लोक से जाना जाता है। बुद्धि यानी मनुष्य के संघटन में दाखिल होने वाला एक बहुत बारीक परंतु बहुत उपयोगी तत्व–यह बुद्धि शब्द का दूसरा अर्थ है।

सोने की खान में से जो माटी निकलती है उसमें स्वाभाविक रूप से ही सोने के रजकण होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य के संघटन में बुद्धि तत्व दाखिल होने से उसमें सार–असार विचार करने की शक्ति भी होती है। खान यानी माइन्स में से निकलती हुई मिट्टी की कच्ची धातु के साथ मिले हुए सोने की बहुत कीमत नहीं मिलती परंतु उसको साफकर, मिट्टी को अलग कर सोने को रिफाइन या साफ करने से उसकी कीमत बढ़ती है। बुद्धि के सम्बंध में भी वैसा ही है। बुद्धि तत्व कुछ एक और तत्वों के साथ मिल गया होता है, दूसरे कुछ एक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत्वों से, काम–क्रोध से ढँक गया होता है, ढँका होता है। ऐसे अशुद्ध बुद्धि तत्व को दूसरे तत्वों से अलग करना है बुद्धि की शुद्धि। बुद्धि की शुद्धि करना, बुद्धि को तीव्र व तेज करना, सार–असार का निर्णय कराने का कार्य अपने आप कार्यबुद्धि से ही कर सके वैसी बनाना दुनियां की प्रत्येक प्रशिक्षण पद्धति का उद्देश्य है। भगवद्‌गीता बुद्धि की शुद्धि करने की कितनी पद्धतियों में से एक बहुत पुरानी परंतु बहुत महत्व की पद्धति है। बुद्धि की शुद्धि करने की एक महत्व की पद्धति के अनुसार भगवद्‌गीता का ज्ञान विद्यार्थियों को और अन्य सभी लोगों के लिए बहुत ही उपयोगी है।

बुद्धि के दो अर्थ निश्चित किए हैं, इसके उपरान्त उसका तीसरा अर्थ भी है। इस अर्थ में भी बुद्धि शब्द भगवद्‌गीता में आया है:–

बुद्धिर्ज्ञानसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः।
सुखं दुखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च।। १०–४
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः।। १०–५

बुद्धि, ज्ञान, असम्मोह, क्षमा, सत्य, दम, शम, सुख–दुख, भाव–अभाव, भय–अभय, अहिंसा, समता, तुष्टि, तप, दान, यश–अपयश भूतों का, प्राणियों का, मनुष्यों का अलग–अलग भाव है। जैसा मनुष्य के भावों में, उसकी भावनाओं में बदलाव किया जा सकता है, उसी प्रकार बुद्धि में भी मनुष्य बदलाव ला सकते हैं। बुद्धि शब्द के तीन मुख्य अर्थ शुरुआत में ही अभ्यासी को सही रूप में समझने की जरूरत है। जहाँ–जहाँ बुद्धि शब्द आता है वहाँ–वहाँ इन तीन में से किस अर्थ में उपयोग हुआ है वह पूर्वापर सम्बन्ध पर से उसके (Conte^t) पर से ही अभ्यासी को निश्चित करने का है।

बुद्धि का इतना अधिक महत्व होने से शुरुआत के अभ्यासी को अपना आत्मनिरीक्षण कर सके–ऐसा कर अपनी शरीर की बुद्धि की जाति में, क्वालिटी में उच्च प्रकार बदलाव ला सके, उसके लिए श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में बुद्धि के विविध भेद किए गए हैं:–

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी।। १८–३२

तामसी बुद्धि–तमस से अज्ञान से ढँकी होती है। इस कारण से इस प्रकार की बुद्धि अधर्म, नहीं करने लायक कर्म को, धर्म, करने लायक कर्म, कर्तव्यकर्म मानती हैं। ऐसी बुद्धि से सर्व अर्थ विपरीत प्रतीत होते हैं। बुद्धि का साधारण धर्म प्रकाश देने का–सही ज्ञान देने का है, सही ज्ञान कराने का है। तामसी बुद्धि, यह बुद्धि का स्वाभाविक स्वरूप नहीं है। इस प्रकार की बुद्धि के ऊपर तमस का, अज्ञान का आवरण पड़ा होने से इस प्रकार की बुद्धि अपना सही कर्म नहीं कर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सकती। ऐसी बुद्धि के सर्व–अर्थ–विषय–काम विपरीत प्रतीत होते हैं। ऐसे प्रकार की बुद्धि त्यजने योग्य है। ऐसे प्रकार की जब बुद्धि लगें तब उसमें सुधार करने की, बदलाव लाने की जरूरत है।

तामसी बुद्धि से उच्च प्रकार की परन्तु बहुत ही उत्तम प्रकार की नहीं, वैसी बुद्धिं को राजसी बुद्धि कहने में आया है। इस बुद्धि का वर्णन नीचे अनुसार किया हैः–

यंया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी।। १८–३१

जिस बुद्धि से धर्म व अधर्म, कार्य तथा अकार्य को, यथावत् .... बरोबर नही जाना जाये वैसी बुद्धि राजसी है। तमस बुद्धि से राजसी बुद्धि उच्च प्रकार की कैसे है उसका कारण ऊपर के श्लोकों में समझाने में आया है। ऊपर के श्लोकों की तुलना करने से पता चलेगा कि तामसी बुद्धि विपरीत उल्टी बुद्धि है। राजसी बुद्धि बिल्कुल विपरीत नहीं परन्तु वह सही निर्णय करने में असमर्थ है। तामसी बुद्धि का निर्णय गलत ही होता है। राजसी बुद्धि का निर्णय बिल्कुल गलत नहीं होता परन्तु वह एकदम सही भी नहीं होता। सही निर्णय करने में राजसी बुद्धि असमर्थ है परंतु वह विपरीत नहीं है।

उत्तम प्रकार की बुद्धि सात्विक बुद्धि है। इस बुद्धि का वर्णन नीचे अनुसार हैः–

प्रवृत्तिं त निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्विकी।। १८–३०

जिस बुद्धि से प्रवृत्ति और निवृत्ति, कार्य और अकार्य, भय और अभय, बन्ध–दुख, मोक्ष–सुख का सही निर्णय हो वह बुद्धि सात्विक है। कहाँ और कैसे काम में मनुष्य को प्रवृत्त करने, कौन सा काम करने लायक है और कौन सा कार्य करने में मनुष्य को भय या डर रखे बिना.......... आगे बढ़ना, कौन सा कार्य करने से मनुष्य को बंध, मनुष्य को दुःख होगा, उस कार्य का सही निर्णय करे वह बुद्धि सात्विक बुद्धि है। कौन से कार्य की निवृत्ति करने, कौन–सा कार्य नहीं करने जैसा, कौन–सा कार्य अकार्य है वह भी इस बुद्धि से ठीक रूप में जाना जा सकता है। जो कार्य करने से भविष्य में दुख होने की सम्भावना हो उस कार्य से होने वाले भावी दुःख से भय पाकर वह कार्य करना,अकार्य करने से रुकना–निवृत्त होना भी सात्विक बुद्धि से जाना जा सकता है।

कार्य–कर्म और बुद्धि के सार–असार के निर्णय करने की शक्ति में कितना और कैसा सम्बन्ध है यह जानने की जरूरत है। कर्म यानी मनुष्य की शक्ति का व्यय (Expenditure of Energy) अच्छे कार्य या बुरे कार्य, प्रत्येक कार्य में मनुष्य की शक्ति का व्यय होता है–शक्ति का व्यय अच्छे कार्य में किया हो तो उसका परिणाम अच्छा, सुखरूप, पुण्य कार्य में आता है। शक्ति का व्यय

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

खराब कार्य में, पाप में, अधर्म में किया हो तो उसका फल–दुख–क्रन्दन बन्ध रूप में आता है। मनुष्य जो कार्य करते हैं वे उसके सुख–दुख को अपनी बुद्धि से निर्णय करने के बाद करते हैं। तामसी बुद्धिवाला कार्य करता है–काम करने में अपनी शक्ति का व्यय करता है परन्तु उसकी बुद्धि की निर्णय करने की शक्ति विपरीत होने से उसके कार्य से शक्ति के खर्च से उसे सुख मिलने के बदले दुःख होता है। शक्ति का व्यय रूप मूल्य देने के बावजूद भी ऐसा मनुष्य सुख और शांति खरीदने के बदले दुःख और शोक अपने आप ही ....खरीदते हैं–पाते हैं। राजसी बुद्धि यथावत् वह सही नहीं जानती होने से दुःख हो वैसा विपरीत कार्य तो नहीं करती परन्तु सुख कैसे हो उसका ज्ञान उसे यथावत् सही नहीं होता, इस कारण से शक्ति का व्यय रूप मूल्य देने के बावजूद सुख उसे नहीं मिलता। केवल सात्विक बुद्धि ही ऐसी है कि जिससे निर्णय यथावत् जैसा होना चाहिए वैसा होता है, कैसे कार्य से–अकार्य से उसे दुःख होगा वह जानती होने से ऐसी बुद्धि वाला मनुष्य बंध–दुःख से बचता है। सही सुख किसमें है, कौन–सा कार्य करने लायक है उसका उसे सही ज्ञान होने से वैसे काम में वह प्रवृत्त होता है और ऐसे कार्य में प्रवृत्त होकर वह मोक्ष–सुख प्राप्त करता है। ऊपर के तीन श्लोक पर से दिखता है कि मनुष्य के सुख–दुःख का आधार उसके कार्य पर नहीं किन्तु उस कार्य की जाति (Quality) पर है। कोई कार्य अच्छा कार्य, धर्म पुण्य है या कोई कार्य खराब अकार्य अधर्म पाप है वह तब केवल बुद्धि से ही जाना जा सकता है। इस कारण से बुद्धि के तारतम्य के ऊपर–बुद्धि के सार–असार निर्णय पर मनुष्य के सुख–दुःख का, बन्ध मोक्ष का आधार है। इस प्रकार बुद्धि बहुत महत्व का तत्व होने से उसके विकास तथा उसकी शुद्धि पर शुरुआत से ही बहुत ध्यान देने की जरूरत है। बुद्धि के विविध भेद, ऊपर के कारणों के लिये ही अर्जुन को समझाने में आए हैं।

बुद्धि मनुष्य के वर्तमान और भावी सुख–दुःख में महत्व का भाग अदा करती है। इतना ही नहीं परंतु मोक्ष जैसी उत्तम से उत्तम स्थिति, शाश्वत सुख भी मनुष्य को प्राप्त कराती है। इस कारण से भगवद्गीता जैसे छोटे ग्रन्थ में भी केवल बुद्धि की विविध जाति बताकर ही भगवान व्यास ने संतोष नहीं माना। भगवद्गीता के १८वें अध्याय के ३१वें श्लोक में बुद्धि की जाति जताने के लिए भगवान व्यास ने अयाथवतशब्द का उपयोग किया है। इस शब्द के पीछे छिपे सही रहस्य को समझाने के लिए भगवान व्यास ने दूसरी जगह पर प्रयत्न किया है:–

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरूनन्दन।
बहुशाखाह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम।। २–४१

ऊपर के श्लोक पर से स्पष्ट है कि उसमें बुद्धि के दो प्रकारों के भेद बताए हैं। व्यवसायात्मिक बुद्धि और दूसरी अव्यवसायात्मिक बुद्धि। व्यवसायात्मिक बुद्धि एकाग्र–चौकस ध्येय वाली होती है। अव्यवसायात्मिक बुद्धि बहुशाखा वाली और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनन्त होती है जैसे एक तितली एक पेड़ पर से दूसरे पेड़ पर उड़के बैठती है वैसे ही बहुशाखा वाली बुद्धि–बुद्धिवाले मनुष्य एक विषय से दूसरे विषय की तरफ जाते हैं–आकर्षित होते हैं। इस प्रकार होने से ऐसे मनुष्यों को स्थिरता तथा शांति के सुख नहीं मिलते हैं।

व्यवसायात्मिका बुद्धि कैसे मनुष्यों को प्राप्त नहीं होती उस विषय पर आगे वर्णन करने में आया हैः–

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते।। २–४४

जिन मनुष्यों की बुद्धि भोग और ऐश्वर्य में आसक्त है उनके मन भोग तथा ऐश्वर्य के ज्ञान की तरफ ही खिंचते हैं, अट्रैक्ट होते हैं। भोग और ऐश्वर्य के पदार्थ अनेक होने से ऐसे मनुष्य की बुद्धि बहुशाखा वाली होती है। ऐसे मनुष्य की बुद्धि व्यवसायात्मिका नहीं होती।

बहुशाखा वाली और अनन्त बुद्धि को एकाग्र करना–एक ध्येय पर लगाना बहुत ही महत्व का काम है। इस कारण से श्रीकृष्ण ने अर्जुन को वैसा करने का आग्रह किया है :–

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि।। २–५३

श्रुति के सुनने से–अलग अलग विषयों को सुनने से तेरी बुद्धि डाँवाडोल, विचलित हो गयी है। इस स्थिति में जब तेरी बुद्धि निश्चल होगी गई तब तेरी बुद्धि समाधि में स्थिर होगी, और तब ही तुझे योग की प्राप्ति होगी–आन्तरिक सुख मिलेगा।

बुद्धि को स्थिर करना–बुद्धि को एकाग्र करना–बुद्धि को बहुशाखी होने से अटकाना–रोकना–उसे व्य वसायात्मिक बनाना वह बहुत ही महत्व का है; बुद्धि की एकाग्रता किस रीति से साधनी या किस रीति से करनी चाहिए यह महत्व का प्रश्न है; बुद्धि को निश्चल करने के लिए–बुद्धि को स्थिर करने की जरूरत है; यह हकीकत तो धीरे–धीरे अर्जुन को भी समझ में आ गई थी। परन्तु बुद्धि जैसे सूक्ष्म और बारीक तत्व को कैसे निश्चल करना उसकी कार्यपद्धति की उसे खबर नहीं थी, उसका उसे पता नहीं था। इस प्रकार की कार्यपद्धति के विगतवार ज्ञान के बिना बुद्धि की निश्चलता का केवल शाब्दिक ज्ञानकी कोई भी कीमत नहीं थी। बुद्धि जब सार–असार का निर्णय का कार्य करती है तब उसे प्रज्ञा कहते हैं जिसकी प्रज्ञास्थिर–निश्चल–एकाग्र हो गई हो तो उस मनुष्य को स्थितप्रज्ञ कहते हैं। प्रज्ञा वह बहुत बारीक तत्व होने से मनुष्य की भौतिक आँखों से उसे नहीं देखा जा सकता। इस कारण से कुछ एक मनुष्यों को अपनी बुद्धि में बदलाव करना हो–अस्थिर बुद्धि को स्थिर करना हो–बहुशाखा वाली बुद्धि को

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
व्यवसायात्मिक बुद्धि करनी हो तो उसे क्या करना चाहिए ....। अर्जुन भी अपनी बुद्धि में वैसा बदलाव करना चाहते थे, ऐसे बदलाव की आवश्यकता उन्होंने समझी थी, पहचानी थी और स्वीकार की थी फिर भी उसकी कार्यपद्धति की उसे खबर नहीं थी, उसका उसे ज्ञान न था, इस कारण से इस कार्यपद्धति का व्यवहार्य ज्ञान पाने के लिए अर्जुन पूछते हैं कि–

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ।। २–५४

जिसकी बुद्धि स्थिर हो गई हो–जो मनुष्य स्थितप्रज्ञ हो उसके लक्षण क्या–क्या है? ऐसा आदमी कैसे, किस रीति से बोलता है, किस रीति से बैठता है और किस रीति से चलता है? संक्षेप में कहें तो स्थितप्रज्ञ मनुष्य का व्यवहार कैसा होता है? दूसरे शब्दों में कहें तो किन–किन लक्षणों–गुणों के कौन–कौन लक्षण मनुष्य में आए तब वह स्थितप्रज्ञ कहलायेगा। स्थितप्रज्ञ होना हो उसे किन–किन गुणों को विकसित करना चाहिए।

अर्जुन के इस महत्व के सवाल का जवाब श्रीकृष्ण ने नीचे के तीन श्लोकों से दिया है–

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।। २–५५
दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।। २–५६
यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति नद्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। २–५७

मनुष्य फिर जब अपने मन में रही सभी कामनाओं, तृष्णाओं का त्याग करते हैं और जब अपनी कल्पना से आत्मा को संतुष्ट करते हैं तब ही स्थितप्रज्ञ का अर्थ विशेष समझने में आया है; जिस अभ्यासी के मन पर दुःख से–उद्वेग शोक नहीं होता तथा सुख से जो उदासीन रहते हैं और जिसका राग–कामना भय तथा क्रोध चले गये हैं, उस मनुष्य को स्थिरप्रज्ञा वाला कहा जाता है। इस श्लोक का विशेष स्पष्टीकरण इसके बाद के श्लोक में किया है। जिस मनुष्य का मन शुभ–अच्छा–सुख में तथा अशुभ–खराब–दुख में हमेंशा .... आसक्ति बगैर का है, जिसे कोई भी वस्तु से शोक नहीं होता या तो जो किसी भी वस्तु को धिक्कारता नहीं, जिसे किसी वस्तु की तरफ द्वेष नहीं उसकी प्रज्ञा–बुद्धि स्थिर हो गई है ऐसा कहा है। ऊपर के तीन श्लोकों से स्पष्ट है कि जब मनुष्य के हृदय में हर्ष तथा शोक, राग तथा द्वेष की भावना असर नहीं करती तभी उसकी बुद्धि स्थिर होती है। दूसरे शब्दोंमें कहें तो बुद्धि को चलित करने वाले, बुद्धि को अस्थिर–डावाँडोल करने वाली कामना इच्छा–तृष्णा–वासना–राग और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्वेष–तिरस्कार–धिक्कार की भावना होती है; इस प्रकार होने से उन भावनाओं पर काबू पाने से बुद्धि की स्थिरता अपने आप हो जाती है।

बुद्धि की स्थिरता की, स्थितप्रज्ञ होने की, इतनी अधिक जरूरत है कि इस सिद्धान्त को अलग–अलग जगह अलग–अलग तरह से समझाने में आया है–

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ।। २–५२

जब तेरी–अर्जुन की–अभ्यासी की बुद्धि, मोह के अज्ञान के विलास से टर जाएगी–उसको पार कर जाएगी, तब जो तुमने सुना और जो तुम इसके बाद भविष्य में सुनोगे उसके प्रति तुम्हारी निर्वेद–उदासीनता उत्पन्न होगी–आप स्थितप्रज्ञ बनोगे।

बुद्धियोग की कितनी महत्ता है उस विषय में श्रीकृष्ण ने कहा है:–

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चितः सततं भव ।। १८–५७

हे अर्जुन ! तुम मन से सर्वकर्मो का मेरे में सन्यास .... कर परायण हो। बुद्धियोग का आश्रय करके तेरे सब विचारों को मेरे में परमेश्वर में स्थिर कर।

बुद्धियोग से अभ्यासी को क्या फायदा होता है यह भी विशेष रूपसे जानने की जरूरत है। इस सम्बन्ध में कहा है कि:–

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि।। २–३९

अर्जुन को भगवान श्रीकृष्ण ने सांख्य योग के अनुसार शिक्षण दिया और शिक्षण देने के बाद भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन ! अब मैं तुझे बुद्धियोग के सिद्धान्तों को समझाऊगा। किस बुद्धियोग से दुर्बुद्धि–बुद्धियोग में कही हुई बुद्धि से युक्त होने से तू–अभ्यासी–कर्म बंधनों के–कर्म की बंधन करने वाली शक्ति को–कर्म में से दुःख उत्पन्न होता है उस शक्ति का नाश कर सकेगा। दूसरे शब्दों में कहें तो बुद्धियोग के अनुसार तू जो जो कर्म करेगा उससे तुझे बंधन–दुःख नहीं होगा।

बुद्धियोग वाले अभ्यासी कर्म–अकर्म की बंधन शक्ति का नाश करते हैं वह तो जाना परन्तु ऐसे प्रकार का नाश कितने समय और कहाँ होता है। मनुष्य के मर जाने के पश्चात यदि वह परलोक में उसे उसके शुभाशुभ कर्मो का नाश होता हो तो वैसा नाश बुद्धियोग के बिना भी कर्म के फल को भोगकर भी होता है। अर्जुन की इस शंका का निवारण करने के लिए कहा है:–

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।। २–५०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बुद्धियुक्त होने से–बुद्धियोग के अनुसार चलने से मनुष्य अपने सुकृत्यों तथा दुष्कृत्यों को यहीं इसी दुनियाँ में ही त्याग कर सकता है। क्योंकि कर्म करने में कुशलता ही बुद्धियोग है।

कर्म करने में कुशलता यानी बुद्धियोग कर्म करने में जो कुशलता, जो चातुर्य कहने में आया है वह चातुर्य–वह कुशलता, किस प्रकार की है वह भी गीता में समझाने में आया है:–

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्।। २–५१

सयाने मनुष्य, कर्म करने में कुशल मनुष्य–बुद्धियोग के उपासक, बुद्धियुक्त होकर कर्म में से उत्पन्न होने वाले फलों को त्यागकर, जन्म के बन्ध में से, दुःख में से मुक्त होकर दुखरहित स्थान के पद को प्राप्त करते हैं। इस श्लोक में बुद्धियोग की पद्धति तथा उसकी महिमा का वर्णन किया गया है।

पूरी भगवद्गीता अर्जुन को सुनाने के पश्चात उसका सार रूप बहुत ही संक्षिप्त में परन्तु बहुत ही असरकारक रूप से अर्जुन–अभ्यासी दोनों उच्च स्थिति कैसे प्राप्त कर सके यह बताया है। इस वर्णन में बुद्धि की विशुद्धि को बहुत महत्व दिया है:–

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च।। १८–५१
विविक्तसेवी लघ्वाशी, यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः।। १८–५२
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते।। १८–५३

मनुष्य की उच्च से उच्च स्थिति–मनुष्य की सर्वोत्तम सुख–ब्रह्म की स्थिति प्राप्त करने की है। वह ब्रह्म की स्थिति किस प्रकार से मनुष्य को मिलती है, किन गुणों के विकास से प्राप्त होती है, इसका वर्णन ऊपर के तीन श्लोकों में किया है।

ब्रह्म की स्थिति पर पहुँचने की काबिलियत पाने के लिए जरूरी सद्‌गुणों में बुद्धि की विशुद्धि को ही महत्व दिया है। बुद्धि की विशुद्धि के बिना कौन सा कार्य करना जरूरी और कौन सा कार्य नहीं करना यह मनुष्य नहीं जान सकता। इस कारण से शुरुआत के अभ्यासियों के लिए बुद्धि की विशुद्धि की आवश्यकता बताने में आयी है।

बुद्धि के विशुद्ध करने के बाद .... दृढ़ता से, अभ्यास से, आत्मा को, शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि को नियम में लाना, इन्द्रियों वगैरह का निग्रह करना सीखना, राग द्वेष वगैरह तथा शब्दादि वगैरह विषयों का त्याग करने की भी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जरूरत है। ऐसे त्याग के बिना आत्मनिग्रह बन ही नहीं सकता। आत्मनिग्रह नहीं हो सकता।

ऐसी स्थिति में मनुष्य आये ऐसी उच्चस्थिति प्राप्त करे तब दूसरे निम्नस्तर के वातावरण की उस पर यदि असर हो तब उसकी उन्नति का वेग कम हो जाता है। इस कारण से ऐसे अभ्यासी को अकेला रहने की खाने की अल्पाहारी होने की, वाणी, शरीर तथा मन पर काबू रखने की ध्यान योग होने की सूचना दी है। वैराग्य–राग की गैरहाजिरी के बिना यह सब नहीं बन सकता इसलिए वैराग्य पर ऐसे मनुष्यों को ध्यान देना जरूरी है।

इतने गुणों के आने के बाद स्वाभाविक रूप से ही मनुष्य में अंहकार, क्रोध, अपरिग्रह व ममत्व रहते नहीं है फिर भी जो रहा हो तो उन तमाम को त्याग करना है। इतने गुणों के विकास होने के पश्चात मनुष्य में एक प्रकार की अनुपम शांति का उदय होता है। ऐसा मनुष्य ब्रह्म होने–ब्रह्म के सुखों को भोगने लायक होता है–वह भोगता है।

ब्रह्म होने के लिए–उत्तम से उत्तम सुख पाने के लिए मनुष्य कोअपने–आप पर महान कष्ट देने की जरूरत नहीं। घर, व्यापार, स्त्री, पुत्र, धन वगैरह का त्याग करने की जरूरत नहीं, महान तप यानी दूर देश में स्थित तीर्थ करने की जरूरत नहीं। मनुष्य जहाँ है वहीं शांति से धीमे–धीमे, धीरे–धीरे आत्मनिरीक्षण कर अपनी बुद्धि को शुद्ध करे–बुद्धि के दोष दूर करे और ऊपर के तीन श्लोकों में कहे गए सद्‌गुणों को विकसित करे तो कम समय में उसकी उन्नति का वेग बढ़ जाता है। भगवद्‌गीता की साधनपद्धति प्रभु को पाने की ब्रह्मभूत होने की, परमानन्द प्राप्त करने की पद्धति का कार्यक्रम कितना सादा, कितना सरल और कितना सर्वदेशीय है, वह ऊपर के श्लोक पर से पता चलता है। इस पद्धति में न तो मत–मतान्तर के झगड़े हैं न तो नामधारी आचार्यों के झगड़े हैं। भगवद्‌गीता जैसी दृष्टि की विशालता तथा शिक्षण की सर्वदेशीयता दुनिया के अन्य ग्रन्थों में शायद ही देखने में आती है।

बुद्धि की विशुद्धि के ऊपर ही कर्म की विशुद्धि का आधार है वह हमने ऊपर देखा है। बुद्धि को–बुद्धियोग को गीता जैसे छोटे ग्रन्थों में प्रधान पद दिया है तो इसका यही कारण है। कर्म के सार असार को, पुण्यापुण्य को, धर्माधर्म को, कार्याकार्य का मुख्य आधार बुद्धि की शुद्धि, विशुद्धि पर है वह तो हमने देखा और जाना परन्तु इतना जानना ही पर्याप्त नहीं। बुद्धि की शुद्धि किससे होती है यह भी जानना जरूरी है। इस सवाल का जवाब थोड़ा विचित्र है। बुद्धि की शुद्धि का आधार कर्म में है।

प्रत्येक मनुष्य का कर्म उसकी बुद्धि के अनुसार होता है। अच्छी बुद्धिवाला मनुष्य कर्म भी अच्छा करता है, खराब बुद्धिवालों के कर्म भी खराब होते हैं। इस

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकार बुद्धि कर्म की प्रेरक होने से बुद्धि के अच्छे और खराब गुण कर्मों में आये बिना नहीं रहते यह सिद्धान्त स्पष्ट है।

बुद्धि की शुद्धि का आधार मनुष्य के कर्म पर है यह सिद्धान्त मनुष्य को प्रथम दृष्टि से जरा विचित्र लगेगा। मनुष्य की बुद्धि कर्मानुसार होती है और कर्म का आधार बुद्धि पर और बुद्धि का आधार फिर कर्म पर। यह सामान्य मनुष्य को अन्योन्याश्रय होने जैसा लगेगा। विशेष विचार करने से पता चलता है कि यह शंका सही नहीं है। वृक्ष का आधार उसके बीज पर और बीज का आधार उस वृक्ष पर । यदि पेड़ अच्छा हो तो उसके फल तथा बीज भी अच्छे होते हैं। यह बात स्पष्ट है परन्तु यह बात भी सही है कि अच्छे बीज के बोये बिना अच्छा वृक्ष नहीं होता। प्रत्येक मनुष्य का कर्म एक प्रकार का वृक्ष है इस कर्म में से उत्पन्न होने वाली बुद्धि उसका बीज है। अच्छे वृक्ष का, कर्म का अच्छा बीज बुद्धि से उत्पन्न होता है। अच्छे बीज से, बुद्धि से पैदा किया हुआ वृक्ष–कर्म भी अच्छा होता है।

जैसे बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज उत्पन्न होता है। उसी प्रकार बुद्धि से कर्म और कर्म से बुद्धि उत्पन्न होती है। बुद्धि का तथा कर्म का कैसा सम्बन्ध है, बुद्धि की उत्पत्ति तथा शुद्धि में कर्म किस तरीके से तथा किस प्रकार का भाग अदा करते हैं उसका बाद के प्रकरण में विचार किया जाएगा।

❑

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकरण–६

कर्मफल और संस्कार

इस दुनिया में प्रत्येक मनुष्य अपने जन्म से लेकर मरणपर्यन्त कुछ न कुछ कार्य करता रहता है। ऐसे प्रत्येक कार्य को कर्म कहते हैं। कुदरत में जैसे बिल्कुल खाली जगह नहीं, वैक्यूम नहीं है वैसे ही कोई भी मनुष्य किसी भी प्रकार का कर्म किए बिना रह नहीं सकता।

जिसे हम बिल्कुल निकम्मा मनुष्य कहते हैं वह मनुष्य भी वास्तविक दृष्टि से देखने से बिना काम का नहीं परन्तु श्वासोच्छवास लेने की क्रिया में अलग–अलग कर्मों में बँधा हुआ है। यह सिद्धान्त श्रीमद्भगवद्गीता में भी समझाने में आया है:–

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।। ३–५

कोई भी मनुष्य वास्तविक रीति से वास्तविक रूप में देखने से क्षण भी अकर्मकृत–कर्म किए बिना रह नहीं सकता–जी सकता नहीं–जीता नहीं। शुरुआत के अभ्यासी को इस सिद्धान्त पर विचार करना, उसका सत्य अपने मन में बसाना बहुत महत्व का है; मनुष्य जहाँ कहीं भी किसी भी स्थान में हो हाथ–पैर हिलाये बिना .... बिल्कुल निश्चेष्ट बैठा रहा हो तो भी वह एक क्षण के लिए भी अकर्मकृत–कर्म किए बिना नहीं रह सकता। यह सिद्धान्त सर्वमान्य है। यह सिद्धान्त सभी मनुष्य पर एक सरीखा लगता है इतना ही नहीं परन्तु सभी जीव वाले प्राणियों में तीनों काल में यह लागू होता है।

जैसे मनुष्य एक क्षण भी कर्म किए बिना नहीं रह सकता वैसे मनुष्य के किए हुए प्रत्येक कर्म का फल–परिणाम–असर किए बिना भी नहीं रह सकता। कर्म को यदि कारण माना जाये तो कर्म के फल, कारण का कार्य है। जैसे कोई भी कार्य कारण के बिना उत्पन्न नहीं होता वैसे कोई भी कारण कार्य को जन्म दिए बिना, कर्म को उत्पन्न किए बिना नाश नहीं होता। जो आघात की दृष्टि से देखें तो जैसे प्रत्येक आघात का प्रत्याघात होता है उसी प्रकार कर्मरूपी प्रत्येक आघात का भी प्रत्याघात होता है। मनुष्य के प्रत्येक कर्म को उसकी आवाज का रूपक दें तो ऐसा प्रत्येक कर्म का फल उस आवाज का इको है। धार्मिक दृष्टि से देखने से तो प्रत्येक शुभ–अशुभ कर्म का परिणाम सुख–दुःख रूप में आता है।

तर्क की दृष्टि से देखने से प्रत्येक अच्छे कार्य का, सार–असार का आधार उसके कारण के अच्छे बुरे रहने पर होता है। विज्ञान की दृष्टि से देखें तो जैसा और जितना आघात वैसा और उतना ही प्रत्याघात होता है। इस प्रकार कर्म के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सिद्धान्त को जिस किसी दृष्टिबिन्दु से देखें तो भी कर्म और उसके फल के बीच बहुत गूढ़ और नहीं तोड़ सके वैसा सम्बन्ध है, जैसे मनुष्य को, किसी भी चीज को उसकी परछाई से अलग नहीं किया जा सकता उसी प्रकार कर्म को उसके कार्य से–पुण्य को उससे उद्भव होते सुख से, पाप को उससे उत्पन्न होते दुख से ब्रह्मज्ञान को उससे उत्पन्न होते मोक्ष में से–परमानन्द से अलग नहीं कर सकते। कर्म मार्ग का यह दूसरा और बहुत महत्व का सिद्धान्त है।

इस महत्व के सिद्धान्त को श्रीमद्भगवद्गीता में भी समझाने में आया है। भगवान वेदव्यास ने कहा है कि–

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ।। १८–१२

इष्ट–अच्छा–सुख, अनिष्ट–खराब–दुख और मिश्र–सुख दुःख मिश्रित, ऐसे तीन प्रकार के कर्मों के फल–परिणाम होते हैं। परिणाम–फल की दृष्टि से यदि मनुष्य के तमाम कर्म का वर्गीकरण (Classification) करने में आये तो वह ऊपर बताये अनुसार तीन प्रकार का हो सकता है। कर्म जिस किसी मनुष्य ने जब कभी जिस किसी हेतु से तथा किसी भी संयोग में किया हो तो वैसे प्रत्येक कर्म का परिणाम इष्ट, अनिष्ट, मिश्र ऐसे तीन प्रकार का होता है।

प्रत्येक कर्म का फल तात्कालिक नहीं आता। कितने एक कर्म का फल परिणाम तात्कालिक होता है परंतु कितने एक कर्म का फल दो दिन में, दो मास में दो–पाँच–पच्चीस वर्ष में या दूसरे जन्म में या तो दो–पाँच या तो पच्चीस जन्म के बाद भी आता है। इस प्रकार कर्म का फल आने के समय में थोड़ा बहुत अन्तर रहता है फिर भी कर्म का फल आता है यह बात तो, यह सिद्धान्त तो चौकस–अडिग है।

इस दुनिया में कल्याण करने वाले, अच्छे कर्म करने वाले की कभी दुर्गति नहीं होती–कभी अच्छा कर्म उसके कर्ता को उच्चस्थिति पर पहुँचाये बिना रहता नहीं। यह सिद्धान्त भगवद्गीता में बहुत अच्छी तरह से समझाने में आया है। इस संबंध में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि –

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृकश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ।। ६–४०

हे पार्थ ! इस दुनिया में तथा परलोक में योगचलित पुरुष का, सत्कार्य करने वाले का नाश नहीं होता है क्योंकि कल्याणकारक कर्म करने वाला, सत्कर्म करने वाला–अच्छे कर्म करने वाले की कभी दुर्गति–अवनति नहीं होती। ऊपर के श्लोक में सिद्धान्त तथा उसके व्यवहार दोनों का समावेश किया है। कभी अच्छे कार्य का खराब परिणाम आता नहीं है। यह सिद्धान्त है। अच्छे कार्य करने वाले की दुर्गति नहीं होती यह इस सिद्धान्त से अनुमान है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भौतिक सृष्टि में भी यह सिद्धान्त लागू होता है। गेहूँ बोने वाले को गेहूँ ही मिलता है, बाजरा बोने वाला बाजरा ही पाता है और काँटे बोने वाले को काँटे के सिवाय कुछ नहीं मिलता। जैसा बोओगे वैसा पाओगे। जैसा करोगे वैसा पाओगे यह सिद्धान्त आध्यात्मिक दृष्टि में शब्दशः सही है। पूर्व कर्मों का फल कुछ समय जाने के पश्चात मिलने से उसका कोई अमुक, कोई विशेष फल आये और वह विशेष कर्म का परिणाम है वह सामान्य मनुष्य के पास जानने के साधन नहीं होने से, यह सिद्धान्त तर्क की दृष्टि से मनुष्य को सही लगने से भी उसे व्यावहारिक रूप नहीं दे पाते। प्रत्येक सुख दुःख, प्रत्येक इष्ट अनिष्ट और मिश्र अनुभव अपने किन कर्मों के फल रूप है उस बाबत पर मनुष्य शांतचित्त से तथा निष्पक्षपात बुद्धि से विचार करने की आदत डाले तो इस सिद्धान्त का सही रहस्य मनुष्य जल्दी से समझ सकेगा। इतना ही नहीं परंतु उसके प्रत्येक कार्य इस सिद्धान्त को अपने आप अनुसरण करने वाले होंगे।

कुछ एक सिद्धान्त कैसे किस रीति से कार्य करते हैं यह जानना भी महत्व का है। इस प्रकार के कार्यपद्धति के ज्ञान से मनुष्य की निरीक्षण और परीक्षण शक्ति का विकास बहुत जल्दी से होता है। इस कारण से भगवदगीता में अच्छे कार्य का अच्छा फल आता है उस सिद्धान्त की कार्य पद्धति भी बताने में आयी है:–

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।। ६–४१

पुण्य करने वाले–अच्छे कार्य करने वाले को जिस लोक की स्थिति प्राप्त होनी चाहिए वैसे ही लोक में योगभ्रष्ट–अच्छे कार्य करने वाला मनुष्य जाता है। ऐसे लोक में अपने सत्कार्यों के परिमाण के अनुसार वह लम्बे समय तक रहता है और फिर सत्कार्य करने वाला–योगभ्रष्ट पुरुष इस दुनिया में शुचि, पवित्र और श्रीमन्त मनुष्य के घर में जन्म लेता है। ऊपर के श्लोक से मिलता सिद्धान्त गीता में दूसरी जगह भी कहने में आया है:–

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते।। ९–२१

सत्कर्म से जिसके पाप नाश हो गये हैं वैसे लोगों–पूतपापा अपने पुण्य कर्म को लेकर स्वर्गलोक में जाते हैं। इस विशाल स्वर्गलोक का आनन्द भोगकर, पुण्य का क्षय होने से–सत्कार्य का फल खत्म होने से वे मृत्युलोक में–इस दुनिया में जन्म लेते हैं। ऊपर के दो श्लोकों पर से स्पष्ट है कि सत्कर्म का पुण्य कर्म का स्वर्गरूपी–आनन्दरूपी– धर्मरूपी अच्छा परिणाम आता है। इस प्रकार परिणाम–फल की जाति (Quality) दर्शाने के उपरान्त वैसे फल कितने समय चलते हैं उसका भी परिमाण बताया है। अच्छे कर्म का अच्छा परिणाम आता है। इतना ही नहीं परतु उस कर्म के फल की [illegible] (Intensity) तथा अवधि भी मुख्य

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शुभ कर्म के परिमाण तथा जात पर आधारित है।

योगचलित–पूतपापा–सत्कर्म करने वाला–पुण्य कर्म करने वाला, अपने पुण्य के क्षय के बाद पृथ्वी पर जन्मता है। जहाँ उसके किए हुए पुण्य कर्म के अनुसार शुचि और श्रीमन्त वातावरण में उसका जन्म होता है। इस समय भी उसे उसके कार्य मदद करते हैं–उसके भूतकाल के सत्कार्य उसकी भावी उन्नति की तरफ अपने आप प्रेरित करते हैं–इस सम्बंध में कहा है कि :–

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन।। ६–४३

इस दुनिया में जन्म होने के बाद योगी पुरुष को उसके पूर्वजन्म के कर्म के अनुसार बुद्धि का संयोग होता है–बुद्धि विकसित होती है इस प्रकार सद्बुद्धि के विकास से वह पूर्वजन्म की आकांक्षा की–इच्छा की–संसिद्धि प्राप्त करने की तरफ प्रयत्न करता है। ऊपर के श्लोक में छिपे रहस्य को विशेष रूप से स्पष्ट करने के लिए भगवान व्यास ने उसके बाद के श्लोक में प्रयत्न किया है:–

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य, शब्दब्रह्मातिवर्तते।। ६–४४

पूर्व के अभ्यास से–पहले के जन्म में किए हुए अभ्यास के कर्म के बल से वह अवश्य अपने आप–कई प्रकार के खास प्रयास के बिना भी सिद्धियों को पूर्ण करने की तरफ खींचता है। ऐसा मनुष्य पूर्वजन्म में आचरण किए हुए योग बल से योग का जिज्ञासु होता है और शब्द ब्रह्म को लाँघकर योग को अपनी इच्छा को सम्पूर्ण रूप से प्राप्त करता है:–

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्विषः।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।। ६–४५

पूर्व के अभ्यास–संस्कार के बल से प्रयत्न करते–करते पाप से मुक्त हो योगी अनेक जन्मों में संसिद्धि प्राप्त करते–करते आखिर परागति को–मोक्ष को–परमानन्द को प्राप्त करता है।

मनुष्य के भौतिक शरीर के नाश से–मृत्यु से उसके किए हुए सत्कार्य का नाश नहीं होता परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात भी उसके सत्कार्य उसे स्वर्गलोक–उच्चस्थिति को प्राप्त कराते हैं। यह सिद्धान्त ऊपर के श्लोक से समझने में आएगा। इस सिद्धान्त के उपरान्त दूसरा भी एक सिद्धान्त ऊपर के श्लोक पर से निकलता है। जैसे एक वक्त झूठ बोलने वाला दुबारा झूठ बोलने की तरफ अपने आप प्रेरित होता है उसी प्रकार एक भी सत्कार्य करने वाला अपने आप दूसरे अनेक सत्कार्य करने की तरफ प्रेरित होता है। इस प्रकार एक सत्कार्य–अच्छा कार्य–पुण्यकर्म कई बार कई सत्कार्यों का पुण्य परम्परा का कारण बनता है। इस प्रकार होने से एक छोटा भी सत्कार्य करने का पुण्य कर्म करने का–परोपकार

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करने का समय प्राप्त हो तो अभ्यासी को वह खोना नहीं चाहिए:–

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ।। २–४०

धर्म का–सत्कार्य का सहज भी आचरण मनुष्य को महान भय से बचाता है, यह सिद्धान्त प्रथमदृष्टि से बहुत मनुष्यों को अतिशयोक्ति भरा हुआ लगेगा परन्तु ऊपर के श्लोक के साथ पढ़ने से समझने में आएगा कि स्वल्प–थोड़ा बहुत भी धर्म का–सत्कार्य का–पुण्य का आचरण किया होगा, तो वह कई बार मनुष्य को महान भय से बचाता है, इतना ही नहीं परन्तु मनुष्य को दूसरे विशेष धर्म कार्य के साथ जोड़ता है। वैसा होने से अन्त में मनुष्य को परमगति परमानन्द तक की प्राप्ति करवाने का कारण बनता है। एक छोटे से छोटे अनुभव या कार्य से कितने महापुरुषों के जीवन में सदा के लिए बहुत महत्व का तथा उपयोगी परिवर्तन लाने के उदाहरण हम इतिहास में देखते हैं। ऐसी परिस्थिति अकस्मात से नहीं परंतु कर्म के सिद्धान्त को अनुसरण करने से होती है। यह ऊपर के श्लोकों के मनन करने से स्पष्ट समझ में आएगा। ऊपर के श्लोकों पर विचार करने से प्रत्येक मनुष्य अपने–अपने जीवन में इस दुनिया के जीवन में और भावी जीवन में इच्छानुसार उपयोगी परिवर्तन कर सकता है और वैसा कर आखिर में बहुत उच्चस्थिति को–परागति को–परमानन्द–परमसुख को प्राप्त कर सकता है।

अच्छे कर्म से जैसे मनुष्य की उत्तरोत्तर क्रमपूर्वक उन्नति होती जाती है उसी प्रकार खराब कर्म से–पाप कर्म से मनुष्य की उत्तरोत्तर अवनति होती जाती है। अवनति की–दुःख की कोई भी प्राणी इच्छा नहीं करता फिर अवनति कराने वाले कौन कौन से दुर्गुण हैं यह जाने बिना उसे दूर नहीं कर सकता। ऐसे दुर्गुणों का, दुष्कृत्यों का, पापकर्मों का यथार्थ ज्ञान उसका त्याग करने का तथा वैसा करके सुख प्राप्त करने का पहला सोपान है। अवनतिकारक कर्म किस प्रकार के होते हैं और उसका कैसा तथा कितना असर होता है। इस विषय में भी भगवद्गीता में बहुत सामान्य परंतु बहुत ही व्यावहारिक रीति से उपयोगी हो वैसा विचार करने में आया है।

अवनति होनी हो वैसे मनुष्यों की मनोदशा कैसी होती है और वैसी मनोदशा से मनुष्य के भावी पर कितना और कैसा असर होता है उस सम्बन्ध में भगवान व्यास ने कहा है–

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनाथसंचयान् ।। १६–१२

आसुरी सम्पत्ति वाले मनुष्य–अवनति हो वैसे मनुष्य आशा के सैकड़ों पाशों–बंधनों से बंधे होते हैं; ऐसे मनुष्य काम और क्रोधपरायण–कामी और क्रोधी होते हैं; ऐसे मनुष्य अन्याय से सार असार से–धर्म अधर्म के विचार किए बिना अर्थ का–धन का संचय–संग्रह–उपार्जन करते हैं। गलत रास्ते पैदा किया हुआ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनीति से प्राप्त किया हुआ द्रव्य वे अपनी कामभोग की वासना तृप्त करने में–संतोष में खर्च करते हैं। धन पाने में–पैसा पैदा करने में अधर्म और अनीति करने से मनुष्य की अधोगति होती है यह हकीकत ऊपर के सिद्धान्त में कहीं है। चालू जमाने में इस सिद्धान्त की तरफ खास ध्यान देने की व्यापारी वर्ग तथा अन्य वर्ग को विशेष जरूरत है। व्यापार में जल्दी से अखूट धन सम्पादन करने की सतत लालसा, ये अपने व्यापार की नीति की अधोगति का एक कारण है। ऐसी नीति से व्यापारी को औरअप्रत्यक्षरूप से समाज को भी बड़ा नुकसान होता है।

'आशापाश' भी अधोगति का एक कारण है। आशापाश कितने प्रकार के हैं तथा कैसी प्रकार की मानसिक स्थिति आशापाश रूप है उसका भी वर्णन श्रीमद्भगवद्गीता में किया हैः–

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्।। १६–१३

आज मैंने यह पाया है कल मेरा दूसरा मनोरथ पूर्ण करूगा इतना धन तो मैं पा चुका हूँ और भविष्य में भी इतना विशेष धन पाऊंगाः–

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी।। १६–१४

इस दुश्मन को मैंने मारा है दूसरों को भी मैं मार डालूंगा। मैं ईश्वर–सर्वशक्तिमान– बहुत बलवान हूँ वैसे ही मैं ही भोगी, सिद्ध, बलवान और सुखी हूँः–

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः।। १६–१५

मैं ही धनवान हूँ, मैंने ही उत्तम कुल में जन्म पाया है, मेरे जैसा दूसरा कौन है। मैं ही यज्ञ करूंगा, दान करूंगा और मैं ही आनन्द करूंगा। इस प्रकार आसुरी संपत्ति वाला मनुष्य अज्ञान से मोहित हुआ होता है।

जिसे हम दुनियादारी मनुष्य (Men of world) कहते हैं उनकी सामान्यतः किस प्रकार की मनोदशा होती है उसका ऊपर के तीन श्लोकों में बहुत अच्छा चित्रण किया है।

आशापाश यानी क्या ? वह भी ऊपर के श्लोकों पर से बहुत अच्छी तरह से समझाया जा सके वैसा है। जगत के बहुत मनुष्यों की मनोदशा ऊपर के तीन श्लोकों में बतायी है वैसी होती है। ऐसे प्रकार की मनोदशा इतनी तो स्वाभाविक और दिखने में निर्दोष है, ऐसी मनोदशा में कुछ गलत है–ऐसी मनोदशा अनिष्ट है–अवनति करने वाली है वैसा सामान्य मनुष्य को प्रथमदृष्टि से लगता भी नहीं है। इस प्रकार की मनोदशा होने पर मनुष्य के कर्म भी उसी प्रकार चलते रहते हैं। इस मनोदशा का मुख्य कारण अन्याय से अर्थ सम्पादन करने की, अधर्म से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धन इकट्ठा करने की क्षुद्र वृत्ति है। एक मृग के झुण्ड में जाकर खून का प्यासा एक बाघ जैसा अनर्थ फैलाता है उससे भी कुछ विशेष अनर्थ–विशेष अधर्म–विशेष दुःख, अन्याय से धन सम्पादन करके इस दुनिया में खड़ा करते हैं।

जगत में जो महान युद्ध हुए हैं वे उस समय के राजाओं के अधर्म से धन–राज्य सम्पादन करने की अतृप्त लालसा से ही हुए हैं। धर्म–अधर्म का त्याग कर, सार–असार का विचार छोड़, केवल स्वार्थबुद्धि से कर्म करनेवाला मनुष्य खराब से खराब हिंसक पशु से भी विशेष पामर तथा पिशाच वृत्ति वाला है। ऐसा मनुष्य समाज का दुश्मन है। ऐसे मनुष्य की किस प्रकार की गति होती है–ऐसे मनुष्य का क्या हाल होता है उसका वर्णन भी किया है:–

अनेकचिन्तविभ्रान्ता　　मोहजालसमावृत्ताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ।। १६–१६

ऐसा मनुष्य अनेक प्रकार की कल्पना से भ्रमित होकर मोह के जाल में फँसा पड़ा है और काम, भोग में आसक्त होने से ऐसा मनुष्य घोर नरक में पड़ता है और बहुत दुःख पाता है।

केवल एक वक्त नरक में पड़ने से ऐसे मनुष्य का छुटकारा नहीं होता परन्तु उसकी शुरु की हुई दुष्कर्म की परम्परा उसे बारम्बार नरक में ही–दुःख में ही डालती रहती है:–

आसुरीं योनिमापन्ना मूढ़ा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय, ततो यान्त्यधमां गतिम्।। १६–२०

आसुरी योनि को प्राप्त होकर ऐसा मनुष्य जन्मोजन्म मूढ होता चला जाता है। इस प्रकार होने से ही हे कौन्तेय ऐसा मनुष्य मुझे–परमेश्वर को, उच्चगति को नहीं पाता परंतु अधम से अधम गति को पाता है।

ऊपर के श्लोकों पर से एक हकीकत बहुत स्पष्ट दिखती है कि मनुष्य जो कर्म करते हैं उसका उसे अच्छा या खराब फल मिलता है। शुभाशुभ कर्म का शुभाशुभ फल मिलने के उपरान्त मनुष्य का अच्छा बुरा प्रत्येक कार्य मनुष्य के भावी संघटन– चारित्रिक विकास पर निर्भर करता है। एक अच्छे कार्य से मनुष्य को उस कार्य का अच्छा फल मिलता है, इतना ही नहीं परन्तु भविष्य में वैसे एक कार्य से विशेष अच्छे कार्य करने की तरफ सहजता से अपने आप मुड़ता है। अधर्म का, खराब कार्य का भी वैसा ही होता है। एक खराब कार्य करने वाले को उस कार्य का खराब फल मिलने के उपरान्त भविष्य में उसी प्रकार के दूसरे कर्म करने की तरफ वह प्रेरित करता है। कर्म का इस प्रकार का परिणाम वह कर्म फल का सूक्ष्म स्वरूप है। कर्म के ऐसे और नहीं सोचे हुए परिणाम को प्रत्येक धर्म में अलग–अलग नाम दिए हैं। कर्म के ऐसे परिणाम को कितनी जगह कितने समय अपने धर्मशास्त्रों में 'संस्कार' नाम दिया है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जैसा कर्म वैसा संस्कार। अच्छा कर्म अच्छा फल देने के उपरान्त उसके कर्ता को शुभ संस्कार से अच्छा कार्य करने की तरफ अपने आप प्रेरित करता है। ऐसा होने से उसकी अपने आप उत्तरोत्तर उन्नति होती जाती है।

संस्कार कर्म के फल का बारीक सूक्ष्म फल होने से मनुष्य, मनुष्य की बुद्धि से वह यकायक नहीं देखा जा सकता, तुरन्त नहीं देखा जा सकता। इस प्रकार छिपे हुए संस्कार रहने से वे कई बार अदृश्य भी कहलाते हैं। संस्कार समूह से कुछ एक प्रकार की आदत (Habit) होती है। यह आदत यानी मनुष्य का स्वभाव। मनुष्य का अच्छा या खराब स्वभाव मनुष्य के अच्छे या खराब पहले के कर्मों का परिणाम है। अपने हाल के कृत्यों से मनुष्य अपने भावी स्वभाव का प्रतिक्षण संघटन करता है। एक पतला सूत का धागा भी मनुष्य के आसपास बारंबार लगाने में आये तो ऐसे बहुत सारे तार इकट्ठा होने से मनुष्य बंधता है– मनुष्य वैसे तार से बाहर नहीं जा सकता। हर एक कर्म का संस्कार वह भी शुरुआत में सूत के तार के जैसा होता है। एक या दो सूत के तार से मनुष्य की गति रुकती नहीं–मनुष्य उसके बंधारण उसके संघटन तोड़ सकता है–दूर कर सकता है, परन्तु अधिक तार इकट्ठा होने से मनुष्य उसमें से छूट नहीं सकता। छोटे से कर्म का संस्कार भी वैसा है। ऐसा संस्कार शुरुआत में बहुत ही दुर्बल जैसा दिखता है, परन्तु ऐसे बहुत कृत्य इकट्ठा होने से एक ही प्रकार के कई संस्कार इकट्ठा होने से, मनुष्य का स्वभाव उस संस्कार के अनुसार होता है। ऐसे स्वभाव को 'प्रकृति' ऐसा नाम भी दिया है। इस प्रकार से कर्म से संस्कार और भविष्य में संस्कार–स्वभाव, प्रवृत्ति के अनुसार कर्म, ऐसी एक श्रृंखला चलती रहती है। इस प्रकार कर्म और उसका संस्कार एक प्रकार का चक्र है। यह चक्र मनुष्य के भविष्य का नियामक है। इस चक्र का सही स्वरूप और उसके नियमों की सही समझ से मनुष्य अपने भविष्य की उन्नति का खुद ही विधाता बन सकता है:–

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।। ३–२७

मनुष्य के सर्वकर्म उसकी प्रकृति–उसका स्वभाव–उसके संस्कार समूह के अनुसार हुआ करते हैं। जो मनुष्य ऐसा मानते हैं कि प्रकृति के अलावा पिछले कर्म संस्कार से स्वतंत्र रूप से–मैं ही कर्म करता हूँ, तो वह व्यक्ति विमूढ़ है।

देवों के भी देव इन्द्र से लेकर मनुष्य, अन्य प्राणी और एक पेट के बल चलते हल्के से हल्के निम्न से निम्न कीड़े को उसकी जिन्दगी के दरम्यान जो सुख दुःख होता है वह तमाम उसके अपने शुभाशुभ कर्म का फल है। अकस्मात या देव के कोप जैसा इस दुनिया में कुछ भी नहीं है। परमेश्वर ने–ईश्वर ने दुनिया में चातुर्य वर्ण की व्यवस्था की है। उस सम्बंध में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि :–

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्धय कर्तारमव्ययम्।। ४–१३

गुण और कर्म के अनुसार मैंने चारों वर्णों को उत्पन्न किया है। अच्छे गुण और अच्छे कर्म से मनुष्य उच्च वर्ण में उत्पन्न होता है वैसे हल्के निम्न वर्ण में–अवनति में उत्पन्न होने का कारण उसका अपना ही कर्म है।

कर्म की उसके कर्ता पर कैसी और कितनी असर होती है वह हमने देखा। मनुष्य पर आ पड़ने वाला प्रत्येक सुख–दुख उसके अपने ही शुभाशुभ कर्मों का परिणाम है। मनुष्य के भविष्य का सुख–दुख का आधार भी दैव पर नहीं परंतु मनुष्य के कर्म पर रहता है। मनुष्य का प्रत्येक छोटा–बड़ा कर्म वह उसके भावी संघटन में एक प्रकार की एक ईंट है। मनुष्य अपनी इच्छानुसार अपने भावी वातावरण–भावी सुख–दुःख भावी अच्छा या खराब जन्मस्थान निश्चित करता है। कर्म के यह नियम जगत की कोई आधुनिक विज्ञानशास्त्र के नियम से भी अधिक चौकस हैं। कर्म यानी क्या उसका कैसे फल आता है उसके संस्कार से मनुष्य अपना भावी कैसे प्रत्येक क्षण बनाता है उस सबका पद्धति अनुसार विचार करने से मनुष्य अपने भावी का नियामक बन सकता है।

मनुष्य की अपनी जात पर कुछ कर्मो का क्या असर होता है वह हमने देखा। कर्म के सिद्धान्त का यह एक पक्ष, एक तरफ का परिदृश्य है। मनुष्य के तमाम कर्म केवल कर्ता को ही असर करते हैं ऐसा नहीं। मनुष्य के काफी कर्म उसके आसपास के मनुष्यों पर समाज पर विश्व पर भी असर करते हैं वैसे ही समाज की, विश्व की प्रत्येक मनुष्य पर भी असर होती है। इस प्रकार व्यक्ति और समष्टि, मनुष्य और समाज की एक दूसरे पर कैसी तथा कितनी असर होती है तथा एक दूसरे पर परस्पर कैसा सम्बंध है उस विषय पर इस प्रकरण के बाद के प्रकरणों में विचार किया जाएगा।

❑

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकरण—१०

पुण्य, पाप, कर्म और समाज व्यवस्था

प्रत्येक मनुष्य, प्रतिक्षण अपने छोटे बड़े प्रत्येक कार्य से अपने वर्तमान सुख—दुख का, अपनी भावी उन्नति व अवनति की नींव रखता है, उतना ही नहीं परन्तु पूरे समाज का वर्तमान तथा भावी सुख—उन्नति तथा अवनति का जैसे जाने—अनजाने विधाता (Creator) बनता है। प्रत्येक युग की—प्रत्येक जमाने की हर एक देश की— हर एक राष्ट्र की उन्नति तथा अवनति, उत्पत्ति, आबादी और विनाश, वह कोई दूर बैठै हुए देव, नहीं जान सके वैसे अटपटे और गूढ़ नियमों के आधार पर निर्माण नहीं हुई है। प्रत्येक देश की, प्रत्येक राष्ट्र की उन्नति (Prosparity), प्रत्येक देश में बसने वाले नागरिकों के शुभ प्रयासों का—सत्कर्म स्वदेशाभिमान के कार्यों के जोड़ जैसा है; दूसरे शब्दों में कहें तो देशरूप समष्टि की उन्नति का आधार वह देश में बसने वाले व्यक्तिगत नागरिकों के सत्कार्य पर—परोपकार पर—पुण्य पर आधार रखती है।

प्रत्येक कार्य—कर्म का असर उसके कर्ता पर होता है वह तो हमने पिछले प्रकरण में देखा है। प्रत्येक कार्य का असर समाज पर—दुनिया पर— विश्व पर कैसी और कितनी होती है वह अब देखना है। जैसे मनुष्य का प्रत्येक कार्य परोक्ष या अपरोक्ष रीति से समाज—सृष्टि—विश्व पर असर करता है, उसी प्रकार पूरे समाज की—समाज के वातावरण की—प्रत्येक मनुष्य पर भी असर होती है। जैसे प्रत्येक मनुष्य अपना व्यक्तिगत स्वार्थ त्याग, परोपकार—सत्कार्य से समाज के वातावरण में अच्छा बदलाव ला सकता है, उसी प्रकार समाज के अच्छे वातावरण से शुभ वांछना से व्यक्ति की, प्रत्येक मनुष्य की उन्नति का मार्ग सरल और सुखकर हो सकता है। इस प्रकार समाज की उन्नति में प्रत्येक मनुष्य अपना जो व्यक्तिगत योगदान (कॉन्ट्रीब्यूशन) करता है वही ब्याज के साथ में मनुष्य को उसकी उन्नति में मदद करने के साधन रूप में समाज की तरफ से वापस मिलता है। समाज के प्रत्येक मनुष्य पर हुए असर और प्रत्येक मनुष्य के कार्य की समाज पर कैसी और कितनी असर होती है, कब होती है और उसका क्या परिणाम आता है इस विषय में प्रारम्भ में ही प्रत्येक अभ्यासी को विचार करने की जरूरत है; ऐसे विचार से और उसके अनुसार निकाले हुए सिद्धान्तों के आचरण से समाज की अव्यवस्था दूर होती है, और समाज में सुव्यवस्था की स्थापना होती है। सुव्यवस्थित हुआ समाज, वह समाज मनुष्यों को सुलह एकता और शान्ति के सुख देता हैं। मनुष्य को—अभ्यासी को संतोष—सहकार—सुलह और शान्ति मिलने से उसकी उन्नति में अवरोध करने वाले तत्व अपने आप दूर होते हैं और अभ्यासी थोड़े समय में बहुत मेहनत के बिना अपनी उन्नति साध सकता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दुनिया के प्रत्येक धर्म, प्रत्येक सम्प्रदाय, प्रत्येक पंथ को देखने से पता चलेगा कि उसमें थोड़ा बहुत अन्तर है ऐसा अन्तर होने के बावजूद प्रत्येक धर्म एक बात में तो सहमत होते ही हैं। समाज की सुव्यवस्था बनाये रखना यह प्रत्येक धर्म, प्रत्येक सम्प्रदाय प्रत्येक राज्य की पद्धति का मुख्य आशय होता है। समाज की सुव्यवस्था बनाये रखना प्रत्येक धर्म प्रत्येक सम्प्रदाय प्रत्येक राज्य पद्धति का मुख्य उद्‌देश्य होता है।

समाज को सुव्यवस्थित रखने वाले प्रत्येक कार्य को हर एक धर्म ने अलग–अलग शब्दों में अलग नाम से सराहा है। जो समाज में अव्यवस्था करे–समाज की सुलह शान्ति का नाश करे वैसे प्रत्येक कार्य को हर एक धर्म में निन्दित किया है। नाममात्र में ऊपर छल्ला फर्क है परंतु वस्तुतः तत्व में हर एक धर्म सहमत होते हैं।

समाज में सुव्यवस्था करने वाले कर्म को कुछ एक ने त्याग, कुछ एक ने परोपकार, कुछ एक ने तप, कुछ एक ने सन्यास, कुछ एक ने धर्म, कुछ एक ने कानून, कुछ एक ने नीति आदि अलग–अलग नाम से सम्बोधित किया है। समाज में अव्यवस्था करने वाले प्रत्येक कर्म को कुछ एक ने अनीति, अधर्म, पाप आदि अलग–अलग नामों से निन्दित किया है।

कर्ता के कर्म की सृष्टि पर होती असर और सृष्टि की कर्ता पर होती असर के सम्बंध में–समाज की सुव्यवस्था तथा अव्यवस्था के संम्बंध में, पुण्य कर्म और पाप कर्म के सम्बन्ध में, धर्म तथा अधर्म के संबंध में–नीति और अनीति के सम्बन्ध में, भगवद्‌गीता में बहुत पद्धति से विचार नहीं किया है फिर भी इस विषय के मुख्य सिद्धान्तों पर बहुत ही अच्छी तरह से विचार किया गया है। इस सिद्धांत पर थोड़ा विचार करके अभ्यासी अपने रोज के जीवन में उतारने का प्रयत्न करेंगे, तो दुनियां की तरफ की दृष्टि, मर्यादा विशेष विशाल और सहानुभूति वाली होगी। ऐसा होने से इस जगत के जो मनुष्य अपनी उन्नति में विघ्नरूप दिखते हैं वही जगत उसकी उन्नति में–उसकी प्रगति में–उसके विकास में–उसे आश्चर्यजनक मदद करेंगे।

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अपने अवतार का उद्‌देश्य–कारण बताया हैः–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। ४–७

हे भारत ? जब–जब धर्म की ग्लानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब–तब मैं–श्रीकृष्ण अवतार लेता हूँ–प्रकट होता हूँ।

श्रीकृष्ण के अवतार का समय, ऊपर के श्लोक में बताने में आया है। कृष्ण अवतार का मुख्य कार्य क्या होता है वह इसके बाद के श्लोक में बताया हैः–

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।। ४–८

साधु पुरुषों–अच्छे मनुष्यों–पुण्यशाली मनुष्यों के संरक्षण के लिए, दुष्कृत्य करने वाले–पापी–दुराचारी मनुष्यों के विनाश के लिए, धर्म के संस्थापन के हेतु मैं युग–युग में अवतार लेता हूँ।

भगवान श्रीकृष्ण के अवतार का समय, अवतार का कार्य वह ऊपर के दोनों श्लोक में दिखाया है। जब–जब धर्म की ग्लानि होती है और अधर्म का जोर बढ़ता है तब धर्म की स्थापना करने के लिए परमेश्वर को अवतार लेना पड़ता है। ऊपर के श्लोक में 'धर्म और अधर्म' बहुत महत्व के शब्द हैं। इन शब्दों पर अलग–अलग भाष्यकारों ने बहुत खींचातानी की है और अभी भी कर रहे हैं।

'धर्म' यानी कुछ एक सम्प्रदाय–कुछ एक पंथ–कुछ एक मत ऐसे संकुचित अर्थ में धर्म शब्द का उपयोग नहीं किया गया है। धर्म या नीति–राज्यव्यवस्था समाज की सुव्यवस्था। ऐसे विस्तृत अर्थ में धर्म तथा अधर्म इन दोनों शब्दों का उपयोग किया है। धर्म और अधर्म की समझ परोक्ष रूप से इसके बाद के श्लोक में दी है। जिन परिस्थिति में साधु पुरुष–अच्छे मनुष्य–न्यायी नीतिमान व्यक्तियों का संरक्षण मिले वह धर्म। जिस स्थिति में–जिस राज्य में साधु पुरुषों को दुखी होना पड़ता हो–खराब मनुष्यों का–अनीतिमान मनुष्यों का जोर बढ़ गया हो वह स्थिति–वह राज्यव्यवस्था अधर्म का परिणाम है।

पापियों के प्रति, अधर्मी के प्रति उदासीनता (Indifferance) दिखाना या रखना गीता में नहीं कहा गया। दुष्कृत्य करने वाले का विनाश किए बिना सुकृत्य करने वाले का विकास शक्य नहीं है। इस कारण से दुष्कृत्य करने वाले का, अधर्मी का, अनीतिमान का नाश करना वह भी प्रत्येक अच्छे मनुष्य का फर्ज कर्तव्य हैं। यह विचार दूसरी जगह पर भगवान श्रीकृष्ण ने विशेष रूप में स्पष्ट किया है। युद्ध से विशेष हिंसा किसी और कार्य में शायद ही होती होगी। इस प्रकार होने के उपरान्त भगवान, अर्जुन को युद्ध करने का आग्रह करते हैं। युद्ध करना अर्जुन का धर्म–फ़र्ज है और वह फर्ज नहीं निभाने से, वह कर्तव्य नहीं करने से अर्जुन को पाप लगेगा, ऐसा भी भगवान कहते हैं:–

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि।। २–३३

यह धर्मयुद्ध तू–अर्जुन नहीं करे तो तेरे स्वधर्म और कीर्ति का नाश होगा और तुझे पाप लगेगा। अपना फर्ज पूरा करने में चूक करना–भूल करना पाप। स्वधर्म नहीं करने से दुराचारी को दण्ड नहीं दिया जाता। अच्छे मनुष्य का रक्षण होता है उसी कारण से ही स्वधर्मपालन को पुण्य बताया गया है और स्वधर्म के पालन के अभाव को पाप मानने में आया है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुण्य पाप की सामान्य सम्प्रदाय मत मतान्तरों की भावना कितनी संकुचित है हम व्यवहार में देखते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता की पुण्य पाप की भावना नीति की नींव पर रचित है। इस कारण से ही वह बहुत विशाल और सर्वदेशीय होने पायी है।

स्वार्थ का त्याग और परमार्थ का स्वीकार वह भावना भी भगवद्गीता की पुण्य पाप की भावना की रचना में वर्णित है। प्रत्येक कार्य करने में मनुष्य को अपने लाभ अलाभ–जय अजय का विचार करना नहीं परंतु समाज के हित का विचार करना होता है; जिस कार्य में व्यक्ति का लाभ–अलाभ का विचार बहुत कम होता है या तो बिल्कुल नहीं होता है और समाज के लाभ के लिए जो कार्य किया हो उस कार्य से कभी पाप नहीं मिलता। इस सिद्धान्त को लेकर भगवान ने कहा है किः–

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।। २–३८

सुख–दुःख में लाभ अलाभ में जय अजय में समभाव रख तू युद्ध करने को तैयार हो; इस प्रकार करने से तुझे पाप नहीं लगेगा।

यह सिद्धान्त युद्ध जैसे महान प्रसंगों पर ही लागू होता है ऐसा नहीं, प्रत्येक मनुष्य के छोटे से छोटे कार्य पर भी यह सिद्धान्त ध्यान रखने से मनुष्य की उन्नति का वेग बहुत ही बढ़ जाता है। प्रत्येक प्राणी को उदर निर्वाह के लिए हमेशा अन्न की जरूरत पड़ती है। यह कार्य एक राजा से लेकर रंक तक प्रत्येक के घर में रोज चला करता है। अपनी स्वार्थवृत्ति को दबाने के लिए परमार्थवृत्ति को विकसित करने के लिए ऐसा सामान्य कार्य भी कैसी दृष्टि से करना और वैसे करने से क्या फल होता है यह भगवदगीता में बताया हैः–

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुंजते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात।। ३–१३

यज्ञ करने से बाकी बचा हुआ–अन्य प्राणियों को खिलाने के बाद बाकी रहे हुये भाग को ग्रहण करने वाले सन्त–अच्छे पुरुष सर्वपाप से मुक्त होते हैं। पापी मनुष्य अपने ही लिये अन्न पकाते हैं और वैसे अनाज से वे लोग पाप के भागी होते हैं। अन्न पकाने का काम तो सन्त तथा पापियों दोनों का ही समान है। सन्त–अच्छे पुरुष खुद के पकाये हुए अन्न से अन्य प्राणियों की क्षुधा शान्त करने की दृष्टिबिन्दु को भूलते नहीं हैं और उसी से उनको सन्त पुण्यात्मा कहा गया है; अन्य प्रकार के–पापियों की दृष्टि में केवल स्वार्थबुद्धि होती है उसी से उनको पापी कहा गया है।

यह विचार दूसरी जगह में भी गीता में अन्य शब्दों में बताया हैः–

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा।। ५–१०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जो मनुष्य ब्रह्म को अर्पण कर ब्रह्मार्पण बुद्धि से अपनी स्वार्थबुद्धि का त्याग कर आसक्ति को तिलांजलि देकर कर्म करता है वह मनुष्य पाप कर्म से उत्पन्न होते दुख से–कर्म की बन्धन शक्ति से लिपटा नहीं है। इस विषय को स्पष्ट करने के लिए कमल तथा पानी का उदाहरण दिया गया है। जैसे कमल पत्र पानी में रहने के बावजूद पानी से अलिप्त रहता है उसी प्रकार ब्रह्मार्पण बुद्धि से कर्म करने वाला, कर्म करने के बावजूद उससे बंधता नहीं है।

जैसे–जैसे मनुष्य उन्नति क्रम में आगे बढ़ता जाता है उसके प्रत्येक कर्म का समाज पर सीधे तथा परोक्ष रीति से विशेष असर होता है। ऐसे मनुष्य के प्रत्येक कार्य में पुण्य तथा पाप, सुख तथा दुःख पैदा करने की शक्तिविशेष होती है। समाज के अग्रगण्य नेताओं के कार्य, उस कार्य से होने वाले सीधे असर के उपरान्त सामान्य लोगों में उदाहरण के रूप में लिये जाते हैं। काफी सामान्य मनुष्य नेताओं के कार्यों का अनुकरण करते हैं। ऐसी स्थिति में जब कोई मनुष्य आता है तब उसे अपने–अपने कार्य का सामान्य लोगों पर क्या असर होगा उस पर भी विचार करने की जरूरत रहती है। इस सम्बंध में श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में कहा गया है–

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।। ३–२१

श्रेष्ठ मनुष्य–अच्छे मनुष्य–लोकनायक जो–जो करते हैं उसके अनुसार अन्य लोग भी वर्तते हैं। वे जिस बात को, जिस कार्य को प्रमाण, (अथारिटी) करने लायक कर्म मानते हैं वैसे कर्मों को लोग भी करते हैं। अपनी स्वेच्छाचारी वृत्ति को काबू में रख, अपने प्रत्येक अच्छे कार्य से लोगों में अच्छी मिसाल कायम करना, लोगों को उस सत्कार्य का अनुकरण करना सिखाना और वैसा करके जनसमाज को अच्छे कार्य की तरफ प्रेरित करना भी एक महान कार्य, पुण्य कार्य है। ऐसे मनुष्य लम्बे भाषण नहीं करते, लम्बे–लम्बे लेख नहीं लिखते, परंतु अपना जो ध्येय होता है उसे लक्ष्य में रख सत्कार्य करते हैं। ऐसे कार्य को भगवद्‌गीता में 'लोकसंग्रह' कहा है। लोकसंग्रह के सम्बंध में श्रीमदभगवदगीता में कहा है कि–

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि।। ३–२०

जनक और अन्य लोग भी कर्म करने से ही संसिद्धि को प्राप्त हुये हैं। इस प्रकार कर्म से ही संसिद्धि मिलने के कारण तू–अर्जुन भी लोकसंग्रह की तरफ दृष्टि रख कर्म कर। लोकसंग्रह की तरफ दृष्टि रखकर–लोगों का भला हो वैसे हेतु से कर्म किस तरह से करना उसका विशेष स्पष्टीकरण किया है:–

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्।। ३–२५

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे भारत ! विद्वान तथा अविद्वान के कर्म बाह्यदृष्टि से एक सरीखे दिखते हैं। जिस तरह–जितने प्रकार से–जितने जतन से–अविद्वान मेहनत करता है उतने ही प्रयास और उतनी ही जतन तथा कार्यदक्षता से विद्वान भी कार्य करते हैं। फर्क दोनों की अन्तर्दृष्टि दोनों के आन्तरिक ध्येय में होता है। अविद्वान केवल अपनी स्वार्थदृष्टि प्रधान रख कर्म करता है। केवल स्वार्थपरायण होकर कर्म करने वाला अविद्वान है। विद्वान, लोकसंग्रह की–जनसमाज के हित की तरफ दृष्टि रख कर्म करते हैं। इस श्लोक में बताये गये विद्वान और अविद्वान का भेद बहुत महत्व का है। विद्वान यानी बी०ए०, या एम०ए० या न्याय, व्याकरण, संस्कृत या अन्य दूसरी भाषा की बड़ी बड़ी परीक्षा पास किया हुआ व्यक्ति नहीं। भाषा का ज्ञान नहीं परंतु कर्ता की लोकसंग्रह की भावना तथा दृष्टि ही विद्वान का वास्तविक लक्षण है। लोकसंग्रह की भावना कितनी अधिक महत्व की है यह हकीकत समझाने के लिये भगवान श्रीकृष्ण ने अपना स्वयं का दृष्टांत दिया है। वह कहते हैं कि :–

न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानावाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि।। ३–२२

हे पार्थ ! इस दुनिया में मुझे–श्रीकृष्ण को–परमेश्वर को कुछ भी कर्तव्य नहीं है, कोई भी कर्तव्य नहीं है क्योंकि मुझे कुछ भी संपादन करना नहीं है। इस प्रकार होने के बावजूद भी मैं कर्म करता हूँ।

श्रीकृष्ण आप्तकाम है–उनको किसी वस्तु की इच्छा नहीं फिर भी उनको क्यों कर्म करना पड़ रहा है· उसके विषय में भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं बताया है:–

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्तानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।। ३–२३

हे अर्जुन ! मैं जो आलस्य को त्याग कर कर्म न करुं तो अन्य मनुष्य भी मेरा अनुकरण कर कर्म करना बंद कर देंगे। ऐसी स्थिति होने से उसका कैसा अनिष्ट परिणाम आयेगा वह भी भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है। वे कहते हैं कि :–

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः।। ३–२४

मैं श्रीकृष्ण आलसी होकर कर्म न करूं और मेरा उदहारण लेकर अन्य लोग भी कर्म न करें तो इस लोक–दुनिया–समाज की व्यवस्था नाश होगी, मैं संकरता का कर्ता होऊंगा और मेरे हाथ से ही इस समाज का नाश होगा। समाज की व्यवस्था का नाश–समाज में अव्यवस्था फैलाने का कारण रूप बनना भी बड़े से बड़ा पाप है। समाज को सुव्यवस्थित करना, समाज को सुस्थिर करना भी बड़े से बड़ा पुण्य है। समाज की सुव्यवस्था और अव्यवस्था, पुण्य और पाप–लोकसंग्रह का आधार मनुष्य के कर्मों पर है। इस प्रकार समाज की उन्नति या अवनति का

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आधार प्रत्येक मनुष्य के कार्य पर है। कर्म का इतना अधिक गौरव होने से प्रत्येक मनुष्य कर्म करने के प्रति ललचाता है, स्वाभाविक है। ऊपर के ज्ञान से मनुष्य में कर्म के प्रति उदासीनता नहीं रहती परंतु कर्म के प्रति उसकी प्रवृत्ति होती है। जब यह स्थिति आती है तब अभ्यासी में कर्म करने की बहुत इन्तजारी होती है। कर्म करने की तमन्ना होती है, कर्म करने का उसका उत्साह बढ़ता है। बढ़ते हुए इस उत्साह को यदि योग्य दिशा और योग्य मार्ग में बहने का मौका मिले तो अभ्यासी की उन्नति होती है, परंतु यदि उत्साह विपरीत दिशा में जाए तो उन्नति की बात तो दूर रही, अवनति भी होती है। इस प्रकार की हकीकत होने से भगवान ने अर्जुन को जब, जहाँ जहाँ कर्म करने का बोध दिया है वहाँ वहाँ सावधानी रख नियत कर्म स्वकर्म–स्वधर्म या तो वैसे ही अन्य शब्द का उपयोग, कर्म करने के बढ़ते हुए उत्साह को विपरीत मार्ग पर जाते रोककर सही दिशा तथा हितकारक मार्ग की तरफ मोड़ने के लिए इस्तेमाल किया है।

दुनियां के प्रत्येक मनुष्य में कार्य करने का उत्साह बढ़े यह समाज की उन्नति के लिए बहुत जरूरी है सही, परतु उससे भी अधिक महत्व की बात तो प्रत्येक मनुष्य अपना धर्म क्या है। अपना करने लायक कर्म क्या है यह बराबर समझे वह जरूरी है। इस कारण से भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि :–

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।। ३–३५

परधर्म अन्य मनुष्यों के करने वाले कार्य अधिक अच्छा करने में आया हो, उसके बदले बहुत विगुण हो–कम गुणवाला हो तो भी स्वधर्म–प्रत्येक व्यक्ति को अपना नियत कार्य करना, अधिक अच्छा है। स्वधर्म का पालन करते मृत्यु हो तो वह भी श्रेयस्कर है। परधर्म पराया धर्म–दूसरे मनुष्य का फर्ज, जो कार्य अपना न हो वह करना तो भयावह–जोखिमकारक है। कर्मयोग के अभ्यासी के लिए यह चेतावनी बहुत महत्व की है। मनुष्य में कर्म करने की अपूर्व शक्ति होने के बावजूद उस शक्ति का योग्य रास्ते–स्वधर्मपालन में उपयोग न होकर, मोहक दिखने वाले परधर्म के आचरण में शक्ति का व्यय हो तो वैसा कर्म करने वाले की उन्नति नहीं होती, इतना ही नहीं परंतु उसकी अवनति होने का भय रहता है।

'स्वधर्म' और 'परधर्म' ये शब्द संकुचित अर्थ में नहीं इस्तेमाल हुए हैं। परापूर्व से–जन्म से या जाती के रिवाज से चलते आये अपने बाप–दादाओं का धर्म उतना ही स्वधर्म का अर्थ नहीं होता। ऊपर के तत्वों के उपरान्त अन्य भी कुछ तत्व स्वधर्म और पर धर्म में शामिल होते हैं। इस विषय को स्पष्ट करते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है:–

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्मज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः।। ३–८

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अकर्म से कर्म करना अधिक अच्छा है क्योंकि कर्म नहीं करने से शरीर का निर्वाह भी नही होता। अकर्म से कर्म विशेष अच्छा है उसके समर्थन में ऊपर दलील दी हुई है। अकर्म से कर्म अच्छा है यह तो ठीक है परंतु कर्म कैसा होना चाहिए कौन सा कर्म अच्छा है इस विषय का निर्णय भी ऊपर के श्लोक में दिया है। जो कर्म करना हो वह नियत (Ordained) निश्चित किया हुआ कर्म होना चाहिए।

नियत कर्म–निश्चित किया हुआ स्वधर्म जो कर्म जिस व्यक्ति के लिए निश्चित किये गये हों उस व्यक्ति के लिए वह कर्म स्वधर्म और उसके अलावा सारे कर्म उस व्यक्ति के लिए अनियत कर्म–परधर्म हैं:–

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु।। १८–४५

अपना–अपना स्वकर्म–स्वधर्म–नियत कर्म करने से प्रत्येक मनुष्य संसिद्धि को प्राप्त होता है।

स्वधर्म का, नियत कर्म का–स्वकर्म का कितना महत्व है यह हमने देखा। स्वधर्म पालन से मनुष्य अपने लिए संसिद्धि–परमसुख–परमानंद पा सकता है, इतना ही नहीं परंतु स्वधर्मपालन से समाज की व्यवस्था भी अच्छी होती है। स्वधर्मपालन से मनुष्य जगत को भी सुखी कर सकता है।

जिस स्वधर्म पालन का–स्वकर्म के अनुष्ठान का–नियत कर्म का इतना अधिक माहात्म्य है वह स्वधर्म क्या है? किस सिद्धान्त पर उसका संगठन हुआ है? प्रत्येक मनुष्य का स्वधंर्म एक हो सकता है या अलग–अलग? विशेष वस्तुस्थिति में प्रत्येक मनुष्य अपना स्वधर्म अधिक भूल किए बिना तथा सरलता से कैसे, किस रीति से निश्चित कर सके उस विषय पर इसके बाद के प्रकरण में विचार किया गया है।

❑

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकरण—११

वर्णाश्रम धर्म कर्म

सामान्य रूप से प्रत्येक जीवधारी प्राणियों का और खासकर के मनुष्य के बल बुद्धि और आरोग्य का नाप उसकीं आँख, चेहरा और उसके चेहरे के रंग वर्ण पर से नापा जा सकता है, इतना ही नहीं परंतु शारीरिक बल में होने वाले प्रत्येक न्यूनाधिक, बुद्धि की तीव्रता तथा आरोग्य की सुदृढ़ता आदि मनुष्य के प्रत्येक प्रकार के अच्छे और बुरे बदलावों के अनुसार मनुष्य के चेहरों में, आँख में, वर्ण में—रंग में क्षण—क्षण में बदलाव आते हैं। मनुष्य के हृदय में छिपी हुई गुप्त से गुप्त भावनाएँ भी मनुष्य की आँख तथा उसके चेहरे के बदलते हुए रंग से, वर्ण से मालूम हो जाती हैं।

'वर्ण' शब्द का सामान्य और सादा अर्थ (Dictionary Meaning) रंग होता है। मनुष्य के चेहरे से, मनुष्य के शरीर के रंग पर से मनुष्य के बुद्धि के बलाबल का, उसके स्वभाव के सार—असार का, उसकी वृत्ति की उच्चता का, उसकी विशेषता का, नीचता का और उसकी कार्यदक्षता का—अनुमान होने से, मनुष्य का रंग—वर्ण—रूप के तारतम्य के अनुसार अपने ऋषि—मुनियों ने मनुष्य—जाति का वर्ण विभाग, वर्णव्यवस्था की थी। वर्ण के आधार पर किए हुए इस विभाग का अनुसरण करके—मनुष्य की बुद्धि का नाप निकाल के, कुछ कार्यों के लिए स्वाभाविक रूप से ही कुछ वर्ण वाले, रूप वाले मनुष्यों की कुछ कार्य के लिए समर्थता मानी जाती रही। उनकी सर्मथता के अनुसार उनकी उन्नति करने, तथा समाज को सुरक्षित रखने के लिए, अपने ऋषि मुनियों ने—अपने धर्मगुरुओं ने अपने शास्त्रवेत्ताओं ने अपने समाज का संगठन करने वाले मनु आदि महापुरुषों ने मनुष्य के कुछ एक कर्तव्यों को निश्चित किया था। मनुष्य के वर्ण को ध्यान में लेकर सामान्य रूप से मनुष्य के जो कर्तव्य निश्चित करने में आये हैं उसका अपने शास्त्रकारों ने एक पारिभाषिक नाम दिया है। यह नाम है वर्ण धर्म (**Asignment of duties according to capacities inner nature of mankind**)। 'धर्म' शब्द का सामान्य अर्थ पुण्य पाप ऐसा होता है परन्तु वर्ण धर्म शब्द में धर्म यानी फर्ज—ड्यूटी—जवाबदारी—रिसपान्सबिलिटी अपनी उन्नति के लिए एक प्रकार का एक विशेष प्रकार का शिक्षण या तालीम ऐसे अर्थ में धर्म शब्द इस्तेमाल हुआ है।

कोई भी मनुष्य को कोई भी कार्य सौंपना हो तो वह उस मनुष्य के आरोग्य, उसके बुद्धिबल, उसके अनुभव तथा उसकी नीति वगैरह उस मनुष्य के गुणों को ध्यान में लेने की जरूरत है। बहुत बुद्धिमान हो परन्तु छोटा बालक हो तो उसे जिसमें अनुभव की महत्ता हो वैसा कर्म नहीं दिया जा सकता। वैसे ही बहुत बुद्धिशाली और बहुत अनुभवी वृद्ध पुरुषों को जिसमें बहुत शारीरिक बल की जरूरत पड़े वैसा कार्य भी नहीं दिया जा सकता।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मनुष्य एक ही है तो भी उसकी कार्यशक्ति में उसकी उम्र के अनुसार बदलाव आता है। इस प्रकार मनुष्य की उम्र उसके अनुभव और आरोग्य को ध्यान में लेकर हिन्दू धर्मशास्त्रों में मनुष्य जाति के विभाग करने में आये हैं। ऐसे विभाग को आश्रम धर्म ऐसा पारिभाषिक नाम दिया है।

'वर्णधर्म' और 'आश्रमधर्म' ये दोनों विभाग अलग-अलग दृष्टिबिन्दु से करने में आये हैं फिर भी दुनियाँ के प्रत्येक प्राणी को प्रत्येक मनुष्य को यह दोनों विभाग लागू होने से वर्ण और आश्रम के दोनों धर्मों-फर्जों को ध्यान में लेकर प्रत्येक मनुष्य का सामान्य रूप से जो फर्ज निश्चित करने में आया है उसको 'वर्णाश्रम धर्म' ऐसा नाम दिया है। इस प्रकार अपने वर्ण तथा आश्रम के धर्मों फर्जों को समझकर प्रत्येक मनुष्य जो जो कर्म करता है वह सब वर्णाश्रम धर्म कर्म होने से वर्णाश्रम धर्म कर्म कहलाते हैं।

दुनियाँ के तमाम मनुष्यों के बुद्धिबल को, अनुभव और उसकी तमाम महत्व की शक्ति का विचार करके, उसके धर्म तथा कर्म निश्चित करके उसके विभाग करना, यह वर्णाश्रम धर्म का वास्तविक रहस्य है। यह व्यवस्था मनुष्यकृत (Man made) नहीं है इतना ही नहीं परन्तु प्रत्येक मनुष्य के स्वभाव में, प्रकृति में, कुदरत में छिपी होने से भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि :-

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारमव्यम्।। ४-१३

गुण और कर्म के विभाग के अनुसार मनुष्य की बुद्धि शक्ति, सत्व, रजस, तमस गुण के अनुसार जैसे परमश्वेर ने चार वर्ण का सृजन किया है-उत्पन्न किया है-पैदा किया है। मैं उसका बाह्य रूप से कर्ता हूँ परंतु वास्तविक रूप से अकर्ता हूँ वह तू ध्यान में रख। गुण कर्म के अनुसार इस तरह ऐसे विभाग किसी मनुष्य ने नहीं किया परंतु वस्तुस्थिति को लेकर अपने आप हुए हैं और परमेश्वर उसका कर्ता है ऐसा कहा है। यह व्यवस्था परमेश्वरकृत-कुदरती (Natural) है फिर भी प्रत्येक मनुष्य की प्रकृति को लेकर-कुछ एक मनुष्यों के गुणभेद को लेकर, ईश्वर की कृपा या अकृपा नहीं होने से वास्तविक रूप से ईश्वर वर्णव्यवस्था का भी अकर्ता ठहरता है। भगवान श्रीकृष्ण इस विषय में आगे चलकर कहते हैं किः-

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः।। १८-४१

हे परंतप अर्जुन ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के प्रत्येक के कर्म उसके गुणों सत्व, रजस, तमस के अनुसार विभाग किये गये हैं। प्रत्येक मनुष्य के गुण उसके स्वभाव के अनुसार होते हैं।

वर्ण विभाग, मनुष्य के कर्मोन्नति का (Progress by stage evolution) एक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

महत्व का साधन है। वह भगवद्गीता के नीचे के श्लोकों पर से जाना जाता है:–

कृषिगौरक्ष्य वाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ।। १८–४४

स्वभाव से ही–प्रकृतिजन्य गुणों को लेकर परिचर्या–सेवा, वह शूद्रों का धर्म–कर्म है। कृषि, गोरक्षा, वैश्य कर्म–और व्यापार यह वैश्य वर्ग के कर्म धर्म हैं–

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वर भावश्च क्षात्रं कर्म स्वभाजम्।। १८–४३

शौर्य, तेज, धृति–हिम्मत, दाक्ष्यम्–दक्षता, युद्ध में अपलायनता–स्थिरता, दान, राज्य कार्यभार करने की शक्ति ये क्षत्रिय वर्ग के–वर्ण के मनुष्यों का स्वभावजन्य– स्वाभाविक गुण है:–

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।। १८–४२

शम, दम (Self control), तप (Austerity), दमन–इन्द्रिय निग्रह, शौच–स्वच्छता (Purity), क्षमा, आर्जव, सरलता या सीधापन, ज्ञान, विज्ञान और व्यवहार्य ज्ञान और आस्तिकता–ईश्वर में विश्वास ये ब्राह्मण के स्वभावजन्य कर्म हैं।

शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण यह चार वर्ण, के चतुर्वर्ण के ऊपर दर्शित कर्मों पर से पता चलता है कि मनुष्य की कर्मोन्नति के अनुसार यह वर्गीकरण वर्णव्यवस्था रखने में आयी है। मनुष्य जब मनुष्यत्व की बाल्यावस्था में (Infancy of Humanity) में होता है, तब उसकी विचार शक्ति (Thinking ability Psyche Mind) और सार–असार की विवेक करने की बुद्धि (Descrimination) बहुत विकसित नहीं होती है। इस प्रकार के मनुष्यों के लिए–ऐसी प्रकृति के मनुष्यों को बुद्धि की जरूरत पड़े वैसे कार्य नहीं दिए जा सकते। इस कारण से इस प्रकार के मनुष्य शूद्र वर्ग में मनुष्य जाति के अन्तिम से अन्तिम वर्ग में रखने में आये हैं; उनके स्वभाव के अनुसार उनके लिए सेवा का कार्य देने में आया है। शास्त्रों में अच्छे मनुष्यों के बताये अनुसार की सेवा करने से ही ऐसे वर्ग की उन्नति है।

सेवा से–सेवाभाव से कार्य करते–करते मनुष्य की बुद्धि और बल का, उसकी मानसिक शक्ति का तथा उसकी विवेक बुद्धि का विकास होता है जब इस स्थिति में मनुष्य, उसकी आत्मा आती है तब उसकी वैश्य वर्ग में गणना करने में आती है। खेती करनी हो, गाय भैंस पालना और उनको बढ़ाना तथा उसका व्यापार करना ये वैश्यों के कर्म है। व्यापार और खेती करते करते जब मनुष्य के बुद्धि की विशुद्धि होती है तब वैश्य वर्ण का जीव क्षत्रिय होता है। व्यापार में जो व्यवस्था शक्ति विकसित की होती है वह शक्ति और उच्च कार्यक्षेत्र में, राज्य के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कार्यभार क्षेत्र में अब उपयोग करने की होती है। गौ पालन में और उसके संरक्षण में जिस बुद्धिबल का उपयोग किया था और जो अनुभव पाया था वह उसे अब मनुष्य के रक्षण में–देश के रक्षण–स्वदेश के प्रति प्रेम में उपयोग में लाने का प्रसंग आता है।

क्षत्रिय वर्ण के कर्म–फर्ज आदि करते करते जो अनुभव मनुष्य को, व्यक्ति को मिलते हैं ये अनुभव उसे ब्राह्मण के उच्च वर्ग में पहुँचाते हैं। शौर्य–तेज, धृति आदि मनुष्य के स्थूल शरीर के गुणों को और अधिक विशुद्ध बनाना बाकी रहता है। तप के प्रभाव से इन्द्रिय दमन ओर उसके परिणामस्वरूप उद्भव होते इन्द्रिय निग्रह से क्षत्रिय के शौर्य, तेज, धृति और युद्ध में स्थिरता आदि सद्गुण ब्राह्मण के शम, दम, शौच, क्षमा आदि में परिणित होते हैं। इन सब सद्गुणों के साथ ब्राह्मण को गहन ज्ञान, विज्ञान तथा ईश्वर में श्रद्धा होती है– ईश्वर के अस्तित्व में उसकी पूर्ण मान्यता होती है। कर्म विज्ञान और ईश्वर की कार्यपद्धति का उसे ज्ञान होता है। इस प्रकार का ज्ञान जैसे उसकी आस्तिकता को अधिक मजबूत बनाता है, वैसे ज्ञानजन्य आस्तिकता मनुष्य के विज्ञान को आधिक स्पष्ट और दृढ़ बनाती है। वर्णाश्रम धर्म का यह एक रहस्य है।

इस प्रकार की, इस सिद्धान्त का अनुसरण करके बनायी हुई गुणकर्म को अनुसरण करके संगठित वर्णव्यवस्था, एक या दूसरे रूप में प्रत्येक देश में प्रत्येक धर्म में शुरुआत से ही थी और अब भी है। समय जाते , नाम में तथा सहज कर्म में थोड़े बदलाव हुए हैं और अभी भी होते रहते हैं परंतु उसके पीछे छिपे सत्य पर ही जगत की सर्व राज़्य व्यवस्था अभी भी चल रही है। प्रत्येक राज्य को उस राज्य की प्रजा को प्रशिक्षण देने के लिए–उस राज्य की प्रजा को धार्मिक तथा नीति का ज्ञान देने वाला वर्ग वर्ण होता है। ऐसा वर्ग हिन्दूधर्म के ब्राह्मण वर्ण जैसा होता है। शम, दम, शान्ति, व ज्ञान–विज्ञान के गुणों के बिना ऐसा कोई भी वर्ग अपना कर्तव्य सही नहीं अदा कर सकता। इस कारण को लेकर ही ऐसे गुण कर्म वाले मनुष्यों को गीता में दर्शित ब्राह्मण वर्ण में ही गिना जाना चाहिए। ऐसे स्वभाव वाले मनुष्यों को ज्ञान प्रचार के लिए ब्राह्मण वर्ण के कार्य के लिए ही प्रत्येक देश में पसन्द करने में आया है।

ब्राह्मण वर्ण देश की प्रजा को पढ़ाकर उसे प्रशिक्षित करके उनमें न्याय और नीति के उच्च संस्कार डालकर समस्त प्रजा की उन्नति करता है। परंतु देश के बाहर के अनार्य दुश्मनों से रक्षा करने के लिए एक लड़ाकू वर्ग की जरूरत है। यह लड़ाकू वर्ग ही क्षत्रिय वर्ग है। क्षत्रिय वर्ग पूरी राजव्यवस्था से देश में बसी प्रजा का परदेश की अनार्य प्रजा (Uncivilised Population) से देश का रक्षण करते हैं।

ब्राह्मणों के अपने बुद्धिबल से सुशिक्षित की हुई और क्षत्रियों के अपने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

बाहुबल से सुरक्षित की हुई प्रजा के जीवन निर्वाह के लिए जरूरी धनधान्य उत्पन्न करने का फर्ज–कृषि कर्म का काम वैश्य–व्यापारी वर्ग पर डाला है यह वर्ग देश की खेतीबारी को आबाद करते हैं। आबाद खेतीबारी से देश का व्यापार अपने आप आबाद होता है वैसा होने से पूरे देश की उन्नति होती है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीन वर्ण के लोगों को अपना वर्णाश्रम धर्म निभाने के लिए दूसरे मनुष्यों की सेवक के रूप में सहायता की जरूरत पड़ती है। इस प्रकार त्रिवर्ण के बुद्धिबल, बाहुबल वैसे ही व्यापार वर्ग से रक्षित और पोषित शूद्रवर्ग अपने तन–मन से त्रिवर्ण की सेवा करे और वैसा करके अपनी उन्नति साध सकता है। इस प्रकार चातुर्वर्ण व्यवस्था चार वर्ण–वर्ग की व्यवस्था से आर्यावर्त की उन्नति हुई और दुनियाँ की प्रत्येक प्रजा मे उसे उच्च स्थान मिला। आर्यावर्त की उच्चस्थिति उसकी वर्णव्यवस्था की आभारी थी। वर्णव्यवस्था का सही अर्थ समझने के लिए तथा उसके पीछे छिपा रहस्य समझने के लिए वर्णव्यवस्था की विरोधी स्थिति का तथा उसके परिणाम का अवलोकन करने की जरूरत है। इस प्रकार के मुकाबले से हम विरोधी स्थिति का ज्ञान पाकर उससे बच सकते हैं। वर्णव्यवस्था की विरोधी स्थिति का नाम है 'वर्णसंकरता'। वर्णसंकरता कब उत्पन्न होती है उसका क्या असर होता है और वर्णसंकरता से एक कुल की, एक प्रजा की, एक देश की कैसी अधोगति होती है उस विषय में गीता में काफी विवेचन किया है। वर्णधर्म की नींव जाति धर्म तथा कुलधर्म पर है यह भी नीचे के श्लोक से स्पष्ट है:–

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसङ्करः।। १–४१

अधर्म के आचरण से वर्णधर्म के अनुसार कर्म के लोंप होने से कुटुम्ब की स्त्रियाँ, भावी प्रजा की जननी, दोष वाली होती हैं। स्त्रियों की क्षेत्रशुद्धि नहीं कर पाने से वर्णसंकर की उत्पत्ति होती है। कुटुम्ब के मुख्य, पुरुषों के, धर्माचार और पापाचार का असर घर के प्रत्येक मनुष्य पर और खासकर कुटुम्ब की स्त्रियों पर विशेष होता है। अधर्म यह एक प्रकार का छूत लगने वाला रोग है। कुटुम्ब के एक भी मनुष्य को यदि वह लग जाता है तो दूसरा भी उससे संक्रमित हो जाता है।

वर्णव्यवस्था से जैसे कुटुम्ब की और देश की उन्नति होती है उसी प्रकार वर्णसंकरता से कुटुम्ब की तथा देश की अवनति होती है। देश से कुटुम्ब का नजदीक का सम्बंध होने से वर्णसंकरता का तात्कालिक असर अपने कुटुम्ब और नजदीक के सगे पितरों पर होता है। इस सम्बंध में कहा है कि :–

सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः।। १–४२

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वर्णसंकरता कुलघातक–कुल को नाश करने वाली होती है और उससे कुल को नरक में वास मिलता है। ऐसे कुटुम्ब के पितरों को भी पिण्डोदक क्रिया से लुप्त होने से वे अधोगति को पाते हैं:–

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकैः।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः।। १–४३

वर्णसङ्करता के दोषों से कुटुम्ब के सनातन जातिधर्म, तथा कुलधर्म का नाश होता है। ऐसे कारणों से ऐसे वर्णसङ्करों को कुलघातकों को–कुटुम्ब को नाश करने वाला कहा गया है। जातिधर्म तथा कुलधर्म का नाश कैसे खराब असर करता है उस सम्बंध में कहा है कि :–

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम।। १–४४

हे जनार्दन! जिसके कुलधर्म नाश होते हैं वैसे मनुष्यों का नरक में वास होता है ऐसा हमने सुना है।

वर्णसंकरता का मुख्य कारण अधर्म का आचरण और अधर्म के आचरण से, पाप आचरण से स्त्रियों में दोष आ जाता है। स्त्रियाँ भविष्य की प्रजा की जननी हैं और उस कारण से उनमें आए हुए दोषों से भावी प्रजा, उन स्त्रियों की सन्तान दोष वाली होती हैं। मनुष्य का पहला शिक्षण घर का ही प्रशिक्षण है और वह कुल की स्त्रियों द्वारा ही दिया जाता है। योग्य शिक्षण के अभाव में बालकों में योग्य गुण नहीं आते। ऐसा होने से वर्णधर्म का सही रहस्य वे लोग नहीं जान पाते हैं और ऐसा होने से समय उपरान्त उनमें वर्णव्यवस्था के बदले वर्णसंकरता आती है। वर्णसंकर अपने सनातन जातिधर्म तथा कुलधर्म बराबर नहीं अदा कर सकता। परम्परा से करते आये जातिधर्म तथा कुलधर्म के नाश से कुटुम्ब के सुख का–शान्ति का नाश होता है। यह सुख शान्ति के नाश होते कुटुम्ब में दुःख द्वेष और क्लेश पैदा होता है। यह स्थिति नरक के समान है। दुःखी कुटुम्ब समाज को दुख रूप होता है और समाज के सड़न जैसा है। इस प्रकार समयान्तर मे सुख में कमी होती है और दुःख बढ़ता जाता है। यह सब वर्णव्यवस्था के अभाव और वर्णसंकरता के प्रभाव के कारण ही है। वर्णधर्म पर आजकल कितने कुछ समय से काफी प्रहार होने लगे हैं। वर्णधर्म पर होने वाले कुंछ एक आक्षेप, हाल की परिस्थिति को देखें तो बिल्कुल गलत हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता परंतु वह सब सही हैं वैसा भी स्वीकार नहीं किया जा सकता। गुण कर्म के अनुसार पहले वर्णाश्रम धर्म था। जबसे जन्म के अनुसार वर्णाश्रम धर्म बना तब से जन्म को ही प्रधान स्थान दे गुणकर्म का ध्यान नहीं दिया जाता उसी से वर्णाश्रम धर्म पर आक्षेप होने लगे हैं। वर्णाश्रम धर्म का रहस्य इस समय एक तरफ रख दें–अलग कर दें तो भी अलग–अलग जाति और उसके भी छोटे–छोटे विभाग पड़ गये हैं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
और उसके कारण झगड़े भी अधिक बढ़ गए है, इतनी हद तक वर्णाश्रम धर्म में बदलाव लाने की जरूरत है। वर्णाश्रम धर्म में आजकल कितनी त्रुटियाँ आ गयी हैं। त्रुटियों को दूर करना वर्णाश्रम को उसके अपनी पुरानी प्रतिष्ठा पर लाना यही सही रास्ता है। कुछ त्रुटियों के कारण पूरी वर्णाश्रम व्यवस्था ही तोड़ देनी पड़े तो वह दर्दी का दर्द मिटाने के बदले उसे मार डालने जैसा होगा।

गुण और धर्म के ऊपर आधारित वर्णाश्रम धर्म के अनुसार आचार और व्यवहार रखने वाले शुद्ध और संस्कारी माता–पिता के बालक, बीज शुद्धि और क्षेत्रशुद्धि के कारण जन्म से ही संस्कारी होते हैं। ऐसे बालकों को वंश परम्परा की बुद्धि का लाभ मिलता है। जन्म से ही पड़े हुए उच्च संस्कार, संस्कारी कुटुम्ब के वातावरण से पोषित और संस्कारी माता–पिता से और सुदृढ़ होते हैं। ऐसा होने से बालक भविष्य में जैसी जिन्दगी उसे बितानी होती है उसके लिए वह अपने आप प्रशिक्षित होता है। आजकल के जमाने में जिसे हम लोग अपने व्यवसाय का प्रशिक्षण कहते हैं वह उसे अपने आप मिलता है। हाल की शुक प्रशिक्षण पद्धति के अनुसार प्रशिक्षित युवक जैसे काफी धंधों के लिए पाठशाला छोड़ने के बाद अव्यावहारिक दिखते हैं वैसा शुद्ध वर्णव्यवस्था में होना मुश्किल है।

पश्चिम के कुछ एक सुधारको ने हिन्द की वर्ण व्यवस्था की तरफ अनमना नापसन्दी दिखायी है परन्तु सही रूप से विचार करने से यह पता चलता है कि उनकी ऐसी वृत्ति वह उनके अज्ञान को ही आभारी है। पश्चिम के जिन देशों ने प्रगति की है वे लोग अभी भी चातुर्वर्ण जैसी व्यवस्था अपने समाज में रखते हैं। मनुष्य के विकास में वंश परम्परा के गुण महत्व का भाग अदा करते हैं। वह विज्ञान की दृष्टि से देखने से भी सत्य है–परखने से भी सत्य है, ऐसा पता चला है। इस कारण से कुत्ते, घोड़े, बैल वगैरह जानवरों में उनकी नस्ल देखी जाती है और प्रत्येक औलाद को जैसा जितना बन सके उतना शुद्ध रख वर्णसंकरता से उसको संभालकर बचाने में आता है। इस प्रकार करने से प्रत्येक जाति की उम्दा और उपयोगी विशेषताओं को विकास करने में आता है। इस सत्य की झांकी पश्चिम की प्रजा को अभी हुई है। वह सत्य हिन्दू शास्त्र के ऋषि–मुनियों ने पहले से ही देखा था, उतना ही नहीं हिन्दू समाज में वर्णव्यवस्था की व्यवस्था पर उसे बारीक रूप भी दिया था।

हिन्दुस्तान में प्रसरित वर्णव्यवस्था से हिन्दू समाज कुछ एक भयंकर रोगों से सामाजिक बुराइयों से बचा हुआ है। उसेका सही ख्याल लाने के लिए पश्चिम की समाज व्यवस्था का अन्तः निरीक्षण करने की जरूरत है। गर्मी (सिफलिस) आदि कुछ एक रोगने पश्चिम में घर बना लिए हैं। ऐसे महान रोगों से हिन्द बिल्कुल मुक्त नहीं रंह सका परन्तु परिमाण में ऐसे रोगों का उपद्रव यहाँ अभी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कम है। कुछ उसका फैला हुआ हो वह भी वर्णव्यवस्था के बन्धनों के शिथिल होने के कारण ही हुआ है। तलाक से उत्पन्न होने वाले कुटुम्ब पर खराब असर से आजकल पश्चिम का समाज बिल्कुल कलुषित हो गया है। हिन्दुस्तान में उसके मुकाबले (Comparision) में स्थिति थोड़ी बहुत ठीक है। यह और ऐसे अन्य महान उपद्रवों से यदि हिन्द की प्रजा बची है तो वह उसकी वर्णव्यवस्था को लेकर ही है।

वर्ण व्यवस्था के साथ आश्रम व्यवस्था करने से व्यक्ति की और समाज की उन्नति का वेग बहुत बढ़ जाता है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास ये चार आश्रम हैं। आश्रम की व्यवस्था भी व्यक्ति की कर्मानुसार उन्नति के लिए महत्व की है।

ब्रह्मचर्य आश्रम में मनुष्य ब्रह्मचर्य का पालन कर भविष्य के लिए आवश्यक शारीरिक बल का सम्पादन करता है, उतना ही नहीं, परंतु अपने वर्ण धर्म के अनुसार पद सम्पादन करके अपने जीवन को विशेष उच्चगामी बनाता है। ब्रह्मचर्य आश्रम में की हुई गुरु की सेवा, वृद्ध के प्रति सम्मान, सादा और सरल जीवन, ब्रह्मचारी को आगे के जीवन के लिए बहुत उपयोगी होता है।

ब्रह्मचर्य आश्रम में सम्पादन किया हुआ शारीरिक बल तथा विद्या बल गृहस्थ जीवन में उपयोग करने में आता है। गृहस्थाश्रम में मनुष्य को अपने कुटुम्ब की आजीविका चलानी होती है जिससे वह स्वार्थ त्याग का–परमार्थ का बोध पाठ पाता है–सीखता है। गृहस्थाश्रम में से मनुष्य वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करते हैं। यह भी एक प्रकार का त्याग है। अन्त में मनुष्य सन्यास आश्रम में प्रवेश करता है। कुटुम्ब की, जाति की संकुचित भावना का त्याग कर वे दुनियाँ के सभी मनुष्यों को अपना कुटुम्बी मानने की विशाल भावना को स्वीकार करते हैं। संन्यास आश्रम में वह समाज के पास से जीवन निर्वाह के जरूरी साधनों के अलावा और किसी की आशा नहीं रखते और उसके बदले में अपनी उम्र और अनुभव को लोककल्याण के अर्थ में–जनहितार्थ अर्पण करते हैं।

चातुर्वर्ण व्यवस्था के माफिक चार आश्रमों की व्यवस्था का सिद्धान्त भी केवल हिन्दुस्तान में नहीं बल्कि सभी देशों में है। वर्ण व्यवस्था जैसे अपने शुद्ध स्वरूप में नहीं रही, वैसे आश्रम व्यवस्था भी छिन्न–भिन्न हो गयी है। वर्ण व्यवस्था के बंधन टूटने से जितनी हानि हर एक देश को होती है उतनी हानि आश्रम व्यवस्था के भंग से भी होती है। जिस देश का विद्वान, वयोवृद्ध और अनुभवी वर्ग संन्यास आश्रम में समाज को निःस्वार्थ बुद्धि से अपने ज्ञान और अनुभव का लाभ देता है वह देश अपने आप उन्नत होता है, यह स्वाभाविक है। प्रत्येक देश की उन्नति उसकी विद्या और अनुभवी वर्ग के–संन्यास आश्रम की सेवा पर ही आधारित है। मनुष्य चाहे जिस वर्ण का हो–ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वैश्य हो, शूद्र हो तो भी यदि वह अपने वर्ण आश्रम का सम्पूर्ण ज्ञान सम्पादन करके उस ज्ञान को पूरी जिन्दगी में व्यावहारिक रूप दे, अपनी जिन्दगी दरम्यान प्राप्त अनुभव को अपनी जिन्दगी के आखिरी वर्षो में जनसमाज के हित के लिए समाज के चरण में धरता है तो दुनियाँ के ज्ञान में उसकी कला और उसके कौशल में काफी अधिक बढ़ावा होगा यह निर्विवाद है। दुनियाँ में जो कोई भी उच्च प्रकार का ज्ञान कला तथा कौशल है वह ऐसे संन्यासियों की निःस्वार्थ सेवा को ही आभारी है। वर्णाश्रम का गीता में अलग–अलग जगह पर अलग–अलग नाम दिया है। वर्णाश्रम धर्म के अनुसार प्राप्त होने वाला कर्म प्रत्येक मनुष्य को सही–उसकी प्रकृति के अनुसार उसके गुण के अनुसार होने से उसे स्वकर्म कहा है (१८–४५) वर्णाश्रम धर्म के अनुसार कर्म वर्णाश्रम कर्म वह हर एक मनुष्य का सही धर्म होने से वैसे कर्म को स्वधर्म (२–३१) भी कहा है। अपने शास्त्रकारों ने निश्चित किए हुए वर्णाश्रम धर्म के अनुसार प्राप्त होने वाले कर्म को नियत कर्म (१८–७) ऐसा नाम भी दिया है। अपना वर्णाश्रम कर्म करना प्रत्येक मनुष्य का फर्ज होने से ऐसा कर्म कुछ एक जगह पर धर्म ऐसा भी नाम देने में आया है।

प्रत्येक राज्य व्यवस्था में कुछ एक को अधिक महत्व का, अधिक प्रतिष्ठित गिना जाने वाला कार्य करना होता है जबकि दूसरे कुछ एक व्यक्तियों को उसकी तुलना में (Comparision) हल्का और कम उपयोगी दिखने वाला कार्य करना होता है। काम की महत्ता के तारतम्य से मनुष्यों की मान प्रतिष्ठा तथा अर्थ लाभ में भी भिन्नता और फर्क रहता है। इस कारण से स्वाभाविक रीति से ही समाज में सहकार और शुभ इच्छा रहने के बदले असहकार और ईर्ष्या उत्पन्न होती है। हाल के जमाने में कुछ एक राजा तथा प्रजा के बीच, सेठ और नौकर के बीच, मजदूर और व्यापारी के बीच, अमीर और आम वर्ग के बीच झगड़े ऊपर दर्शित परिस्थिति को ही आभारी हैं। एक वर्ग से दूसरा वर्गअपने आप को अधिक बड़ा या हलका मानते हैं। उसके कारण ही ये झगड़े उपस्थित होते हैं। ऐसे झगड़ों को लेकर समाज की प्रजा की उन्नति होनी रुक जाती है।

भगवदगीता में दर्शित वर्णव्यवस्था का सही रहस्य समझ, उस प्रकार से समाज का संगठन हो तो ऊपर दर्शित झगड़े उत्पन्न होने की सम्भावना नहीं रहती। ऐसा होने से देश की उन्नति बहुत जल्दी होती है हिन्दुस्तान के प्राचीन इतिहास को देखने से पता चलता है कि समाज के अलग–अलग वर्ग के बीच आजकल के जो लड़ाई झगड़े दिख रहे हैं वैसा उस समय में नहीं था।

वर्णाश्रम के इस महत्व के सिद्धान्त को भगवदगीता में बहुत अच्छी तरह से समझाने में आया है:–

श्रेयान्स्वधर्मोविगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।। ३–३५

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपने धर्म– वर्णाश्रम धर्म, विगुण कम गुण वाले होने से भी वह अन्य के अधिक गुण वाले धर्म से अधिक अच्छा–श्रेयस्कर और उन्नतिकारक है। स्वधर्म करते–करते यदि मरण भी प्राप्त हो तो भी वह अधिक अच्छा है। अन्य का धर्म– अपने गुण तथा प्रकृति के अनुकूल न होने से वह धर्म भयावह, जोखिम भरा और अवनतिकारक है।

कर्म करने में उसकी बाह्य मोहकता नहीं परंतु अपने गुण कर्म के अनुसार अपनी कर्ता की योग्यता देखना होता है–अपनी योग्यता के अनुसार किए हुए कर्म से स्वभाव से निश्चित किए हुए कर्म करने से मनुष्य की अधोगति नहीं होती। इस सम्बंध में कहा है कि :–

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्।। १८–४७

अच्छी तरह से आचारण किए हुए दूसरों के धर्म के बदले कम गुण वाला परंतु स्वधर्म अधिक श्रेयस्कर है क्योंकि स्वभाव से निश्चित किया हुआ कर्म करने से मनुष्य को पाप नहीं लगता। मनुष्य की अधोगति नहीं होती। प्रत्येक मनुष्य अपना धर्म अपना फर्ज समझे और वह समझ कर बराबर निभाये तो समाज की उन्नति होती है। धर्म में–कर्म में–फर्ज में दोष देखे वह यथायोग्य नहीं और दूसरों के फर्जों की, कर्तव्यों की बाह्य विमोहकता से विचलित हो जाए वैसे मनुष्य की स्थिति खराब होती है अपना फर्ज कर्तव्य नहीं अदा करने से वह स्वकर्म से विमुख होता है और उससे उसका अधः पतन होता है। परधर्म–अपने लिए अनुकूल नहीं वैसा धर्म–अपनी योग्यता के बाहर का कर्म अदा करने से वह उसमें निष्फल होता है। ऐसे कार्य से लोक में हँसी होती है और मनुष्य की अवनति होती है। प्रत्येक कर्म का बहुत बारीकी से बहुत सूक्ष्मता से विवेक और विचार करना सामान्य मनुष्य के लिए सम्भव नहीं है। लड़ाई में जाने वाला प्रत्येक सिपाही उसे स्वयं क्या करना यह स्वयं निश्चित नहीं कर सकता। कार्य चाहे कितना ही अच्छा हो पर उसमें कुछ न कुछ तो त्रुटि–कमी रहती है यह स्वाभाविक है। इस प्रकार की त्रुटियों के कारण यदि प्रत्येक कर्म का अपने स्वकर्म का त्याग करने में आये तो व्यक्ति और समाज आगे बढ़ ही नहीं सकता। इस कारण से कहा है कि:–

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृता।। १८–४८

जैसे अपने के साथ दोष रहा है उसी प्रकार प्रत्येक कर्म के साथ थोड़ा बहुत भी दोष का भाग रहा है परंतु सहज वर्णाश्रम धर्म के साथ प्राप्त हुआ कर्म दोष वाला है तो भी उसका त्याग नहीं करना। सहज कर्म सदोष हो तो भी उसका त्याग क्यों नहीं करें उसके लिए भी गीता में दर्शाया है। कहा है:–

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु।। १८–४५

स्वकर्म–अपने गुण कर्म के अनुसार कर्म–वर्णाश्रम धर्म के अनुसार कर्म अपने धर्म कर्तव्यों को अदा क़रने में अभिरत रहने वाले, उत्साह से कर्म करने वाले मनुष्य को सिद्धि (Perfection) मिलती है। अपना फर्ज–कर्तव्य अदा करने वाले मनुष्य को स्वधर्म पालन से संसिद्धि कैसे और किस कारण से मिलती है वह इसके बाद के श्लोक में वर्णित हैः–

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।। १८–४६

जिस परमात्मा से जिस दिव्यशक्ति से–जिस सर्वोपरि सत्ता से यह सर्वभूत–प्राणियों की प्रवृत्ति हो रही है और जिससे यह सर्वजगत व्याप्त है उस परमात्मा की, स्वकर्म से–स्वधर्म पालन से–अपना फर्ज अदा करने रूप पूजन से मनुष्य को सिद्धि मिलती है। मनुष्य सिद्ध होता है। भगवद्गीता के शिक्षण की उदारता उसकी विशालता तथा उसकी उच्चता का, ऊपर का श्लोक अद्‌भुत नमूना है। कोई भी धर्म पंथ सम्प्रदाय के लिए उसका पक्षपात नहीं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के बीच उसमें भेदभाव नहीं। इस सिद्धान्त से हिन्दुस्तान की ही नहीं परंतु दुनियाँ के प्रत्येक देश की उन्नति हुई है और अब भी होगी। सृष्टि जो ईश्वर की कृति का अद्‌भुत नमूना है तो उससें पैदा हुआ प्रत्येक प्राणी अपनी सृष्टि के प्रति, समाज के प्रति, अपना व्यक्तिगत धर्म समझे–वर्णाश्रम धर्म के अनुसार चले तो वैसे स्वधर्मपालन से ईश्वर बहुत प्रसन्न होता है। परमात्मा को प्रसन्न करने के लिए, ईश्वर की आराधना के लिए मालिक को मनाने के लिए, अपनी सुख–शान्ति पाने के लिए, साधारण मनुष्य के लिए, बुद्धि की महान पदवी पाने के लिए, स्व–धर्म वह सांदा, सस्ता, सरल परंतु अचूक उपाय है। बड़ा खर्च करके, बड़े यज्ञादि करके पद पाना मुश्किल पड़ता है। स्त्री, पुत्र, घर आदि का त्याग करने से भी जो पद सहजता से नहीं मिलता, तीर्थ, पर्यटन, व्रत, उपवास आदि से जिस सत्य की झांकी नहीं होती; महान तप से जो सिद्धि नहीं मिलती उस सिद्धि को मनुष्य केवल अपने स्वधर्मपालन से पा सकता है। यह गीता का घोष है।

स्वधर्मपालन से सिद्धि पाने के लिए मनुष्य का प्रत्येक कर्म स्वार्थपरायण वृत्ति से नहीं परंतु स्वधर्मपालन की वृत्ति से होना चाहिए। सामान्य मनुष्य के अधिकतर कर्म स्वार्थपरायण वृत्ति से होने से वैसे कर्म सकाम कर्म कहलाते हैं। स्वार्थपरायण वृत्ति के बिना केवल स्वधर्मपालन के उच्च आशय से किए हुए कर्म निष्काम कर्म कहे जाते हैं। मनुष्य की उन्नति में–संसिद्धि की प्राप्ति में सकाम तथा निष्काम कर्म कैसे तथा कितना भाग अदा करते हैं उसका विचार करने की प्रत्येक मनुष्य को जरूरत है क्योंकि ऐसा करने से मनुष्य की उन्नति का वेग बहुत बढ़ जाता है, मनुष्य को संसिद्धि की प्राप्ति बहुत जल्दी होती है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकरण—१२

सकाम और निष्काम कर्म

इस विश्व में बसने वाले तमाम प्राणियों पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि वे चाहे जिस किसी अवस्था, पड़ाव पर हों, विकासक्रम की जिस किसी अवस्था में हों (Stage of Evolution) पर वे कुछ न कुछ कर्म तो करते ही रहते हैं। सर्वशक्तिमान परमशेवर, सर्वेश्वर भी इस सृष्टि को चलाने के कार्य में हमेशा प्रवृत्त हैं। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र भी अपने—अपने नियत स्थान में घूमा करते हैं, उदय अस्त होते रहते हैं। इस कारण से भगवान ने कहा है कि :—

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वत्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।। ३—२३

मैं परमात्मा भी जो अतीन्द्रिय—आलस्य रहित होकर कर्म नहीं करूँ तो मनुष्य मेरे वर्तन का अनुसरण करेंगे और इस प्रकार जो हो परमेश्वर थोड़ा भी आलस्य करे और कर्म न करे तो उसका कैसा परिणाम आएगा वह भी नीचे के श्लोक में बताया है:—

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः।। ३—२४

मैं परमेश्वर कर्म न करूँ तो इस लोक, दुनियाँ और संसार का नाश होगा। इसके उपरान्त मैं परमशेवर संकर का अव्यवस्था का अंधाधुंधी का कर्ता बनूँ और व्यवस्था—वर्णव्यवस्था—कार्यव्यवस्था नाश होने से प्रजा का भी नाश हो समाज भी न निभ सके।

साक्षात परमेश्वर को भी कर्म करने की जरूरत है तो यदि वे कर्म करने में सहज भी आलस्य रखें तो इस सृष्टि और उसकी समाज व्यवस्था का नाश होता है। जो सिद्धान्त ईश्वर पर लागू होते हैं वही हर एक व्यक्ति पर भी लागू होते हैं। ईश्वर के कर्म करने में आलस्य से जैसे सृष्टि का नाश होता है उसी तरह ही प्रत्येक मनुष्य भी कर्म करने में आलस्य करे तो उसका, उसकी सृष्टि का और उसकी प्रजा का नाश होता है। इस प्रकार कर्म करना प्रत्येक का कर्तव्य है उतना ही नहीं परंतु वह कर्म भी आलस्य बिना और उत्साहपूर्वक करना चाहिए।

कर्म करने की शुरुआत का यानी कर्म के शुभाशुभ फल का असर भी मनुष्य के जीवन पर होता है। प्रत्येक प्रकार के कर्म के दो प्रकार के असर होते हैं। एक दृश्य (Visible) और दूसरा अदृश्य (Invisible) दृश्य यानी तात्कालिक असर कम समय में होता है, अदृश्य असर थोड़े समय के बाद होता है।

प्रत्येक कर्म—उसके कर्ता में एक प्रकार के संस्कार पैदा करते हैं। इस

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्कार के अनुसार उसकी वासना–वृत्ति उत्पन्न होती है। मनुष्य इस प्रकार के संस्कार–वासनावृत्ति का बना हुआ दैवी अंश है।

एक मनुष्य ने चोरी की। चोरी करने का कर्म खराब कर्म है यह बात सभी जानते हैं, परंतु चोरी जैसे खराब कर्म के पीछे एक चोर में एक चोरी के कार्य से, उसके कर्ता में–चोर में, कुछ एक जाति के संस्कार, अमुक वासना उत्पन्न होती है। इसलिए एक बार चोरी करने के पश्चात दूसरे समय जब प्रसंग मिलता है, संयोग मिलता है तो मनुष्य चोरी करने की तरफ जल्दी से आकर्षित होता है। संस्कार में–वासना में अपनी जाति के अनुसार मनुष्य को ऐसे काम की तरफ आकर्षित करने की खींचने की शक्ति रहती है। कर्म से उत्पन्न होने वाली ऐसी संस्कार की शक्ति, ऐसा वासना बल बहुत ही महत्व का है। प्रत्येक कर्मयोग के अभ्यासी को इस विषय में शुरुआत में ही विचार करने की जरूरत है।

जिस प्रकार चोरी, व्यभिचार, असत्य भाषण करने से वैसे प्रकार की अनिष्ट वासना उत्पन्न होती है और पोषी जाती है उसी प्रकार सत्य, दान, अहिंसा आदि सदगुणों के आचरण से मनुष्य में उस प्रकार की वासना बनती है।

मनुष्य का ऐसा कोई भी कार्य नहीं जो मनुष्य में अच्छे या खराब संस्कार उत्पन्न न करता हो। मनुष्य के छोटे–छोटे कार्य भी उसके भावी जीवन के निर्माण में बहुत ही महत्व का भाग अदा करते हैं। खाना, पीना, बैठना, उठना ऐसे सामान्य कामों से दान धर्म करना, वीरत्व दिखाना आदि महान कार्य मनुष्य के भावी जीवन पर महान असर करते हैं। हर एक कर्म से पड़ने वाले ऐसे संस्कारों की हर एक कर्म के होने वाले ऐसे अदृश्य असर से ही मनुष्य के भावी सुख–दुःख का, आलस्य का, भोग विलास के प्रकार का परिमाण और समय निश्चित होता है।

प्रत्येक मनुष्य पर प्रत्येक काम के होने वाले इस अदृश्य असर, समर्थ संस्कार अनिवार्य वासनाओं को, अलग अलग धर्मग्रन्थों में अलग अलग नाम दिए हैं। कर्म का विशेष स्वरूप देखने से पता चलता है कि 'विचार' भी मानसिक कर्म है। विचार बाह्य कर्म के शुरुआत का सूक्ष्म स्वरूप है। सद्विचार से सद मानसिक कर्म से शुभ संस्कार उत्पन्न होते हैं। शुभ संस्कार से शुभ वासना और शुभ वासना से शुभ चरित्र होता है। शुभ चरित्र सुखी होने का सीधा और सरल रास्ता है।

दुनियाँ का सामान्य मनुष्य वर्ग (Masses) कर्म और उसका शुभाशुभ संस्कार और वैसे संस्कार से होने वाली अपनी भावी उन्नति और अवनति को देख सके उतना दीर्घदर्शी नहीं होता। इस विषय का शास्त्रीय ज्ञान सामान्य मनुष्य की बुद्धि में आ सके वैसा नहीं होता।

जनसमाज के ऐसे बड़े वर्ग को कर्म के अटपटे नियम में उतरने की या उसकी खटपट में पड़े बिना कर्म की उच्चशक्ति का लाभ मिले वैसे हेतु से ही

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गीता में कर्मयोग की साधन पद्धति को दर्शाया गया है। कर्मयोग केवल बुद्धि विकास नहीं परंतु हृदय विकास है। कर्मयोग रोज के जीवन व्यवहार में उतारने का एक सिद्धान्त है। जितनी हद तक यह ज्ञान मनुष्य अपने जीवन में, व्यवहार में, आचरण में उतारता है उतनी हद तक उसका यह जीवन सुखी होने के उपरान्त उसके भावी जीवन की उन्नति का आधार भी उसी आचरण पर रहता है।

वर्णाश्रम धर्म कर्मयोग की बालपोथी है। वर्णाश्रम धर्म के अनुसार चलने वाला न जानते हुए भी अपनी स्वयं की उन्नति करता है। जैसे ट्रेन के लिए रेलवे लाइनें हैं उसी प्रकार मनुष्य की उन्नति के लिए वर्णाश्रम धर्म है। जैसे रेल की पटरी पर रेलगाड़ी चलाने वाले को इंजन ले जाने वाले को बहुत दीर्घदृष्टि रखने की जरूरत नहीं रहती उसी प्रकार वर्णाश्रम धर्म के अनुसार वर्तन–आचरण करने वाले मनुष्य भी जोखिम से बच सकते हैं। जैसे रेलगाड़ी रेलपटरी पर विशेष वेग से दौड़ सकती है उसी प्रकार वर्णाश्रम धर्म के अनुसार आचरण करने वाला अपने सत्कर्म की गति का वेग अन्य मनुष्यों से विशेष रूप में बढ़ा सकते हैं।

हाल के सुधरे हुए जमाने में जैसे बढ़ते हुए व्यापार को रेलगाड़ी से भी अधिक जल्दी चलने वाले वाहन यानी एरोप्लेन आदि की जरूरत पड़ी उसी प्रकार जनसमूह की जल्दी से उन्नति हो ऐसा विचार करने वाले ऋषि–मुनि को भी वर्णाश्रम धर्म की गति विशेष वेगवान गतिवान कैसे बने उस पर विचार करने की आवश्यकता पड़ी थी। जैसे महान शोधकों की शोध के परिणामस्वरूप एरोप्लेन आदि जल्दी चलने वाले साधनों को ढूँढा गया है उसी प्रकार जो वर्णाश्रम धर्म से होने वाली उन्नति के धीमे वेग से ऊबकर विशेष गति में प्रवृत्त होने की इच्छा रखते हों उनके लिए अपने ऋषियों ने निष्काम और सकाम कर्म ऐसे बहुत महत्व की और मनुष्य को बहुत वेग से उन्नति कराये वैसी साधन प्रणाली कार्यपद्धति तैयार रखी है।

ऐसे अभ्यासी के लिए अपने महान विचारकों और आध्यात्मिक विद्या में पारंगत ऋषि मुनियों ने कर्म के दो विभाग किए हैं। एक का नाम सकाम कर्म और दूसरे का नाम निष्काम कर्म।

'सकाम' और 'निष्काम' इन शब्दों से अधिकतर मनुष्य परिचित हैं। परंतु यह परिचय ऊपरी सतह (Superficial) का है। इस कारण से मनुष्य भुलावे में आ जाता है। मनुष्य इस भूल में न पड़े उसके लिए उसे कर्म के कीमिया को कार्यपद्धति को सही–सही सीखने तथा उस पर विचार करने की जरूरत है।

'कर्म' यानी कीमिया। जैसे कीमियागर लोहा, ताँबा आदि हल्की जाति की धातु को सोने में बदल सकता है उसी तरह निष्काम और सकाम कर्म का सही स्वरूप जानने वाले व्यक्ति जीवन के एक अति सामान्य कर्म को भी बहुत ही सुखकर, श्रेयस्कर और उन्नतिकारक बना सकते हैं। इसी लिए उसे सकाम और
CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निष्काम क्या है सकाम कर्म को निष्काम कैसे किया जा सकता है वगैरह कुछ एक कार्यपद्धति सीखने की जरूरत है। प्रत्येक कर्म चाहे वह सामान्य हो या महान तो भी वह दो रीति से किया जा सकता है। कर्म करने की दो अलग अलग रीति वही सकाम ओर निष्काम कर्म कहलाती है। एक ही कर्म हो परंतु वह अलग अलग रीति से करने से उसका असर अलग अलग होता है। इस प्रकार कर्मफल में–मनुष्य की उन्नति के वेग में फरक पडने से दो अलग अलग पद्धति की जरूरत है।

सकाम और निष्काम इन दोनों शब्दों में काम सामान्य शब्द है। इस कारण से काम क्या है यह शुरुआत में ही निश्चित करने की ज़रूरत है। काम शब्द छोटा है और सरल जैसा दिखता है परंतु सही रूप में वैसा नहीं है। भगवद्गीता के अन्दर और कर्मयोग के अन्दर 'काम' कुछ पारिभाषिक अर्थ में इस्तेमाल हुआ है। इस कारण से काम क्या है उसको शुरुआत में ही निश्चित करना जरूरी है।

'काम' शब्द की भगवद्गीता में व्याख्या नहीं दी गयी है। काम शब्द का अर्थ इतना विस्तृत और व्यापक है कि वैसे शब्द की व्याख्या देना उसके विस्तृत अर्थ को संकुचित और सीमित करने जैसा होगा।

यद्यपि काम शब्द की व्याख्या नहीं दी गयी है फिर भी प्रसंग के अनुसार काम शब्द का अच्छा वर्णन गीता में किया गया है। यह वर्णन व्यावहारिक है। इसके उपरान्त काम किसे कहते हैं यह दर्शाने के लए कुछ एक महत्व के दृष्टांतों को दिया है। ये दृष्टांत भी बहुत सादे तथा रोज के चालू व्यवहार में से लिए हैं। इस हकीकत से प्रतीत होता है कि भगवद्गीता रोज के व्यवहार में उपयोगी ज्ञान देने वाला ग्रन्थ है। रोज के जीवन व्यवहार में हर समय उपस्थित होने वाले प्रसंगों तथा आने वाली मुश्किलों का निर्णय करने में उसका उपयोग है।

काम महत्त्व का तत्व होने से उसकी उत्पत्ति का भी विचार किया गया है। इस सम्बन्ध में भगवद्गीता में कहा है कि–

सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ।। २–६२

संग से, विषयों के चिन्तन से जिस विषय का चिन्तन करने में आया हो उसके प्रति काम–उसे प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न होती है। यह इच्छा विषय प्राप्ति की तृष्णा का अवरोध होने से कामी में इच्छा वाले मनुष्य में क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से स्मृति सार–असार का विचार करने की शक्ति का नाश होता है। स्मृति के नाश होने से बुद्धि में भ्रम होकर मनुष्य का नाश होता है।

इन्द्रियों के विषय को मन से भी संग करने से उस–उस विषय को प्राप्त करने की इच्छा, तृष्णा, कामना उत्पन्न होती है। कामना हस्तगत करने में विघ्नरूप होने वाले कारण के प्रति क्रोध होता है, इस क्रोध से सार–असार का

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निश्चय करने वाली विवेक बुद्धि का नाश होता है। इस प्रकार काम की उत्पत्ति, उसका स्वरूप तथा उसका परिणाम बहुत ही संक्षिप्त में परंतु शास्त्रीय रूप से ऊपर के श्लोक में दर्शित है। गीता जैसे धर्मग्रन्थ का इस विषय का निर्णय मानस शास्त्र जैसी पश्चिम की विद्या को भी सर्वांश मान्य है। इस प्रकार धर्म और विज्ञान का कर्मयोग में सुयोग होता है।

काम यानी इच्छा, आकांक्षा, मोह, राग। काम और राग से प्रेरित कार्यपद्धति किस प्रकार की होती है उसका भी गीता में वर्णन किया गया है:–

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः।
दम्भाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः।। १७–५

काम और राग से प्रेरित मनुष्य शास्त्रों से विरूद्ध अपने को तथा दूसरों को घोर पीड़ा करने वाला तप दंभ और अहंकार से प्रेरित होकर काम करता है। कामी मनुष्य की कार्यपद्धति और जिस सिद्धान्त का अनुसरण करके कामी मनुष्य काम करते हैं वह इसलिए दर्शित किया है कि उन सिद्धान्तों को जानकर, समझकर कर्मयोग के अभ्यासी उसका त्याग कर सकें। कामी मनुष्यों की ऊपर दर्शित कार्यपद्धति से काम क्या है उसका सहज ख्याल आ सकता हैं।

काम का आश्रय करने वाले काम–इच्छा प्राप्ति को ही अपना ध्येय मानकर काम करने वाले कैसे होते हैं तथा उनकी मानसिक स्थिति कैसी होती है उसका ख्याल भगवद्गीता के देवासुर सम्पद विभाग योग नाम के १६वें अध्याय में बहुत अच्छी तरह से दिया है:–

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः।। १६–१०

काम दुष्पुर है। तृष्णा मनुष्य को खींचा ही करती है। जैसे अग्नि में लकड़ी डालने से अग्नि शान्त होने के बदले विशेष प्रज्ज्वलित होती है उसी प्रकार भोग भोगने से भोग की इच्छा–विषय लोलुपता बढ़ती जाती है। ऐसे दुष्पूर काम का आश्रय करने वाले की कार्यपद्धति का वर्णन नीचे दिया है। काम पर आश्रित, विषय लोलुपता वाले मनुष्य दंभ, मान और मद से घिरे होते है। ऐसा मनुष्य अशुचि वृत्ति वाला अशुभ निश्चयों वाला होता है क्योंकि वह और उसकी विवेकबुद्धि मोह से ढंकी होती है:–

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः।। १६–११

कामी मनुष्य अपरिमित–जिसका अन्त न हो वैसी तथा जिसका प्रलयान्त तक भी अन्त नहीं आता वैसी चिन्ताओं से ग्रसित बँधा हुआ–घिरा हुआ रहता है। ऐसे मनुष्य कामी मनुष्य निश्चयपूर्वक ऐसा ही मानते हैं ऐसा ही कहते हैं कि काम का, इच्छा का, तृष्णा का, विषय–सुख का भोग ही मनुष्य जन्म का, हमारा परम

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और अन्तिम ध्येय है। विषय–सुख को परम ध्येय मानना बड़ी भूल है। कामी पुरुष की यह मान्यता गलत है और त्याग करने में सहूलियत पड़े, सरलता पड़े इसीलिए उसका वर्णन किया है। प्रत्येक प्रकार की चिन्ता चिता के जैसी है परंतु सर्व प्रकार की चिन्ता में से विषय भोग की चिन्ता परिणाम मे बहुत ही दुखकारक होती है। काम के उपभोग को परम मानने वाले मनुष्यों की कैसी स्थिति होती है उसका वर्णन आगे किया है:–

आशापाशाशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान्।। १६–१२

कामपरायण–कामी हो उसे क्रोधपरायण–क्रोधी होना ही चाहिए यह ऊपर दर्शाया है। ऐसा मनुष्य हमेशा आशापाश तृष्णा के ततुओं से बँधा होता है। ऐसे पाश या बंधन एक या दो नहीं परंतु सैकड़ों असंख्य होते हैं। ऐसे मनुष्यों का जीवन उनके माने हुए इन्द्रिय सुख के खातिर, विषय लोलुपता के खातिर अन्याय से धन का संग्रह करने के प्रयत्न में ही व्यतीत होता है। ऐसा मनुष्य तृष्णा के तंतुओं से बँधकर खिंचता खिंचता, अन्याय से सार–असार का विचार किए बिना, धन–प्राप्ति के खातिर पागल बना आयुष्य गँवाता है। इस श्लोक का कितना भाग अपने ऊपर लागू होता है यह प्रत्येक पाठक को सोचना है और आत्मनिरीक्षण से इस श्लोक के पीछे छिपे सत्य का साक्षात्कार करें तो उसकी उन्नति बहुत वेग से हो सकती है।

कामी मनुष्य की बाह्य प्रवृत्ति के प्रकार का वर्णन करके कामी मनुष्यों की मनोदशा का चित्रण भगवदगीता में बहुत सुन्दर किया गया है।:–

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्।। १६–१३
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोहं बलवान्सुखी।। १६–१४
आढ्योऽभिजनवानस्मिकोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिता।। १६–१५

काम वाले, इच्छा वाले, तृष्णा वाले कामी मनुष्यों की विचार श्रेणी किस प्रकार की होती है उसका भी वर्णन करने की जरूरत है। कामी मनुष्य सोचता है कि आज मैंने अमुक चीज पाया है कल फिर दूसरा मनोरथ–मन की इच्छा का सम्पादन करूंगा। इतना धन तो मेरा है ही बाकी और अधिक धन मैं प्राप्त करूंगा। आज इस शत्रु का मैंने हनन किया, मात किया और ताबे किया है क़ल भविष्य में दूसरों का भी मैं हनन करूँगा ताबे करूँगा। मैं ही ईश्वर हूं, सर्वशक्तिमान हूं, मैं ही भोगी–रसज्ञ, मैं ही सिद्ध–संपूर्ण, मैं ही बलवान और मैं ही सुखी हूँ, मैं ही धनवान, मैं ही उत्तम कुल में जन्म पाया हूँ। मेरे जैसा दूसरा कोई

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नहीं, मैं सबसे श्रेष्ठ हूँ। मैं ही यज्ञ और दान करूँगा और उससे सुखी होकर आनन्द में रहूँगा। यह और इस प्रकार की विचार श्रेणी कामी को आनन्ददायक लग सकती है परन्तु तात्विक दृष्टि से देखने से यह विचार श्रेणी अज्ञान विमोहिता (Diluded by Ignorance) अज्ञानजन्य और मोह में फँसाने वाली है।

जिस मनुष्य में ऊपर की विचार श्रेणी होती है, जिसका जीवन ऊपर की विचार श्रेणी से प्रेरित होता है जिसका आचार और व्यवहार ऊपर के सिद्धान्त को अनुसरण करता है वैसे मनुष्य की आखिर में कैसी स्थिति होती है उसका वर्णन भी किया गया है:—

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृत्ताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ।। १६—१६

जैसे विषय अनेक हैं उसी प्रकार से उन विषयों की तरफ दौड़ने वाले मन की वृत्ति भी अनेक है। अनेक चित्त, अनेक प्रकार के विचारों से—अनेक प्रकार की चित्तवृत्तियों से ऐसा मनुष्य विभ्रान्त, अनेक भ्रमों में पड़ता है। अपनी—अपनी जाति में से उत्पन्न की हुई कामेच्छा रूप तंतु से, उत्पन्न हुए जाल में, आशापाश में, मोहजाल में फँस जाता है। काम के भोग में आसक्त हुआ मनुष्य आखिर में ऊशुचि—अपवित्र नरक में पड़ता है।

नरक यानी दुनियाँ के पापी मनुष्यों को उनके पाप की सजा देने के लिए परमात्मा की तरफ से निश्चित हुआ कोई स्थान विशेष, यह सनातन धर्म का नरक सम्बंध का ख्याल है। नरक की यह संकुचित और साम्प्रदायिक भावना अलग रखें और सामान्य बुद्धि को मान्य हो वैसी विस्तृत भावना ले तो भी ऊपर के श्लोक के अर्थ में कोई हानि नहीं होती।

मोहजाल में पड़े हुए मनुष्य और कामक्रोध—परायण मनुष्य अन्याय से धन संचय करते समय कई बार इस दुनियाँ के राजकीय कायदे कानूनों के जाल में भी कितनी बार इस तरह से आ जाते हैं कि उसमें से छूटने के लिए अच्छे—अच्छे मनुष्यों को भी आत्महत्या करनी पड़ती है ऐसे अनेक उदाहरण प्रत्येक देश में मिलते हैं।

कुछ एक कामी ऐसे संयोगों में, तथा ऐसी स्थिति में होते हैं कि काम तथा क्रोध परायण होकर उनके किए हुए कर्मो के लिए शिक्षा करना राज्य के सामान्य कानूनों को बहुत उपयोगी नहीं होता। मनुष्यकृत राजकीय कानून से मनुष्य बच सकता है परंतु कुदरत के नियमों को भंग करने वाले मनुष्य को कुदरत कभी नहीं छोड़ती (Violation of laws of Nature)।

ऐसे मनुष्य अपने पाप की सजा पाने के लिए सामान्य जेल में—इस दुनियाँ के राजकृत नरक में नहीं जाते परंतु अपने पाप के परिणामस्वरूप वे ऐसे भयंकर और असह्य रोग के रोगी हो जाते हैं कि उनकी स्थिति बहुत दयनीय हो जाती

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। उनका शरीर ही उनके लिए नरक से भी विशेष दुखदायक और दुःसह कारागृह में बदल जाता है। इसमें से छूटने के लिए मनुष्य मौत जैसी कोई न चाहने वाली स्थिति की भी मांग करते हैं। जिस जीवन को बचाकर रखने की प्रत्येक मनुष्य इच्छा करता है उसी जीवन का अन्त लाने के लिए प्रभु से प्रार्थना करने पर भी, माँगने पर भी ऐसे मनुष्य को मौत नहीं मिलती। ऐसे दुखी मनुष्य की स्थिति हम लोग स्वयं देखते हैं और वह नरक से भी अधिक विशेष दुखद होती है, इतने हद तक ऐसे मनुष्य की स्थिति हो जाती है।

मनुष्य ऐसी स्थिति में क्यों आ पड़ता है उसका विचार करने की जरूरत है। आशापाश से बँधा काम क्रोधपरायण मनुष्य, अन्याय से भी धन उपार्जन करने को आतुर रहने वाला मनुष्य अपनी इच्छा नहीं होने के बावजूद भी इस स्थिति को प्राप्त होता है।

जैसे कैदी स्वतत्र नहीं और उसकी इच्छा के विपरीत उसे अच्छा नहीं लगने वाले कार्य कोई भी बाहरी व्यक्ति द्वारा करवाने में आते हैं बाहर के व्यक्ति द्वारा करवाया जाता है वैसे ही आशापाश से बंधे कैदी को काम और क्रोध के कारण अपने अनमने कृत्यों को भी करना पड़ता है। अपने ही अन्दर से उत्पन्न कामतंतु से बँधे कैदी को गीता में दर्शित आत्मविचार कर्मयोग के सिवाय छूटने का एक भी उपाय नहीं। सकाम और निष्काम कर्म का विचार और उसके अनुसार वर्तन ही उसके लिए बिना मूल्य का परंतु अक्सीर औषधि है।

काम, इच्छा, तृष्णा, वासना, आशा यह दिखने में सामान्य तत्व हैं परंतु ये बहुत बलवान हैं। अग्नि पर काबू पाने से मनुष्य हजारों वाष्पयंत्र चला सकता है परंतु यदि अग्नि को छोड़ दिया जाए तो वह पूरे जगत का नाश कर सकती है। इस प्रकार काम पर काबू पाने से निष्काम काम करने से मनुष्य विश्व का विजेता हो सकता है। इस कारण से अर्जुन जैसे उच्च आत्मा को भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा है कि :—

जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ।। ३—४३

हे अर्जुन महाबाहो ! कामरूप दुर्जेय शत्रु का तू संहार कर—कामनाओं का त्याग कर। काम्यकर्म बंद कर। निष्काम काम करने वाला बन। इस प्रकार करने से तू सैकड़ों आशापाश से बँधा हुआ कैदी नहीं रहेगा बल्कि सर्वत्र फैली हुई वायु की तरह स्वतंत्र, महात्मा, योगी बन सकेगा।

काम का ग्रहण करने से, कामी होने से, काम के विषयों के अनन्त होने से मनुष्य अनेक चित्तविभ्रान्ता व्यग्रचित्त वाला होता है। कामना कम करने से मनुष्य के चित्त की व्यग्रता अपने आप कम होती है। इस कामना के त्याग से मनुष्य की बुद्धि स्थिर होती है। मनुष्य बिना प्रयत्न भी केवल कामना के त्याग से ही स्थितप्रज्ञ होता है। स्थितप्रज्ञ के लक्षण देते हुए भगवान ने कहा है कि :—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान् पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ।। २–५५

मन में रही सर्वकामना को, इच्छा को, तृष्णा को मनुष्य त्याग करता है और आत्मा से आत्मा को सतुष्ट करता है तब वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है।

आध्यात्मिक क्षेत्र में आगे बढने की इच्छा रखने वाले अभ्यासी को मन में रही सर्वकामनाओं का त्याग करने की जरूरत है। यह हकीकत गीता में कई जगह पर अलग–अलग स्वरूप में दर्शायी गयी है:–

संकल्पप्रभवान्कामां स्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामम् विनियम्य समन्ततः।। ६–२४

संकल्प से उत्पन्न हुई सर्वकामनाओं–तृष्णाओं का निःशेष सम्पूर्ण रूप से त्याग करना, सर्व इन्द्रियों को मन से धीरे–धीरे नियम में लाकर इन्द्रियों का नियमन करना, इन्द्रियों पर काबू पाना, इन्द्रिय निग्रह करना।

सकाम और निष्काम कर्म के साथ इन्द्रिय निग्रह का बहुत गहरा सम्बंध है। इन्द्रिय निग्रह बिना निष्काम होना लगभग असम्भव जैसा है। इन्द्रिय निग्रह यानी इन्द्रियों पर काबू पाना। विषयों को देख, भोग विलास के साधनों को देख, रागद्वेष वाली वस्तुओं को देख इन्द्रिय रूपी घोड़ा उस तरफ न खिंच जाए और कर्ता के, मालिक के, सारथी के काबू में रहे उसका नाम इन्द्रिय निग्रह है। इस प्रकार के इन्द्रिय निग्रह की कार्यपद्धति भी ऊपर के श्लोक में दर्शित है। जैसे सारथी लगाम से घोड़े को काबू में रखता है उसी प्रकार कर्मयोगी मनरूपी लगाम से इन्द्रियरूपी अश्वों को अपने काबू में रखता है। मन यानी सार–असार का, शुभ–अशुभ का श्रेय और अश्रेय का विचार करने की शक्ति। इस प्रकार का विचार वही इन्द्रिय निग्रह का और कर्मयोगी का अमूल्य साधन है।

काम का त्याग करने की, निष्काम होने की कितनी और किस कारण से जरूरत है उस विषय को भी अच्छी तरह समझाया है:–

आपूर्यमाणमचलंप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ।। २–७०

सब नदियों का पानी समुद्र में जाता है। इस प्रकार अलग–अलग वासनाओं कामना रूपी नदी के पानी रागद्वेष के प्रवाह में मन रूप समुद्र में मिलते हैं फिर भी मन समुद्र की तरह अचल क्षोभ नहीं पाता, वैसा रहने की, वैसी स्थिति प्राप्त करने की जरूरत है। ऐसी स्थिति प्राप्त हो तब ही मनुष्य को शान्ति सुख मिलते हैं। कामी को यह अलौकिक शान्ति की, सुख की झाँकी भी नहीं मिलती।

समुद्र तथा नदी का ऊपर का उदाहरण बहुत सुन्दर है। इस उदाहरण का मनन कर मनुष्य को दिन पर दिन वैसी स्थिति प्राप्त करने के प्रयत्न करने की जरूरत है। इस प्रकार यह प्रयत्न आसान नहीं होता परंतु इस दिशा में

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सतत और उत्साहपूर्वक प्रयत्न चालू रखा जाए तो मनुष्य को समुद्र जैसी शान्ति, गम्भीरता तथा अतुल महान सामर्थ्य की प्राप्ति होती है।

सर्वकामनाओं का इच्छाओं का त्याग, निस्पृहता ही कर्मयोग की कुंजी है। इस विषय में गीता में कहा है कि :–

निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा।। ६–१८

सर्वकामना से मनुष्य जब निस्पृह होता है तब वह युक्त हुआ कहलाता है। युक्त यानी कर्मयोग के सिद्धान्तों का निष्णात।

इन्द्रिय दस हैं, पांच कर्मेन्द्रियाँ और पांच ज्ञानेन्द्रियाँ। इन दसों इन्द्रियों के विषयों में से किसी भी इन्द्रिय के विषय की कामना, इच्छा, तृष्णा से किए हुए कर्म वह काम्यकर्म। इस प्रकार की इच्छा के बिना इन्द्रिय लोलुपता के बिना केवल कर्तव्य बुद्धि से या अन्य उच्च आशय से किया हुआ कर्म वह निष्काम कर्म कहलाते हैं। निष्काम यानी कोई भी इच्छा की या कामना की गैरहाजिरी या अभाव ऐसा नहीं। निष्काम यानी इन्द्रियों के विषय भोगरूप क्षुद्र, हल्की, क्षणिक, अनित्य परिणाम में दुखकर हो ऐसे प्रकार की कामना की, तृष्णा की, वासना की और वासना ज्वर की गैरहाजिरी।

निष्काम कर्म करने वाला ऊपर के अनुसार प्रत्येक कर्म के क्षुद्र फल को मन से बुद्धि से त्याग करता है। जैसे–जैसे क्षुद्र कामनाओं का बोझा कम होता जाता है वैसे–वैसे अभ्यासी की शक्ति और उसकी उन्नति का वेग बढ़ता जाता है। कामनाओं का त्याग दुष्कर है उस कारण कुछ एक कामना त्याग के बदले कर्म त्याग करते हैं यह मान्यता गलत है। कर्मत्याग नहीं, कर्म सन्यास नहीं, परंतु कर्म में छिपी कामनाओं का त्याग। कर्मफल त्याग करने की जरूरत है इस हकीकत को इसके बाद के प्रकरण में विशेष विवेचन किया गया है।

❑

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकारण–१३

कर्म प्रेरक उच्च आशय

जैसे–जैसे मनुष्य की उम्र में बदलाव आता है वैसे–वैसे सृष्टि के विषय में उसके मौलिक सिद्धान्तों का उसका ज्ञान विशेष विस्तृत होता जाता है। एक बीज को जमीन में बोया जाता है। प्रारंभ मे तो वह एक नन्हा–सा बीज होता हे, उसमें से एक अंकुर निकलता है समय के साथ वह अंकुर कुदरती वातावरण में से और जिस जमीन पर वह उगा है उस जमीन में से अपने विकास के लिये जरूरी तत्त्व अपने आप खींचकर विकसित होता हे। सामान्य अंकुर में से तना, डाली, पत्ते, फल–फूल आदि विकसित हो मनोहर और महान वृक्ष बनता है। वृक्ष के रूप में थोड़े या अधिक समय रहने के पश्चात प्रतिलोम क्रिया से फिर से वह बीजरूप हो जाता है। जिन पाँच तत्वों को उसने आसपास के वातवरण से प्राप्त किया था उसी वातावरण में उन तत्वों को वह फिर से अलग कर डालता है।

वृक्ष के सम्बंध में जो ऊपर का नियम है वह मनुष्य पर भी लागू होता है। सूक्ष्म शरीर, जीव, मनुष्य शरीर का बीज है। इस प्रकार के बीजरूप सूक्ष्म शरीर–जीव अपने जन्म पश्चात सृष्टि के हवा पानी तथा वातावरण और खुराक में से अपने विकास के जरूरी तत्वों को खींचकर विकसित होता है। प्रारंभ में सूक्ष्म शरीर रूप बीज में से केवल अहंभाव रूप कोपल अंकुरित होती है। अहंभाव रूप यह कोपल अंकुर, बाद में स्त्री–पुत्र, संगे–सम्बन्धी, जाति, समाज, देश और मनुष्य जाति के साथ सम्बन्ध में आता है। उसके कार्य का असर समाज, देश तथा मनुष्य जाति पर होता है। इस प्रकार जैसे एक छोटे से अंकुर में से एक महान वृक्ष होता है वैसे एक मनुष्य शरीर रूप अंकुर में से मनुष्य अपने अलग–अलग कर्म से महान वृक्ष की भांति विस्तृत होता है।

यथा पिंडे तथा ब्रह्मांडे–देह में वैसे ही देव में–व्यष्टि में वही समष्टि में। इस सामान्य सिद्धान्त के अनुसार एक मनुष्य का नहीं परंतु पूरी मनुष्य जाति का विकास चल रहा है। जैसे एक मनुष्य में बाल्यावस्था होती है उसी प्रकार मनुष्य जाति में भी बाल्यावस्था (Infancy of Civilisation) होती है। मनुष्य जैसे बाल्यावस्था में से अनुभव प्राप्त करते हुए उन्नति क्रम में आगे बढ़ता है, और उन्नति करता है उसी प्रकार पूरी मनुष्य जाति (Human race) भी धीरे–धीरे अनुभव प्राप्त करते–करते उन्नति क्रम में आगे बढती है।

मनुष्य–मनुष्य जाति जब तक बाल्यावस्था में होती है तब तक उसकी दो महान आवश्यकताएँ होती हैं भूख और प्यास। भूख और प्यास को शांत करने के तात्कालिक साधन संपादन करने में वह अपने कर्तव्य की समाप्ति मानता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

छोटा बालक भूखा या प्यासा होता है तो तुरंत रोने लगता है। ऐसे बालक को स्तनपान कराया की बस वह चुप हो जाता है। जंगली मनुष्य भी प्यास बुझाने, भूख मिटाने के लिए शिकार की खोज करते हैं इतना मिलाकर केवल स्थूल शरीर के निर्वाह के साधन मिले तो सब मिल गया ऐसा वे समझते हैं। जब तक स्थूल शरीर की आवश्यकताओं को प्राप्त करने के अलावा मनुष्य को और कोई विचार नहीं आता है तब तक धर्म और नीति का उसके लिए कोई उपयोग नहीं है।

ऐसी स्थिति का मनुष्य जब थोडा आगे बढ़ता है तो उसे स्त्री–संग की इच्छा होती है। केवल अपने स्थूल शरीर की भूख प्यास जैसी आवश्यकताओं से मनुष्य अब थोड़ा आगे बढता है–अपने स्थूल शरीर की आवश्यकताओं के उपरांत दूसरे शरीर की स्त्री–शरीर की, आवश्यकताओं को वह पूरा करने का प्रयत्न करता है–वैसा करने में जरूरी मेहनत करने के लिए अपने सुख का भोग देता है।

स्त्री और पुरुष के सहकार से संतति की उत्पत्ति होती है। संतति की उत्पत्ति होने से–दोनों स्त्री पुरुष, माता–पिता अपने सुखों का भोग अपने प्रिय बालकों के सुख के लिए देते हैं। पुत्र के प्रति वात्सल्य की उच्च भावना उनमें प्रकट होती है। पुत्र के पोषण करने के साधनों को प्राप्त करने में जो दुःख होता है उसे वे सहन करते हैं। ऐसे दुखों को वे दुःखरूप नहीं बल्कि भविष्य के सुखरूप में स्वीकार करते हैं। इस प्रकार आगे बढ़ते–बढ़ते मनुष्य अपने परिवार के लिए, अपने पड़ोसी के लिए, अपनी जाति के लिये और अंत में अपने गाँव, देश और समस्त मनुष्य जाति के सुख के लिए–उन्नति के लिए आत्मभोग देने–अपने सुख का त्याग करने और ऐसे त्याग को सुख मानने को तैयार हो जाता है।

विकासक्रम की इस अवस्था में जब मनुष्य आता है तब उसे धर्म, नीति, कायदे और शिष्टाचार आदि की जरूरत पड़ती है। धर्म और नीति के बिना एक स्थिति–प्रगति के पश्चात कोई भी मनुष्य जिस किसी स्थिति में हो तो भी वह आगे बढ़ नहीं सकता।

भगवद्गीता में अर्जुन एक ऐतिहासिक व्यक्ति होने के उपरांत विकासक्रम की एक विशिष्ट भूमिका को सूचित करने वाले व्यक्ति हैं। इतनी हद तक अर्जुन एक विशिष्ट प्रकार के मनुष्य के प्रतिनिधि रूप हैं। मनुष्य की अलग–अलग जाति है, उसमें अर्जुन भी एक खास जाति के हैं। इसलिए अर्जुन को दिया हुआ कर्मयोग का उपदेश, मनुष्य मात्र को सार–असार का विचार करने वाले प्रत्येक मनुष्य को उपयोगी है उतना ही नहीं परंतु ऐसे उपदेश और आचरण के बिना सामान्य मनुष्य एक हद से, दायरे से, आगे आसानी से नहीं बढ़ सकता।

अर्जुन एक बहुत ही आगे बढ़े हुए अधिकारी पुरुष थे। श्रीकृष्णचन्द्र जैसे साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम ने कर्मयोग का जो सिद्धान्त उसको सिखाया था और जिस

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सिद्धान्त के आचरण से अर्जुन का शोक तथा मोह नष्ट हुआ था–अर्जुन सुखी हुआ था उस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक मनुष्य आचरण करे तो वह सुखी होगा इसमें संदेह नही है।

अर्जुन कौरवों के साथ जुआ द्यूत में राजपाट हार गये। बारह वर्ष वनवास करने की शर्तो का पालन करने के बाद अर्जुन ने कौरवों से अपना राज्य वापस माँगा। कौरवों ने उसे नहीं दिया। ऐसे संयोगों में अपने सम्मान के लिए–न्याय पाने के लिए अर्जुन के पांस लड़ाई के सिवा और कोई रास्ता नहीं था।

प्रत्येक मनुष्य को स्वयं प्रामाणिक रीति से चलकर अपने हक के संरक्षण के लिए अपने प्रति हुए अन्याय के बदले न्याय पाने के लिए जरूरी बल–शक्ति विकसित करने की आवश्यकता है। जो मनुष्य अपने साथ हुए अन्याय से नाखुश होकर न्याय पाने की इच्छा तक नहीं करता–इच्छा करने जितनी उसमें समझ और शक्ति नहीं है वैसे मनुष्य को पहले तो उतनी शक्ति प्राप्त करने की जरूरत है। पहले शक्ति का विकास और उसके पश्चात संयम (Development of Power and Then Control)। बिना शक्तिके संयम वह बिना घोड़े की लगाम जैसा बेकाम है और बिना संयम के शील, वह बिना लगाम के घोड़े जैसा जोखिम कारक है। संयम के पहले शक्ति संपादन करने की जरूरत है। अर्जुन ने भी वैसा किया था। शक्ति का विकास अर्जुन ने किया था, संयम का शास्त्र सही नहीं सीखा था।

कौरव पांडव के युद्ध से अर्जुन को राज्य मिले वैसा था। राज्य मिलने से उसे सुख–ऐशोआराम–इन्द्रिय सुख मिले वैसा था फिर भी केवल राज्य वैभव के लिए लड़ना–जीना वह निरर्थक है यह अर्जुन समझते थे।

अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति। ३–१६

पापी जीवन बिताने वाले और इन्द्रियाराम, इन्द्रियों के विषय सुख भोगने में आयु व्यतीत करने वाले का जीवन निष्फल जाता है। इस सत्य की अर्जुन को झाँकी हुई थी। सामान्य मनुष्य को भी जब इस सिद्धान्त का सत्य समझ में आ जाता है तब ही उसकी वृत्ति उच्चगामी होती है तब ही वह कर्मयोग की तरफ आकर्षित होता है।

अर्जुन ने अपनी मनोदशा का वर्णन भगवद्गीता में स्वयं किया है–

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः।। १–४५

हा! राज्य सुख के लोभ के कारण स्वजन को मारने के कार्य में हम लोग प्रवृत्त हुए हैं, यह कैसी शोक की बात है। राज्य लोभ के खातिर, विषयभोग के सुख के खातिर–इन्द्रियाराम खातिर, हमारे अंगत सुख के खातिर, स्वजनों को–दूसरों को मारने के लिए हम तैयार हुए हैं, यह दुःख की बात है। अर्जुन का

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
यह आत्मनिरीक्षण हैं।

राज्य लोभ से कुरुक्षेत्र में कौरवों के साथ युद्ध में लड़ने का प्रसंग हर एक सामान्य मनुष्य के जीवन में नहीं आता है, फिर भी अन्य को मारकर–दूसरों को दुःख दे अपना सुख संपादन करना या अन्य को दुःख न देकर स्वयं तकलीफ उठाना यह प्रश्न तो प्रत्येक मनुष्य की जिंदगी में प्रत्येक समय पर उपस्थित होता है। इस प्रश्न का निराकरण भगवद्गीता में बहुत अच्छा व्यावहारिक और सुखकर दिया गया है। इस अति सामान्य और अति उपयोगी प्रश्न का उत्तर वही कर्मयोग की कुंजी है। इस सवाल का हल अर्जुन ने स्वयं अपने आप कर लिया थाः–

गुरुनहत्वा हि महानुभावाञ्श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।। २–५

महानुभाव गुरु के हनन से तो इस दुनिया में भीख माँग उदर निर्वाह करना उत्तम है, अर्जुन का यह निर्णय ऊपर की दृष्टि से उत्तम दिखता है, परंतु उसमें कमियाँ छिपी हैं (Inherent defects)। उसमें छिपी खामियों को धीरे–धीरे उजागर कर अपनी उन्नति की इच्छा रखने वाले को किन उच्च आशयों को आदर्श बनाना वह भगवान ने अर्जुन को समझाया है।

ऐसे अलग–अलग आशय उन्नतिक्रम की सीढ़ी के अलग–अलग सोपान जैसे हैं। जैसे–जैसे मनुष्य एक–एक सोपान आगे बढ़ता है वैसे–वैसे उसकी दृष्टि–विशेष विशाल होती है। दृष्टि विशाल होने से नीचे स्थित मनुष्यों ने जिस सृष्टि सौन्दर्य को नहीं देखा है उस दिव्य सृष्टि सौन्दर्य को देखने का सुख और सौभाग्य उसे प्राप्त होता है। ऐसा होने से उसकी उन्नति की गति बहुत बढ़ जाती है। कर्मयोग के अभ्यासी को इन सभी उच्च आशयों का अवलोकन कर प्रत्येक कर्म ऐसे उच्च आशय से करने की आदत डालनी चाहिए। प्रारंभ में थोड़ी तकलीफ तो पड़ेगी परंतु एक बार आदत पड़ जाने से उसे परमानंद होगा और दिव्य सुख की झाँकी होगी।

ऊपर के श्लोक से पता चलता है कि अर्जुन में राज्यलोभ के स्वार्थ से गुरु आदि पर दया की भावना अधिक प्रबल थी। दया महान गुण है परंतु गलत स्थान पर दिखाई हुई दया से कई बार बहुत दुःख होता है (Misplaced Leniency Mercy)। यह हकीकत शायद सामान्य व्यक्ति को समझ में न आए परंतु कृष्ण जैसे कर्मयोग के निष्णात की दृष्टि में यह दिखने वाला सद्गुण महान दुर्गुण के बीजरूप दिखता था।

अर्जुन क्षत्रिय थे। दयाभाव से यदि वह युद्ध न करें तो दुर्योधन जैसे कौरव बहुत दुराचारी बनें और उसके दुराचार को रोकने वाला कोई न मिले। अर्जुन जैसा धनुर्धर यदि दया से भी दुर्योधन का अन्याय सहन करे तो दुर्योधन जैसा राजा प्रजा को पीड़ा देने में कोई कसर न छोड़े। यदि अर्जुन अपने लिये न्याय नहीं प्राप्त कर सकते तो फिर प्रजाजनों को तो न्याय कहां से मिलेगा ? इस

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कारण से भगवान ने उसे कहा कि दया से–नियत कर्म स्वधर्म करना–युद्ध करना तेरे लिए–क्षत्रिय के लिये श्रेयस्कर है इसलिये भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने अर्जुन को कहा है कि :–

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते।। २–३१

हे अर्जुन ! क्षत्रिय के रूप में–तेरे वर्णाश्रम धर्म के आधार पर भी यह युद्ध तेरे लिये स्वधर्म है। इससे तुझे भयभीत होना या डिगना नहीं है क्योंकि क्षत्रियों के लिए धर्म युद्ध से अधिक श्रेयस्कर दूसरा कुछ भी नहीं है। इस प्रकार होने से तू–अर्जुन केवल अस्थान पर उत्पन्न होने वाली दया की भावना से विशेष उत्तम, स्वधर्म से उत्पन्न होने वाला युद्ध कर। दया उत्तम है परंतु उससे विशेष स्वधर्मपालन है। स्वधर्म पालन दया से भी विशेष उन्नतिकारक है।

इस विषय में आगे चलकर भगवान ने कहा है कि :–

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्मज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः।। ३–८

दया के कारण युद्ध–कर्म नहीं करने के बदले स्वधर्म बुद्धि से क्षत्रिय होने के नाते तेरे लिये नियत–निश्चित हुआ कर्म करना अधिक अच्छा है। कर्म नहीं करने से तेरी शरीर यात्रा–शरीर के निर्वाह के साधन तक भी पाने में मुश्किलें होंगी। इस प्रकार होने से तू अपने जीवन को भी सही तरह से नहीं निभा पायेगा तो फिर यह स्पष्ट है कि तेरी उन्नति समाज की उन्नति का कार्य तो हो ही नहीं सकता।

नियत कर्म–स्वधर्म–वर्णाश्रम कर्म करने के लिये अर्जुन को–मनुष्य को भगवान ने बोध दिया। अर्जुन ने समझा कि युद्ध करना तो ठीक है परंतु युद्ध में जीत के बदले यदि हार हो जाए तो क्या हाल होगा ? प्रत्येक कार्य करते–स्वधर्म का पालन करते–नियत कर्म करने के पहले प्रत्येक मनुष्य को ऐसी शंका होती है। इस प्रकार की शंका होते ही कर्म के प्रति उत्साह मंद पड़ जाता है। भविष्य में विजय नहीं मिलेगी ऐसी आशंका से व्यक्ति की कार्यशक्ति कम हो जाती है। इस प्रकार न होने पाये इसलिये अर्जुन को दूसरी कुंजी बताई जाती है:–

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।। २–३८

नियम कर्म–स्वधर्म करते समय स्वधर्म के पालन पर कर्तव्यपरायणता पर दृष्टि रखनी है। ऐसा करने से सुख हो या दुःख हो, लाभ या हानि हो, जय या पराजय हो उसमें समबुद्धि रखनी है। इस प्रकार से युद्ध करने से, कर्म करने से मुनष्य को पाप नहीं लगता, दुःख नहीं होता। कर्तव्यपरायण बुद्धि से कर्म करने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वाले का ध्येय कर्तव्य की समाप्ति होती है, स्वार्थबुद्धि से सुखी होने की, लाभ पाने की नहीं होती। कर्मयोग का यह महत्व का सिद्धान्त है।

यह सिद्धान्त महत्व का होने से गीता में अलग–अलग कई जगहों पर अलग–अलग शब्दों में समझाया है:–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संङ्गोऽस्त्वकर्मणि।। २–४७

अर्जुन का मनुष्य का अधिकार, कर्म करने में कर्तव्यपालन में रहा है। कर्म के फल में कर्तव्यपालन से उत्पन्न होने वाले शुभाशुभ परिणामों में नहीं। कर्म करने का मुख्य हेतु कर्म का फल–परिणाम नहीं परंतु कर्तव्यपालन है। इसलिये मनुष्य को अकर्म में भी संग–मोह रखने की जरूरत नहीं है।

भगवद्गीता का यह उच्च से उच्च सिद्धान्त है। दुनियाँ के प्रत्येक तत्ववेत्ता नें यह सिद्धान्त समझाया है। इस सिद्धान्त का पालन करनें से दुनियाँ देवलोक में बदल जाती है। इस सिद्धान्त को दृष्टि में रख, कर्मफल का त्याग कर, केवल कर्तव्यपरायण बुद्धि से कर्म करते कर्ता की नसों में नयी शक्ति प्रकट होती है। इस प्रकार होने से मनुष्य की कार्य करने की शक्ति में गजब की वृद्धि होती है।

इस सिद्धान्त का पालन करने में न आये तो उन्नति की बात तो दूर रही, दुनियाँ का सामान्य व्यवहार भी न चले। एक पिता की हैसियत से पुत्र को प्रशिक्षण देना पिता का कर्तव्य है, यह कर्तव्यबुद्धि पिता में पुत्रपालन करते समय न रहे, और यह पुत्र कुपुत्र निकलेगा तो मेरा क्या होगा–वैसी स्वार्थबुद्धि रखे–कर्म के माने हुए–सोचे हुए परिणाम पर दृष्टि रखें तो किसी भी माता–पिता से बाल विकास का कार्य सही रूप से हो ही नहीं सकता।

किसान का कर्तव्य खेती कर धान्य उपजाने का है। यह कर्तव्यबुद्धि–वर्णाश्रम धर्म के रहस्य न समझकर यदि किसान सोचे कि मैं खेती करता हूँ, बीज बोता हूँ, पर शायद वर्षा न हो तो ? ऐसी शंका होते ही उसका कार्य करने का उत्साह कम हो जाता है। उत्साह कम होने से कार्य नहीं होता। कर्तव्यबुद्धि से कार्य करने की कितनी महत्ता है यह ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट होगा इसलिये सिद्धि–असिद्धि में समभाव रखकर कर्म करने की जरूरत है:–

योगस्थः कुरु कर्माणि संङ्ग त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।। २–४८

सिद्धि–असिद्धि में समभाव बनाये रखना। ऐसे प्रकार का समभाव ही योग कर्मयोग कहाता है।

सिद्धि–असिद्धि में, लाभ अलाभ में–जय पराजय में–सुख दुःख में समभाव रख केवल कर्तव्यबुद्धि से–स्वधर्मपालन बुद्धि से–नियत कर्म करने से मनुष्य के अंतर के हृदय के मैल–दूर होते हैं। राग–द्वेष रूप ये हृदय के मल हैं। ऐसे मल

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वधर्मपालन से दूर होते हैं। इस कारण से ऐसे कर्म आत्मशुद्धि के लिये भी महत्वपूर्ण हैं–

कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये।। ५–११

योगी–कर्मयोगी–कर्म करने में निष्णात पुरुष संग, आसक्तियों को त्याग कर काया, मन, बुद्धि और केवल इन्द्रियों से आत्मशुद्धि के लिए कर्म करते हैं। कर्तव्य पालन एक उच्च आशय (Object) है परंतु आत्मशुद्धि उससे भी उच्च आशय है।

स्वयं शुद्ध होने के पश्चात–आत्मशुद्धि करने के बाद–प्रत्येक मनुष्य का फर्ज बनता है कि वह अन्य मनुष्यों को भी वैसा करने को प्रेरित करे। ऐसे मनुष्यों को दूसरे मनुष्य के लिए आदर्श रूप बनने की जरूरत है। स्वयं उच्च कर्म करके और वैसा करके दूसरों का आदर्श बनकर उन्हें भी उच्च आशय से क़र्म करना सिखाना यही प्रत्येक उच्च आत्मा की दैवी अभिलाषा है। ऐसे महात्माओं को कर्म करने के प्रेरक तत्व के लिये लोक कल्याण को स्वीकार करना पड़ता है।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि।। ३–२०

जनक राजा और अन्य लोग, महात्मा भी कर्म करके ही संसिद्धि को पाये हैं। इस प्रकार होने के कारण लोक कल्याण, प्रजा हित, समाज की उन्नति की तरफ दृष्टि रखकर ही तू–अर्जुन कर्म कर। कर्मप्रेरक आशयों में लोक–कल्याण यह भी एक उच्च आशय है।

जंगली अवस्था में इन्द्रियाराम–शारीरिक सुख सामान्य मनुष्य को कर्म करने को प्रेरित करते हैं। उन्नति क्रम में आगे बढ़ते इस संकुचित वृत्ति में से मनुष्य धीरे–धीरे बाहर आता है। स्वार्थ नहीं परंतु स्वधर्म–समाज के प्रति अपने कर्तव्य को लक्ष्यबिन्दु बनाकर कर्म करता है। ऐसा करते–करते वह बिन्दु भी छोड़कर केवल आत्मशुद्धि के लिये कर्म करता है। शुद्ध हुआ आत्मा अन्य को–दूसरे प्राणियों को–मनुष्यों को शुद्ध करने की इच्छा रखते हैं। ऐसे समय में लोक–कल्याण की तरफ दृष्टि रखकर मनुष्य कर्म करता है। इस प्रकार धीरे–धीरे भौतिक जगत में मनुष्य आगे बढ़ता है।

भौतिक जगत की चरमसीमा दैवी जगत की शुरुआत है। आत्मशुद्धि किये हुए अभ्यासी को जगत की सीमा लाँघकर (Crossing the boundry of the world) दैवी जगत में प्रवेश करना मुश्किल नहीं है। दैवी जगत में प्रवेश होते ही, भौतिक जगत के उच्च से उच्च आशय भी उसे निम्न–हल्के लगते हैं।

दैवी जगत के दर्शन होते ही–उसकी झाँकी होते ही आत्मशुद्धि किये हुए अभ्यासी को तुरंत लगता है कि राग–द्वेष से या स्वार्थ बुद्धि से इस सृष्टि का चक्र नहीं चलता है। कोई महान और दिव्यशक्ति की योजना निःस्वार्थी और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परोपकारी प्रवृत्ति से, यज्ञ भावना से ही यह सृष्टि चलती है। यह मान्यता होते ही स्वय भी विश्व की वेदी पर चल रहे महान यज्ञ में अपने कर्मरूप हवि की आहुति देकर, यज्ञ नारायण की पूजा करता है। इस दिव्यदृष्टि के विकास होते ही मनुष्य केवल यज्ञ भावना से (Sense of Self Sacrifice) ही प्रत्येक कर्म करता है।

अपने शरीर का बलिदान ही ऐसे मनुष्य का अस्तित्व है। अपने तन, मन, धन सर्व बलिदान के लिये ही है। ऐसे मनुष्य जब विश्व के लिए सभी का त्याग कर यज्ञार्थ ही कर्म करते हैं तभी उन्हें शान्ति मिलती है। इस कारण से अर्जुन को ऐसे उच्च आत्मा को–उन्नति क्रम में आगे बढे हुए आत्मा को श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा है कि :–

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर।। ३–९

यज्ञ के अलावा अन्य बुद्धि से–दूसरे निम्न आशय से किये हुए कर्मो से लोग बंधते हैं, दुखी होते हैं। इस कारण से अर्जुन को उच्चाधिकारी को संग का त्यागकर संगमुक्त हो–यज्ञ के लिये ही कर्म करने का उपदेश दिया है।

'यज्ञकर्म' मरकरं जीने का मोहन मंत्र है। कर्म की श्रेष्ठता बताने के लिये आगे चलकर कहा है कि :–

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।
भुंजते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ।। ३–१३

संत, अच्छे मनुष्य–उच्चाधिकारी–कर्मयोगी यज्ञ करने के बाद बचे हुए पदार्थ का भोजन करते हैं अपने उपयोग में लेते हैं। ऐसा करने से उन्हें पाप नहीं लगता। जो लोग यज्ञ भावना से नहीं परंतु अपने भोग के लिये पकाते हैं और वैसे अन्न का भोजन करते हैं वे पाप का भक्षण करते हैं। आत्मशुद्धि किये हुए कर्मयोगी अपने को प्राप्त सर्व धन, धान्य, मिल्कियत पहले लोक कल्याणार्थ इस्तेमाल करते हैं। लोक कल्याण करने के बाद थोड़ा बहुत जो भी बचता उससे वे अपना तथा अपने आश्रितों का निर्वाह करते हैं। सामान्य मनुष्य की स्वार्थबुद्धि, आत्मशुद्धि से कर्म करने से बदल जाती है। ऐसे मनुष्यों के लिये स्वार्थ वही सर्वार्थ–परोपकार–परमार्थ होता है। इस भावना के उदय होते ही मनुष्य का प्रत्येक कर्म केवल आत्मभोग देने की बुद्धि से शुरु होता है।

केवल स्वार्थबुद्धि के त्याग करने के बाद–अहंभाव और रागद्वेष के त्याग करने के बाद, यज्ञ भावना से कर्म करते–करते मनुष्य की बुद्धि विशेष विकसित होती है। जिस यज्ञ बुद्धि से वह कंर्म करता है उन सबका भोक्ता एक ईश्वर है वैसा वह जानता है:–

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ।। ९–२४

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मैं–श्रीकृष्ण–परमेश्वर सर्व यज्ञ का भोक्ता हूँ। मैं प्रभु हूँ, जो लोग मुझे इस प्रकार जानते नहीं हैं उनका पतन–अधोगति होती है।

यज्ञार्थ कर्म करने से–निस्वार्थ बुद्धि से–यज्ञ भावना से परोपकारी कार्य करने से–यज्ञ की उपासना करने से मनुष्य को यज्ञ नारायण–यज्ञ के भोक्ता–परमेश्वर–सर्वेश्वर की झाँकी होती है।

सर्व यज्ञ के भोक्ता–सर्वेश्वर–परमेश्वर–सकल विश्व के विधाता के दर्शन होने से मनुष्य अपने सभी कर्म उसके लिये करते हैं। भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने भी यह रीति अर्जुन को सिखाई हैः–

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव।। ११–५५

हे पाण्डव ! अर्जुन, अपने सभी कर्म मुझे अर्पण कर मेरा भक्त हो। सर्वभूत प्राणी की तरफ निर्वैर बुद्धि–मित्रता रख संग का, आसक्ति का त्याग कर। ऐसा करने से तू मुझे पायेगा। मेरे में, मुझमें ज़ो विभूति–महत्वता–प्रभुता है उसका तू हिस्सेदार होगा। कर्मयोगी की यह उच्चस्थिति है। कर्म करने से पुत्र, धन आदि पाने की मेहनत करने के बदले उन सर्व के देने वाले परमश्वर को प्राप्त करने की कर्मयोग की यह सर्वोत्तम और महत्व की कुंजी है।

आत्मशुद्धि के लिये कर्म कर–यज्ञ के लिए कर्म कर–ईश्वर अर्पण बुद्धि से कर्म कर। ईश्वर को पाने के बाद भी तो करने के लिए कर्म रहते हैं। ईश्वर किस आशय से कर्म करता है उसके लिये भगवान ने अर्जुन को बोध दिया हैः–

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।। ४–८

साधुओं का–अच्छे मनुष्यों का–सदाचारियों के रक्षण के लिए, दुष्कृत–दुर्जन–दुराचारी मनुष्यों के विनाश के लिए धर्म समाज व्यवस्था के संस्थापन करने के लिए मैं परमेश्वर युग–युग में अवतार लेता हूँ।

ईश्वर जैसी उच्चस्थिति पर पहुंचने के बाद विश्व–धर्म के संस्थापन का कर्तव्य ऐसी उच्च आत्माओं पर आता है। धर्म शब्द को संप्रदाय जैसे संकुचित अर्थ में नहीं लेना है। धर्म यानी उच्च प्रकार की न्याय नीतियुक्त समाज व्यवस्था ऐसे प्रकार की समाज व्यवस्था में जब अंधाधुंधी (घपला) होती है तो उसे संस्थापन की मजबूत–सुदृढ़ सुरक्षित करने की आवश्यकता पड़ती है।

जब जब दुराचारी मनुष्य सदाचारी मनुष्यों को पीड़ित करते हैं, जब जब न्याय, नीति कमजोर होती है तब तब प्रभु को अवतार लेने की जरूरत पड़ती है। जन्म लेने का मुख्य उद्देश्य साधु का संरक्षण और दुष्टों का विनाश करना होता है।

दशावतार का वर्णन पढ़ने से ऊपर का सिद्धान्त स्पष्ट होता है। प्रह्लाद जैसे भक्त के रक्षण करने हेतु, हिरण्यकश्यप जैसे दुष्ट के दमन के लिए नरसिंह

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अवतार हुआ। कंस का वध करने के लिए कृष्णावतार हुआ। साधु–सज्जन प्रभु को प्यारे हैं इसलिये उनके संरक्षण का और दुष्टों के नाश करने का कर्म सभी कर्मों से समाज के अस्तित्व के लिये जरूरी है।

प्रत्येक मनुष्य को प्रारम्भ से ही अपने कर्मों का यह मुख्य उद्देश्य रखना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य प्रभु का सहायक होता है। अपना हर एक कर्म चाहे वह छोटा हो या बड़ा तो भी उस कर्म से साधु पुरुषों का–अच्छे मनुष्यों को संरक्षण हो और खराब व्यक्तियों का दमन हो दुष्ट मनुष्य, दुष्ट काम करने से झिझकें वैसी विशेष सावधानी रखने की प्रत्येक मनुष्य की जरूरत है। ऐसे कर्म करने के लिए साक्षात प्रभु को अवतार लेने की आवश्यकता पड़ती है। इस हकीकत से साधु संरक्षण और दुराचारी के विनाश जैसे कर्म में कितना गौरव है उसका पता चलता है।

मनुष्य के रूप में किये हुए कर्म से व्यक्ति ईश्वर होता है–ईश्वर भावना को पाता है। वह मनुष्य के लिये महान विजय है। भगवद्गीता के कर्मयोग से मनुष्य उससे भी आगे बढ़ सकता है।

ईश्वर सर्वशक्तिमान होने के बावजूद प्रलय के समय उसका लय हो जाता है प्रलय के लय के पश्चात सर्व पदार्थ एक अव्यक्त रूप से रहते हैं जिस तत्व में से सर्व उत्पन्न होता है और जिस तत्व में प्रलय के समय सृष्टि के सर्व पदार्थ लय होते हैं वह ब्रह्म है इस कारण से भगवद्गीता में कहा है कि:–

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम ।। ३–१५

कर्म ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है और ब्रह्म अक्षर–जिसका नाश नहीं हो ऐसे अविनाशी तत्व में से उत्पन्न हुआ है।

एक के बाद एक ऐसे उत्तरोत्तर उच्च आशय से कर्म करने से अंत में मनुष्य में शुद्ध सत्वगुण का उदय होता है। ऐसे समय उसे लगता है कि सृष्टि के सभी पदार्थ एक ही ब्रह्म तत्व में से उत्पन्न हुये हैं और अन्त में वे सभी शुद्ध ब्रह्म में मिल जाते हैं। ऐसे ज्ञानी को हस्तामलकवत दिखता है कि सृष्टि की दिखने वाली भिन्नताओं के पीछे एक सर्व–व्यापक एकत्व है। इस दृष्टि से देखने से उसे कर्ता के रूप में अपनी जात में, कर्म में, कर्म के साधन में सभी में ऐक्य ब्रह्मभाव दिखता है। ऐसा ज्ञान होने से, उसके सर्व कर्म ब्रह्म को अनुलक्षित होते हैं।

ऐसे उच्च ज्ञानी की कर्म करते समय कैसी मनोदशा होती है वह नीचे के श्लोक में समझ में आता है:–

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्म समाधिना ।। ४–२४

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यज्ञ में अर्पण करने की क्रिया ब्रह्म है हवि होम की वस्तु–बलिदान भी ब्रह्म हैं। जिस अग्नि में होम किया जाता है वह भी ब्रह्म है। होम करने वाला–बलिदान देने वाला वह भी ब्रह्म है। इस प्रकार जिसका लक्ष्य–जिसका ध्येय ब्रह्म है वह ब्रह्म को पाता है। ब्रह्मरूप होता है। ऐक्य भावना की यह पराकाष्ठा है।

सामान्य मनुष्य कोई भी महान आपत्ति–मुश्किलात उठाये बिना भी उसको प्राप्त कर्तव्य कर्म निःस्वार्थ बुद्धि और उच्च आश्रय से निभाता जाये तो वह देवकोटि तक पहुँच सकता है वह ऊपर के श्लोक से समझ में आता है। मनुष्य को देव होने के लिए पृथ्वी से बहुत दूर प्रदेश में आई स्वर्ग जैसी जगह पर स्थानांतर करने की आवश्यकता नहीं है।

सामान्य मनुष्य की दृष्टि बिन्दु अपनी–अपनी भौतिक शरीर की उन्नति की–सुख के साधन की होती है। ऐसे मनुष्य स्व–अपने, अर्थी–विषय भोग की लालसा वाले और स्वार्थी होते हैं। यह दृष्टिबिन्दु बहुत ही संकुचित है। इस दृष्टिबिन्दु को धीरे–धीरे विशाल विस्तृत करने की जरूरत है। केवल स्वार्थबुद्धि से कर्म करने की आदत छोड़ कर मनुष्य को अपने कुटुम्ब परिवार के लिये–समाज के लिए–मनुष्य जाति की उन्नति के लिये कर्म करने की सर्वार्थ बुद्धि से कर्म करने की आदत डालनी चाहिए। सर्वार्थ (Public Welfare) वही अंत में मनुष्य के लिये–व्यक्ति के लिए परम अर्थ–परमार्थ है।

परमार्थ बुद्धि से कर्म करना यानी स्वार्थबुद्धि को धीरे–धीरे दबाना–कम करना, मिटा देना और वैसे करते–करते परमार्थ बुद्धि को विकसित करना। परमार्थ बुद्धि से कर्म करने वाला अपने आप यज्ञबुद्धि से कर्म करना सीखता है। यज्ञबुद्धि से कर्म करने से यज्ञ नारायण–सर्व यज्ञ के भोक्ता परमेश्वर प्रसन्न होते हैं। उसकी कृपा से मनुष्य की बुद्धि में एक नया प्रकाश उत्पन्न होता है। इस प्रकाश से–दिव्य ज्योति से मनुष्य ईश्वर के दर्शन कर सकता है–सृष्टि के सर्जनहार की शक्ति का ज्ञान पा सकता है। प्रत्येक अलग वस्तु में स्थित और सामान्य मनुष्य की दृष्टि में दिखने वाला वस्तुभाव–भिन्नता ऐसे मनुष्य की दृष्टि में से निकलकर, सर्व मनुष्य को प्राणी को–वस्तु को वह विश्वनाथ की विभूति रूप से, परमेश्वर के प्रतीक, प्रभु की प्रतिमा रूप में दिखता है।

इस प्रकार उन्नत स्थिति को पहुँचा–सत्वगुणी हुआ–आत्मसंशुद्धि से शुद्ध हुआ जीवात्मा–मनुष्य वही ब्रह्म को जानने वाला ब्राह्मण, ऐसे ब्राह्मण की दृष्टि में रागद्वेष, भाव स्वार्थ या कोई भी क्षुद्र भावना को स्वाभाविक रूप से ही स्थान नहीं हो सकता। ऐसे उच्च आशयी महात्मा के कर्म कोई स्वार्थ के लिए नहीं परंतु सृष्टि में धर्म के लिये ही होते हैं। ब्राह्मण का ऐसे आशय से किया हुआ कर्म ही ब्राह्मण का ब्रह्मार्पण है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

ऐसी ब्रह्मार्पण बुद्धि से आर्यावर्त के ऋषि–मुनियों के किये गये कर्म, रचे हुए

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
धर्मशास्त्रों ने ही सारी दुनियाँ में हिन्द को आध्यात्मिक क्षेत्र में सर्वशिरोमणि बनाया है। इस ब्रह्मार्पण बुद्धि के अभाव में आर्यावर्त की आधुनिक अधोगति हुई है। ऐसे ब्रह्मार्पण का सद्भाव होगा तब फिर से हिन्द की, आर्यावर्त की उन्नति होगी और उसकी ऐसी उन्नति अखिल विश्व को लड़ाई और विनाश के पथ से हटाकर उन्नति के शिखर पर पहुँचायेगा। सच्चे शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक सुख का अचूक साधन एक ही है और उसका सही नाम ब्रह्मार्पण है। ब्रह्म भावना की प्राप्ति की अचूक कुंजी है ब्रह्मार्पण।

❑

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकरण–१४

कर्मफल त्याग या कर्मसन्यास

एक वर्ष के एक बिल्कुल छोटे बच्चे की तरफ दृष्टि करें। उसे चलना नहीं आता। उसे माता–पिता बाँहों से उठाकर खड़ा रहना सिखाते हैं। बालक थोड़ा खड़ा रह सके उसके लिये चालनगाड़ी पर खड़े रहना सिखाते हैं। इसके बाद बालक की चालन गाड़ी को थोड़ी गति देकर उसे चलना सिखाते हैं। बालक थोडा चलना सीखे तब उसके सामने थोड़ी दूर आकर्षक खिलौने रखते हैं। खिलौनो की आकर्षकता बालक को अपनी ओर खींचती है और दो चार कदम लेकर वह आगे बढ़ने का प्रयत्न करता है। धीरे–धीरे बालक जैसे बड़ा होता जाता है वैसे–वैसे वह चलना सीखता है। इसके बाद उसे चालनगाड़ी की आवश्यकता नहीं रहती।

बालक जैसे–जैसे बड़ा होता जाता है वैसे–वैसे वह समझता है कि चलना केवल खिलौने लेने के लिये ही नहीं, विद्या पाने के लिये, पाठशाला जाने के लिये भी चलना है। अपनी तन्दुरुस्ती बनाये रखने के लिये कसरत के लिये वह चलता है। जैसे–जैसे बालक बड़ा होकर युवक/मनुष्य बनता है तब अपने धंधे–पानी के लिये वह चलता है। बालक युवक से वृद्ध होने पर चलने की शक्ति का उपयोग तीर्थयात्रा करने में या अन्य दूसरी पुण्य–प्रवृत्ति में करता है।

जैसे माँ बालक को चलना सिखाती है वैसे प्रकृति भी बालक को–मनुष्य जाति को कर्म करना धीरे–धीरे सिखाती है। जैसे बाल्यावस्था में बालक को खिलौने का प्रलोभन देकर डग भरना माँ प्यार से सिखाती है उसी प्रकार शारीरिक सुख– इन्द्रियाराम रूप तात्कालिक इन्द्रियों को आनंद देने वाले विषय सुख बाल मनुष्य के पास रखकर प्रकृति, कुदरत उसे उन विषयों के संपादन करने के कर्म में प्रवृत्त करती है। जैसे बालक बड़ा होता जाता है समझता है कि खिलौने की प्राप्ति चलने का ध्येय नहीं उस प्रकार जैसे–जैसे मनुष्य–मनुष्य जाति आगे बढ़ती जाती है वैसे–वैसे वह समझती है कि केवल विषयसुख की प्राप्ति–इन्द्रियाराम–शारीरिक सुख कर्म का ध्येय नहीं है।

चलने की विद्या से बालक पाठशाला की तरफ गमन कर विद्या अभ्यास करता है, बाग–बगीचे में जाकर तन्दुरुस्ती संपादन करता है। दुखी मनुष्य की सहायता कर अपने चलने की शक्ति को परमार्थ से जोड़ता है। तीर्थयात्रा कर चलने की शक्ति से इस जन्म के पश्चात भी उपयोगी होने वाला पुण्य संपादन करता है। इस प्रकार कर्म करने की शक्ति को भी विषय सुख संपादन करने की तरफ लोककल्याण के कार्य की तरफ, लोकसंग्रह की तरफ, यज्ञ की तरफ, ईश्वर की तरफ और अन्त में ब्रह्म की तरफ भी मोड़ा जा सकता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जैसे खिलौने का प्रलोभन दूर करने से बालक चलना बंद कर देता है वैसे कुछ एक मनुष्य को यदि विषय सुख का प्रलोभन न दिया जाये तो वे कर्म करने के लिए प्रवृत्त नहीं हो सकते। ऐसे मनुष्यों को कुदरत धीरे–धीरे उच्च आशय से निष्काम बुद्धि से कर्म करना सिखाती है।

केवल विषय सुख को ही ध्येय मानकर कर्म करने वाले को कहलाने वाले विषय सुख, दुःख के साधन होते हैं, तभी ही उसकी आँख खुलती है। ऐसे मनुष्य को शुरुआत में धर्म में, न्याय में, नीति में श्रद्धा नहीं होती इसलिये उसको सुधारने का दूसरा उपाय नहीं।

व्यभिचार करना प्रत्येक धर्म में निषिद्ध है। केवल इन्द्रियाराम–इन्द्रियों के तात्कालिक सुख देखने वाले मनुष्य को, धर्म पर श्रद्धा नहीं होने से, विषयसुख से होने वाले सुख की तरफ आकर्षित होकर ऐसा मनुष्य व्यभिचार करने को प्रेरित होता है। ऐसा मनुष्य समयांतर में यदि पकड़ा जाता है तो उसे सरकार से राज्यव्यवस्था से दंड मिलता है। इस प्रकार के गुनहगारों को कोर्ट की तरफ से गुनहगार साबित नहीं किया जा सकता। फिर भी ऐसे मनुष्यों के चरित्र का पता चलने पर समाज की तरफ से उनका खुले या छिपे तरीकों से बहिष्कार किया जाता है। कई बार ऐसे मनुष्यों को मार खाने तक की नौबत आती है।

यदि इस प्रकार का गुनहगार बहुत बड़ा होता है तो उसे कोर्ट या समाज का डर बहुत कम रहता है। इसके बावजूद वह कुदरत के कानून से तो शायद ही बच पाता है। अपने कुकर्मो के कारण ऐसे मनुष्यों को इस प्रकार के गुप्त रोग हो जाते हैं कि उसके कारण उनकी पूरी जिन्दगी बर्बाद हो जाती है। ऐसे बहुत से उदाहरण सामान्य मनुष्यों को भी मालूम रहते हैं।

ऊपर दर्शित जो सिद्धान्त व्यभिचार पर लागू होता है वह चोरी, असत्य आदि सभी दुर्गुणों पर भी लागू पड़ता है। कई बार ऐसा होता है कि कोर्ट के दण्ड से समाज का दण्ड अधिक भारी पड़ता है और असरकारक भी होता है। कुदरत की शिक्षा/दण्ड समाज की शिक्षा/दण्ड से भी भयंकर होती है। जब ऐसा होता है तभी ऐसे मनुष्य न्याय नीति और धर्म के प्रति मुड़ते हैं। मनुष्य को जब ऐसे कड़ुवे अनुभव होते हैं तभी व्यक्ति को तात्कालिक सुख की इच्छा पर संयम करने की–दूरदर्शी–आगम दृष्टि वाला बनने की जरूरत पड़ती है–अपने कर्म के तात्कालिक परिणामों पर से दृष्टि हटाकर भावी परिणामों पर दृष्टि रखनी पड़ती है।

मनुष्य की विचारशक्ति जैसे–जैसे बढ़ती है वैसे–वैसे वह अपना सुख पाने के ध्येय को बदल, अपने सुख के साथ दूसरों/परायों के सुख का भी विचार करता है और अंत में अपने सुख को बिल्कुल भूल जाता है, मिटा देता है। ऐसी स्थिति पर पहुंचने के पहले बीच में एक रुकावट आ खड़ी होती है। ऐसे मनुष्यों के अपने निजी स्वार्थ न होने के कारण वह कर्म करना ही बंद कर देते हैं–कर्म सन्यास करते हैं ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जब मनुष्य की विचार शक्ति अधिक से अधिक खिलती जाती है तब प्रत्येक कर्म में उसे कुछ न कुछ त्रुटि–दूसरों को दुःख होने की सभावना लगती है। ऐसे विचारों के कारण इच्छा या अनिच्छा से भी वह कर्म सन्यास की तरफ आकर्षित होता है। अर्जुन की भी ऐसी स्थिति हुई थी।

जैसे–जैसे अर्जुन ने गीता सुनी वैसे–वैसे उसकी विवेकबुद्धि खिलती गई वैसे–वैसे उसको यह प्रश्न अधिक सताने लगा। गीता के १७ अध्याय सुनने के पश्चात भी यह मुश्किल आसान नहीं होने से यह गुत्थी न सुलझने से ही वह १८वें अध्याय में–आखिर के अध्याय में यह प्रश्न पूछते हैः–

सन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम्।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन।। ६–१

हे कृष्ण! मैं सन्यास और त्याग के तत्व का सही स्वरूप अलग–अलग जानना चाहता हूँ।

त्याग और सन्यास ये दोनों शब्द सामान्य मनुष्य को खूब परिचित हैं। साधारणतया त्याग और सन्यास यह दोनों शब्द एक दूसरे के पर्याय हैं। दोनों का अर्थत्याग करना–छोड़ना ऐसा होता है। त्यागी से सन्यासी शब्द विशेष परिचित है क्योंकि सन्यासी विशेष और मूर्तस्वरूप वाला शब्द है।

'सन्यास' और 'त्याग' सामान्य भाषा में समानार्थक हैं, परन्तु भगवद्गीता में ये शब्द पारिभाषिक (Technical) रूप में उपयोग में लिये हैं। इन दोनों का अर्थ एक दूसरे से बहुत भिन्न है। सन्यास और त्याग शब्द का भगवद्गीता में कई जगहों पर उपयोग किया गया है, परंतु प्रत्येक जगह पर एक ही अर्थ में उपयोग नहीं किया गया। गीता में भी ये शब्द अलग–अलग स्थानों पर अलग–अलग अर्थों में उपयोग में लिए हैं।

भगवद्गीता के श्लोकों को छोड़कर गीता पर लिखे गये अलग–अलग भाष्यों की तरफ दृष्टि करके, सन्यास और त्याग का अर्थ निश्चित करने का प्रयत्न करें तो न सोची हुई ऐसी कई मुश्किलें खड़ी हो जायेंगी। अधिकांश भाष्य साम्प्रदायिक दृष्टि से लिखे गये हैं और इसलिये प्रत्येक भाष्यकारों ने जबरन अपने सम्प्रदाय के अनुकूल अर्थ तोड़–मरोड़ कर बताने का प्रयत्न किया है। इन संयोगों में सन्यास तथा त्याग का अर्थ भगवद्गीता पर से ही पूर्वापर के संबंधों को रखकर निश्चित करना सही और सरल होगा।

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ औरं सन्यास–ये चार आश्रम हैं। इन चारों आश्रम में सन्यास चतुर्थ आश्रम है। इस आश्रम का आदर्श बहुत ऊँचा होने के कारण भारतवर्ष में उसके लिये बहुत मान है। सन्यासी को किसी भी प्रकार की कामना नहीं होने से वे कोई भी कर्म सामान्यतः नहीं करते। सभी कर्म बन्धनकारक हैं सन्यासी की ऐसी मान्यता होने से तमाम कर्मों का स्वरूप से ही वे सन्यास करते

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
हैं। भगवद्‌गीता जब अर्जुन को कही गई तब अर्जुन और उस समय के कुछ वर्ग की भी यही मान्यता थी।

यह मान्यता सही नहीं है। ऐसी मान्यता जगत को उपकारक भी नहीं है। इस कारण से भगवान् कृष्णचन्द्र ने भगवद्‌गीता में सन्यास से–कर्म के स्वरूप के सन्यास से भी एक उच्चस्थिति–एक उच्च आदर्श जन समाज के पास रखा है। यह आदर्श वही–त्याग भावना है इसलिये गीता में कहा है:–

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स सन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ।। ६–१

कर्मफल का आश्रय न लेकर–कर्म के फल में स्पृहा न रखकर कार्य, कर्म जो करते हैं वही वास्तविक सन्यासी तथा योगी है। अग्नि न रखने वाला और अक्रिय–कर्म नहीं करने वाला सन्यासी नहीं है।

युद्धरूप कर्म–कार्य कर्म से विराम पाकर अर्जुन अक्रिय–कर्म सन्यास की इच्छा करते थे–कर्म नहीं करने से–युद्ध नहीं करने से और भिक्षा के अन्न से अपना निर्वाह करने से वह स्वयं सन्यासी की उच्चस्थिति को पायेंगे, ऐसी अर्जुन की मान्यता थी। यह मान्यता गलत थी ऐसा भगवान ने बताया है। केवल अक्रिय होने से ही वास्तविक सन्यासी नहीं बन जाता। सच्चे सन्यासी के लिये फल की आशा को छोड़ना जरूरी है। सन्यास शब्द के पीछे छिपे इस रहस्य को गीता में स्पष्ट किया है।

यह विषय अधिक स्पष्ट करने के लिये गीता में कहा है कि :–

यं सन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव।
न ह्यसन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ।। ६–२

हे पाण्डव, जिसे सन्यास कहते है वही कर्मयोग, निष्काम बुद्धि से कर्म करने की विद्या है, क्योंकि जिसने मन से, संकल्पों को तजा नहीं है वह कभी योगी–कर्मयोगी–सही सन्यासी नहीं बन सकता। इस श्लोक से दिखता है कि कर्मयोग में–वास्तविक सन्यासी होने के लिये बाह्य कर्म से कर्म के कर्ता की आंतरिक मानसिक स्थिति वह अधिक जरूरी है।

आजकल के कायदे कानून का जिसने अभ्यास किया होगा वे इस विषय को अच्छी तरह से समझ सकेंगे। इण्डियन पीनल कोड के अंदर अलग–अलग गुनाहों की जो व्याख्या है उसमें भी बाह्यकर्म से कर्ता की मानसिक स्थिति पर बहुत आ–धार रखा है। इस कारण से, इरादा आशय, नेकनियती या बदनियती, शुद्धबुद्धि (Intention, motive, bonafides, Malafides) आदि आंतरिक तत्वों पर अधिक आधार रखा है। भगवद्‌गीता में इस विषय को–कर्ता की मानसिक बुद्धि को–आशय को आध्यात्मिक क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिये जरूरी बताया हे। कर्मयोगी की श्रेष्ठ मानसिक बुद्धि यानी निष्काम बुद्धि फल आशा का त्याग।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बाह्य कर्म के प्रति उदासीनता नहीं परंतु वैसे कर्मो से होने वाले फल–परिणाम के प्रति मोह न रख केवल कर्तव्यबुद्धि से या तो ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म करना वैसा मानसिक रुझान बहुत जरूरी है–

काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्यासं कवयो विदुः।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः।। १८–२

काम्यकर्म करना–काम्य बुद्धि से कर्म करना छोड़ना उसे कवि–सयाने मनुष्य सन्यास कहते हैं। सभी कर्मो के फल–आशा को त्याग करना उसे विचक्षण पुरूष त्याग कहते हैं। इससे स्पष्ट समझ में आता है कि गीता में जहाँ–जहाँ काम्यकर्म का निषेध किया है वहाँ–वहाँ कर्मफल त्याग का आचरण करने को कहा गया है। इस विषय को विशेष स्पष्ट करते हुए गीता में दूसरी कई जगह भी कहा गया है:–

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण, फले सक्तो निबध्यते ।। ५–१२

युक्त यानी योगयुक्त मनुष्य, कर्म के फलों को त्याग कर, निष्काम बुद्धि से कर्म कर शान्ति पाते हैं। अयुक्त–सकाम बुद्धि से कर्म करने वाला कर्म के फलों से बँधता है–सुख दुःख को पाता है।

इन्द्रियो से होने वाले कर्म से अधिक, कर्ता की कर्म के प्रति मानसिक स्थिति पर ध्यान रखना जरूरी है:–

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखंवशी।
नवद्वारे पुरे देही, नैव कुर्वन्न कारयन् ।। ५–१३

सर्वकर्मों को–कर्म के फलों को मन से सन्यास–त्याग कर, जितेन्द्रिय हो, नौ द्वार वाले देह से, शरीर से कर्म करते रहने के बावजूद मनुष्य कुछ कर्म नहीं करता–फल आशा से नहीं बँधता। देह तो जड़ है मन उसका बल है (Motive Power)। नौ द्वार वाला देह–शरीर तो कर्म करने का–कर्म बनाने का साँचा (मशीन) है। देहरूप साँचे (मशीन) के साथ जब तक मनरूपी प्रेरक बल शामिल न हो वहाँ तक कर्म के शुभाशुभ फल का असर कर्ता पर नहीं होता। मन यानी इच्छा–कामना–तृष्णा–स्पृहा इस अर्थ में यहाँ इस्तेमाल हुआ है।

मनुष्य इस दुनियाँ में कर्म किये बिना एक क्षण भी जी नहीं सकता। जन्म से लेकर मरणपर्यन्त तक देहधारी मनुष्य की सभी क्रिया कर्म के आधीन है। श्वास लेना, खाना पीना, मलत्याग, गमनागमन यह सब कर्म के बिना असम्भव है।

इस कारण से ही इस दुनियाँ को कर्मलोक कहा गया है। ऐसे कर्मलोक में स्वरूप से कर्म सन्यास की बात करना सृष्टि के मौलिक सिद्धान्त (Fundamental Laws of Nature) के विरुद्ध की बात है। इस सिद्धान्त को स्पष्ट समझाने के लिए भगवान ने कहा है कि:–

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ।। १८—११

कर्म का अशेष—सर्वथा त्याग देहधारी मनुष्यों के लिए सम्भव नहीं। इस कारण से कर्म के फलों का त्याग करते हैं—कर्म करते समय कामनाओं का त्याग करें वही वास्तविक त्यागी हैं।

ऊपर का नियम—सिद्धान्त रखने का क्या कारण है यह भी गीता में समझाया हैः—

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ।। १८—७

नियत कर्मो का—वर्णाश्रम धर्म के अनुसार करने वाले कर्मो का सन्यास करना यह उचित नहीं। ऐसे नियत कर्म को मोह से त्याग किया हो तो वैसे त्याग को तामसी—हल्के प्रकार का त्याग कहा है। अर्जुन क्षत्रिय होने के उपरान्त युद्ध रूप स्वधर्म का त्याग करके सन्यासी बनने की इच्छा रखते थे। वह अर्जुन का त्याग तामस और हल्के प्रकार का और मोह से भरा हुआ था। यह अर्जुन की मान्यता भूल भरी हुई थी।

कुछ एक मनुष्य बाह्य दृष्टि से त्याग करते हैं, परंतु ऐसे त्याग के पीछे शारीरिक सुख की लालसा छिपी रहती है। इस प्रकार के त्याग गीता को इष्ट—मान्य नहीं।

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ।। १८—८

कुछ कर्म करने से, काया को क्लेश होगा—शरीर को मेहनत पड़ेगी वैसे भय से तथा दुःख के भय से किया हुआ त्याग राजस त्याग कहलाता है। इस प्रकार के त्याग का शुभफल त्याग करने वाले को नहीं प्राप्त होता।

तामस और राजस त्याग का, निम्न प्रकार का त्याग का स्वरूप समझाने के बाद वास्तविक त्याग—उच्च प्रकार के त्याग—गीता को मान्य है इस प्रकार का त्याग वह किस जाति का त्याग है यह प्रश्न रहता है। इस प्रकार के त्याग को सात्विक त्याग कहा है। सात्विक त्याग का लक्षण नीचे अनुसार हैः—

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ।। १८—९

नियत कर्म—वर्णाश्रम धर्म के अनुसार प्राप्त होने वाला कर्म, कार्य—कर्तव्य है— करने लायक है वैसा समझ, आसंग का तथा फलआशा—कामनाओं का त्याग करके करने में आए हुए कर्म की फलआशा का त्याग वही सात्विक त्याग है। इस प्रकार का त्याग ही प्रत्येक मनुष्य का ध्येय होना चाहिए।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सामान्य मनुष्य जब फल–आशा का त्याग करते हैं तब उनके काम करने का उत्साह धीमा मन्द हो जाता है उतना ही नहीं परतु थोड़ी–सी भी मुश्किल आने से ऐसा मनुष्य कार्य को बीच में ही छोड़ देते हैं। वास्तविक कर्मयोगी इस प्रकार के सामान्य मनुष्य से होने वाली भूल न करे उसके लिए भगवद्‌गीता में सात्विक कर्ता–उच्च प्रकार के कर्मयोगी–कर्ता के लक्षण दिये हैं:–

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्त्ता सात्विक उच्यते।। १८–२३

वास्तविक सात्विक कर्त्ता वही है जो संगमुक्त हो, अहंकार के बिना हो, धृति–दृढ़ता–विघ्नों से हार न जाए वैसा, साथ ही उत्साह–कार्य करने की अखूट शक्तिवाला हो। कर्म करने में मनुष्य को उपर्युक्त गुणों की तरफ खास ध्यान रखने की जरूरत है। इतना गुण, इतना उत्साह और धृति होने के पश्चात भी जो कर्म के परिणाम की तरफ कर्म की सिद्धि तथा असिद्धि में बिल्कुल निर्विकार रहे वही वास्तविक सात्विक कर्ता है।

सात्विक कर्म का विचार पश्चिम के खिलाडी जैसा है। इस जमाने में क्रिकेट, टेनिस, फुटबाल आदि खेल खेले जाते हैं। ऐसे खेलों में मनुष्य बहुत मेहनत करते हैं और काफी अन्य मनुष्यों के साथ प्रतियोगिता में उतरते हैं। इस प्रकार होने के बावजूद जो भी कोई मनुष्य को–खिलाड़ी को खेल मे इनाम नहीं मिलता–वह जीतता नहीं है तो वास्तविक खिलाड़ी उससे नाखुश नहीं होता और उसके साथ अपनी प्रतिस्पर्धा की जीत से उसके प्रति किसी प्रकार का द्वेष नहीं करता। जीवन के सभी कृत्य–कर्तव्य कर्म रागद्वेष के बिना, जय–अजय में लाभ–अलाभ में, सिद्धि–असिद्धि में निर्विकार रह संगमुक्त हो, अहंभाव त्याग कर धृति तथा उत्साह रखकर यानी जैसे खेलकूद में खेलने वाला खेल बुद्धि से खेलता है उसी प्रकार कर्तव्यबुद्धि से कर्म करना यही गीता का मुख्य उद्‌देश्य है।

सात्विक कर्ता के किए हुए कर्म किस प्रकार के होने चाहिए यह बात यदि समझ में आ जाए तो अभ्यासी का मार्ग विशेष आसान होगा। इस कारण से सात्विक कर्म–आदर्श कर्म का वर्णन भी गीता में दिया है:–

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम्।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्विकमुच्यते।। १८–२३

जो कर्म नियत–वर्णाश्रम धर्म के अनुसार–अपने कर्तव्य के अनुसार फर्ज के अनुसार प्राप्त हुए हों वैसा कर्म, संगरहित हो, आसंग का त्याग कर रागद्वेष को छोड़ फल आशा का त्याग कर करने में आया हो तो वैसे कर्म को सात्विक कर्म कहा गया है। इस दृष्टि से देखने से जीवन का सामान्य से सामान्य कर्म भी सात्विक कर्म–उच्च आदर्श वाला–उन्नतिकारक कर्म हो सकता है, इतना ही नहीं परंतु हजारों रुपयों का खर्च करके यज्ञ जैसा पुण्य कर्म भी यदि फल आशा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

रख--काम्यबुद्धि से किया हो तो वह कर्म सामान्य परंतु सात्विक बुद्धि से किए हुए कर्म से उतरते दर्जे का है। इस प्रकार होने से गीता में दर्शित उन्नति मार्ग बिना किसी प्रकार के खर्च का है। इतना ही नहीं परंतु वह मार्ग लेने के लिए मनुष्य को जिस स्थल तथा जिस स्थिति में हो वह स्थल तथा स्थिति का त्याग किए बिना केवल बुद्धि का–मनोवृत्ति का मानसिक बदलाव करने से मनुष्य आध्यात्मिक क्षेत्र में काफी आगे बढ़ सकता है। इस सिद्धान्त का सत्य समझाने के लिए महाभारत में कई उदाहरण हैं।

राजा जनक राज्य कार्यभार करते थे फिर भी रागद्वेष या आसङ्ग नहीं होने से बड़े ऋषियों से भी वे आध्यात्मिक दृष्टि से आगे बढ़े हुए थे। इस प्रकार जनक राजा देही देह धारण करने के बावजूद विदेही–देह बगैर के कहलाते थे। धर्म व्याध–खाटकी थे फिर भी बड़े–बड़े मुनि उनके पास बोध लेने आते थे। तुलाधार एक सामान्य बनिया जैसे तौलने का काम करते थे, फिर भी जाजली जैसे बड़े मुनि उसके पास उपदेश लेने आते थे। सनातन धर्म का यह सत्य इस समय भुलाया गया है उसी कारण से आधुनिक दुर्दशा हो गयी है। सनातन धर्म की धार्मिक दृष्टि से देखें या पश्चिम के खेलकूद की दृष्टि से देखें–किसी भी दृष्टिबिन्दु से देखने से पता चलता है कि श्रीमद्भगवद्गीता की सन्यास और त्याग भावना वह बहुत उच्च भावना और आदर्श है।

गीता में दर्शित सन्यास तथा त्याग की भावना, आध्यात्मिक क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए एक अति उत्तम, बहुत ही सुखकर और सर्वमान्य बने वैसी सादी साधना प्रणाली है। इस प्रकार मनुष्य यदि अपने आचरण को नियन्त्रित करे तो शुरुआत में थोड़ी मुश्किल होगी, परंतु थोड़े अभ्यास के पश्चात यह पद्धति बहुत सुखकर मालूम पड़ेगी। त्याग भावना के अनुसार आचरण तथा व्यवहार रखने से मनुष्य की शक्ति का व्यर्थ में व्यय नहीं होता है–मनुष्य की शक्ति का संचय होता है। संचय हुई ऐसी शक्ति एक शुद्ध और स्पष्ट प्रणालिका में बहती होने से मनुष्य थोड़ी शक्ति के खर्च से ही बहुत अधिक कार्य कर सकता है। इस तरह कार्य करने वाले मनुष्य–कर्मयोगी द्वारा अहंभाव का, रागद्वेष का, लाभ–अलाभ का त्याग किए हुए होने से ऐसे कर्मयोगी को दुःख जैसा कुछ हो ही नहीं सकता। शक्ति, निरन्तर अखण्ड शान्ति, कर्तव्यपालन का अपरिमित संतोष और उससे उत्पन्न होने वाले अनुपम आनन्द के सिवा वास्तविक कर्मयोगी को और कोई भावना हो ही नहीं सकती।

जब मनुष्य इस प्रकार का कर्मयोगी होता है तब उसकी दृष्टि में नवीन बदलाव आ जाता है। दृष्टि के अनुसार सृष्टि, यह सिद्धान्त के अनुसार ऐसे मनुष्य की सृष्टि भी बदल जाती है। वास्तविक त्यागी की दृष्टि तथा उसकी सृष्टि किस प्रकार की होती है उसका अगले प्रकरण में विचार किया जाएगा। ☐

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकरण–१५

त्यागी, उसकी दृष्टि और सृष्टि

यह दुनियाँ–सृष्टि यानी क्या? यह प्रश्न दुनियाँ के प्रत्येक मनुष्य से यदि पूछा जाए और उसके जवाब में दिये हुये प्रत्येक उत्तर का बारीकी से पृथक्करण किया जाए तो सृष्टि के करोड़ों मनुष्यों में से दो मनुष्य के जवाब भी सर्वांश में एक समान नहीं होंगे। यह सत्य सामान्य मनुष्य की दृष्टि में–समझ में यकायक आये वैसा नहीं है, फिर भी थोड़ा विचार करने से उसका सत्य समझे बिना नहीं रहेगा।

एक मनुष्य–अपना स्वयं का दृष्टांत लेकर विचार करे। मनुष्य एक मूर्तस्वरूप और स्पर्शवेध वस्तु है (Visible Tangible)। इस वस्तु के संबन्ध में भूल होने की सम्भावना कम है फिर भी यह स्पष्ट निरूपण वाली–सुअंकित और रोज की परिचित वस्तु का भी पृथक्करण कर परीक्षण करेंगे तो उस वस्तु का वास्तविक स्वरूप क्या है यह निश्चित करना मुश्किल पड़े वैसा है।

एक मनुष्य स्वयं एक होने के बावजूद अलग–अलग दृष्टि से देखने वाले मनुष्यों को अलग–अलग लगता है। एक पुरुष उसकी स्त्री को स्वामी के रूप में दिखता है, पुत्र को पिता के रूप में, मित्र को मित्र के रूप में, शत्रु की दृष्टि से देखने वाले को शत्रु के रूप में, धंधे की दृष्टि से देखने से व्यापारी के रूप में, गुरु की दृष्टि से शिष्य के रूप में, वैद्य की दृष्टि से दर्दी के रूप में, भिक्षुक की दृष्टि से दाता के रूप में रेलवे में मुसाफिरी करते समय रेलवे अधिकारियों की दृष्टि से मुसाफिर के रूप में दिखता है। इस प्रकार पुरुष वस्तुतः एक होने के बावजूद अलग–अलग दृष्टि से देखने वाले को अलग–अलग दिखते है। यह सब अलग–अलग दृष्टि से देखने वालों में किसकी दृष्टि सही और किसकी गलत, उसका निर्णय करना बहुत मुश्किल है।

दूसरों की दृष्टि के सवाल को एक तरफ रखें और हम अपनी दृष्टि में क्या हैं, उसका भी बारीकी से अवलोकन करें तो अपने तात्विक अस्तित्व का निर्णय करना मुश्किल होगा। एक समय हम अमुक मनुष्य को, अमुक वस्तु को चाहते हैं और थोड़े समय पश्चात उसी वस्तु को फिर धिक्कारते हैं। विशेष विचार करने से पता चलता है कि जिसको–जिस व्यक्ति को हम 'मैं' कहते हैं वह भी स्थिर नहीं है, परंतु बदलती हुई मनोवृत्ति की परछाई रूप है। इस कारण अपने शास्त्रकारों ने सृष्टि दो प्रकार की कल्पी है–एक ईश्वरकृत सृष्टि। इस सृष्टि में मनुष्य अधिक बदलाव नहीं कर सकता। ईश्वर ने अपनी सृष्टि में सभी मनुष्यों को दो पैर तथा पशुओं को चार पैर दिये हैं। इस ईश्वर की सृष्टि में–कृति में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

अधिक बदलाव करने में मनुष्य को अवकाश नहीं है। दूसरे प्रकार की सृष्टि वह जीव सृष्टि है। जिस प्रकार हरेक मनुष्य अलग–अलग हैं वैसे हरेक मनुष्य की जीवकृत सृष्टि (Man made creation) भी अलग है। ईश्वर की बनाई हुई एक ही सृष्टि में प्रत्येक मनुष्य रहते हैं, परन्तु वे तमाम मनुष्य की सृष्टि उनके संकल्प से–मानसिक विचार से उत्पन्न होने से प्रत्येक जीव की सृष्टि अलग है। उसी को अलग शब्दों में कहें तो प्रत्येक जीव की मानसिक भावना ही उसकी सृष्टि है।

प्रत्येक मनुष्य की मनोभावना अलग–अलग होने से, अलग–अलग मनोभाव वाले अलग–अलग मनुष्य ईश्वर की एक सृष्टि को भी अलग–अलग स्वरूप में देखते हैं। बाहर की सृष्टि एक ही है फिर भी अलग–अलग रंग के चश्में चढ़ाकर ईश्वर की सृष्टि देखने से वह अलग–अलग रंग की अलग–अलग भाव वाली दिखती है।

ईश्वर ने प्रत्येक मनुष्य को दो हाथ, दो पैर, दो आँख दी हैं। इस वस्तुस्थिति में मनुष्य से अधिक बदलाव नहीं हो सकता है। ईश्वर ने सभी मनुष्य को एक सरीखा बनाया है। उसे कोई प्रिय या अप्रिय–दोस्त या दुश्मन नहीं है। इस प्रकार ईश्वर की सृष्टि का क्रम है, फिर भी मनुष्य अपने रागद्वेष के कारण एक को शत्रु दूसरे को मित्र देखता है। ईश्वर ने एक मनुष्य को दूसरे का शत्रु नहीं बनाया है। मनुष्य की रागद्वेष की मानसिक वृत्ति ने शत्रु तथा मित्र की सृष्टि–कल्पना खड़ी की है। रागद्वेषात्मक सृष्टि का स्रष्टा मनुष्य स्वयं ही है। वैसे बनावटी सृष्टि का संहार भी उसे ही करना है। रागद्वेषात्मक सृष्टि ईश्वर ने नहीं सृजित की है। इस कारण से उस सृष्टि का सृजनकर्ता है, उससे सुख–दुःख पाता है। मकड़ी जैसे अपने ही शरीर में से तन्तु निकाल कर बँधती है उसी प्रकार मनुष्य अपने विचार का वातावरण खड़ाकर उसी से सुखी या दुखी होता है। इस सिद्धान्त का सत्य समझने के लिए भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्णचंद ने कहा है कि :–

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावंस्तु प्रवर्तते।। ५–१४

परमेश्वर किसी का कर्तापन या कर्म की सृजना नहीं करता–उत्पन्न नहीं करता। वैसे ही कर्म तथा कर्मफल संयोग उत्पन्न नहीं करता। यह सारी व्यवस्था स्वाभाविक कर्म के अनुसार–प्रकृति के नियम के अनुसार–कर्म के कायदे के अनुसार चला करती है। कर्म का नियम 'जैसा करोगे वैसा पाओगे' वह नियम इतना चौकस और अचलित है कि ईश्वर भी उस नियम में दखल करना नहीं चाहता।

इस नियम को समझाना यानी कर्मयोग की कुंजी हाथ लेनी है। यह नियम मनुष्य समझे कि तुरन्त ही पूरी दुनिया की तरफ उसकी दृष्टि बदल जाती है। ऐसा मनुष्य समझता है कि मुझे जो कुछ लाभ या हानि होती है उसका वास्तविक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कारण मैं स्वयं हू, मेरे कर्म हैं। दुनिया में किसी भी मनुष्य का ऐसा एक भी दुश्मन नहीं है कि वह उसका बाल भी बांका कर सके, वैसे ही ऐसा कोई मित्र नहीं जो कोई सहज ही सहायता कर सके। मनुष्य के लाभ या हानि उसके स्वय के कर्म के अनुसार होती है। इस लिये कोई भी निमित्त बेशक हो परन्तु उसका वास्तविक कारण तो उसके कर्म ही हैं।

वास्तविक त्यागी कुदरत के इस क्रम को—कायदे को—अच्छी तरह से जानता होने से उसे जैसी भी लाभ या हानि हो उसके लिए वह स्वयं के कर्म को उत्तरदायी मानता है। अपने कर्म के अलावा कोई बाह्य व्यक्ति को शत्रु या मित्र नहीं मानता। इस प्रकार होने से ऐसे मनुष्य का रागद्वेष अपने आप दूर होता है और उसके अन्दर एक प्रकार का दिव्य साम्य उत्पन्न होता है।

ऐसे त्यागी की समदृष्टि का नीचे उदाहरण दिया है:—

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ।। ५—१८

वास्तविक पंडित की दृष्टि में विद्या विनय युक्त ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते तथा चाण्डाल सभी समान है। ऐसे मनुष्य को ब्राह्मण के प्रति राग या चाण्डाल के प्रति द्वेष का अभाव होता है।

इस प्रकार के त्यागी बराबर समझते हैं कि जहॉ तक शुभ—अशुभ कर्म होते जाते हैं वहॉ तक उस कर्म के फल रूप सुख—दुःख आये ही करते हैं। इसलिए सुख—दुःख से वे राजी या दुखी नहीं होते। इस सम्बन्ध म गीता मे कहा है कि:—

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ।
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः ।। ५—२०

प्रिय वस्तु के प्राप्त होने से वह सुखी नहीं होता वैसे ही अप्रिय वस्तु की प्राप्ति से वह दुखी नहीं होता। इस प्रकार से सुखी या दुखी नहीं होने के कारण यह है कि ऐसे मनुष्य की बुद्धि स्थिर हुई होती है। वास्तविक त्यागी ब्रह्मवेत्ता होने से हमेशा ब्रह्मरूप ही हो के रहता है।

बाह्य जगत की दृष्टि से, ऐसा त्यागी कर्म करता है फिर भी उसकी मानसिक बुद्धि किस प्रकार की होती है यह जानना जरूरी है। इस सम्बन्ध में गीता में कहा गया है:—

प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ।। ५—६

ऐसा मनुष्य बोलने का, लेने का, छोड़ने का, ऑख खोलने तथा बंद करने आदि कर्म करता है परन्तु वैसा करते होने के बावजूद उसे रागद्वेष नहीं होने से, इन्द्रियाँ अपने अर्थ में—विषय में प्रवृत होती है ऐसा जानकर वह रागद्वेष रखता नहीं है। ऐसे मनुष्य की स्थिति का विशेष ख्याल देने के लिए आगे

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चलकर कहा है कि–

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा।। ५–१०

संग का त्याग कर–फलासक्ति को छोड़ ऐसा मनुष्य ब्रह्मार्पण बुद्धि से कर्म करता है और उसी कारण जैसे जल में रहने के बावजूद कमल जल से लिपटा नहीं है वैसे ही ऐसा मनुष्य कर्म करने के बावजूद कर्म के फल से बँधता नहीं है। 'ब्रह्मार्पण बुद्धि'–इस भावना की सामान्य मनुष्य को समझ नहीं होती। ऐसे मनुष्य सहजता से त्यागी बन सके उसके लिए त्यागी कैसी दृष्टि, कैसे आशय से, किसके हित के लिए, कैसा कर्म करता है वह भी समझाया गया है।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःख सुखः क्षमी।। १२–१३

वास्तविक त्यागी सर्वभूत प्राणी के प्रति वैर भावना का त्याग करता है। उतना ही नहीं परन्तु मैत्री तथा करुणा की भावना वाला होता है। ऐसी बुद्धि से कर्म करता है। इसके उपरान्त ऐसे मनुष्य निर्ममत्व–ममत्व बुद्धि के बिना अहंकार के बिना सुख–दुख में समभाव रखने वाला तथा क्षमावान होता है। दुनिया में उत्पन्न हुए सर्व प्राणी के प्रति वैर भाव को त्याग और उनके प्रति मैत्री की भावना से कर्मयोगी बहुत जल्दी से आगे बढ़ता है। ऐसे कर्मयोगी की उन्नति में अन्य प्राणी (Obstacle) विघ्न नहीं डालते हैं। परन्तु उसके मैत्री भाव से वह उसके मददगार होते हैं। वैरभाव की बुद्धि को त्यागने के लिये और मैत्री की भावना के उदय को जब मुनष्य विकसाता है तब उसमें इतना आगे बढ़ता है कि प्रत्येक प्राणी अपने मित्र ही नहीं बल्कि उससे भी विशेष अपने आत्मा रूप दिखते हैं। इस स्थिति का वर्णन गीता में किया गया है–

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।। ६–२९

ऐसे उच्च अधिकारी को, त्यागी को–कर्मयोगी को सर्व प्राणी में अपनी आत्मा दिखती है और ऐसा त्यागी सर्व प्राणी को अपनी आत्मा में देखता है। ऐसे साधक की दृष्टि में अपने और दूसरों के आत्मा में भेदभाव रहता नहीं। ऐसे मनुष्य सर्वत्र सभी जगह समदर्शी होता है।

सामान्य मनुष्य की दृष्टि में मैं और तू ऐसे जो महान भेद होते हैं उनका वास्तविक त्यागी ने त्याग किया होता है। इस त्याग के साथ मैं अपने की परिमित भावना का त्याग होने से, ऐसा योगी सर्वदेशीय आत्म भावना को प्राप्त होता है। 'मैं' का त्याग होने के साथ 'मेरे' का भी त्याग होता है। ऐसे मनुष्य 'स्व' मिट कर 'सर्वरूप' होता है। 'स्व' मिटकर 'सर्वभूत' होने के साथ राग–द्वेष की गंध भी रहने नहीं पाती, अहंकार मिट जाता है, ममत्व का नाश होता है। अहम्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और ममत्व के टूटते ही वैर बुद्धि उत्पन्न होने का अवकाश ही नहीं रहता। सर्वत्र मित्रभाव आत्मभाव प्रकट रहता है। ऐसे दृष्टि वाले त्यागी की सृष्टि भी सामान्य मनुष्य की सृष्टि से उच्च प्रकार की—बैर बुद्धि बगैर होती है। ऐसे त्यागी की दृष्टि में द्वेष नहीं होने से उसकी सृष्टि में भी द्वेष वैरभाव नही होता। ऐसा मनुष्य सर्व प्राणी में मित्रभाव, आत्मभाव से देखने से अन्य, प्राणी भी उसको मित्रभाव से—आत्मभाव से देखते हैं। इस कारण से ऐसे त्यागी को दुख—अशान्ति का कारण नहीं रहता है। केवल दृष्टि मनोदशा बदलने से वास्तविक त्यागी पूरी सृष्टि भी बदल सकता है। इस प्रकार करने से उसे कैसे अनुपम आनन्द की प्राप्ति होती है इस विषय में कहा गया है कि :—

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्।। २—५६

अभ्यास मार्ग से ज्ञानप्राप्ति जो कि अभ्यास के फलरूप है वह अधिक श्रेय—हितकारी है। ज्ञान से ध्यान—ज्ञान की सतत् स्मृति श्रेय है। ध्यान से भी कर्म फलत्याग—निष्काम अवस्था—कर्म फल के त्यागी होना वह स्थिति अधिक श्रेयस्कर है, क्योंकि त्याग से कर्मत्याग को कर्मयोगी को तुरन्त ही शांति मिलती है। प्रत्येक कर्म का शुभ—अशुभ परिणाम कालान्तर में अमुक समय के पश्चात होता है परन्तु कर्मफल त्याग होने के साथ ही कर्मयोगी को एक प्रकार की अनुपम शांन्ति का स्वाद मिलता है।

कर्मफल त्याग में कितना अधिक महत्व है यह ऊपर के श्लोक से समझ में आता है। कोई भी प्रकार का महान कष्ट उठाए बिना केवल मानसिक बदलाव से मन से कर्मफल के त्याग करने से जैसे सूर्योदय होते ही रात्रि का गाढ़ अन्धकार अपने आप दूर हो जाता है, जैसे अग्नि के पास बर्फ अपने आप पिघल जाती है, वैसे त्यागी के तमाम दुख त्याग भावना के उदय होते ही अपने आप तत्कालिक दूर होते हैं— कर्म फल त्यागी को तुरन्त ही शान्ति होती है। ऐसी शान्ति पाये हुए त्यागी की उन्नति इतने से ही अटकती नहीं। शान्ति मिलने के बाद त्यागी की कैसी कितनी तथा किस तरह की उन्नति होती है उसका विचार अगले प्रकरण में करने में आयेगा।

❑

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकरण–१६

स्वकर्म से संसिद्धि–अव्यय पद प्राप्ति

कर्मयोग का अभ्यासी धीरे–धीरे, प्रत्येक क्षुद्र आशय को छोड़, जीवन के छोटे से छोटे कर्म भी जैसे–जैसे उच्च आशय से करना सीखते हैं, वैसे–वैसे उसकी उन्नति होती जाती है। ऐसे साधक जब सर्व कर्म के फलों का संवांश त्याग करता है–वास्तविक कर्मयोगी–त्यागी होता है तब तमाम राग–द्वेष आदि उसके अन्तःकरण की मलिनता दूर होती है, मन के ऊपर का राग द्वेष रूप कचरा दूर होते ही, इस अभ्यासी का मन बहुत ही शुद्ध (Transparent) तीक्ष्ण और बहुत दूरन्देशी (Farsighted) होता है जैसे शुद्ध आईने के सामने जिस जिस वस्तु को सामने प्रस्तुत किया जाता है उस–उस वस्तु का वैसा ही स्पष्ट प्रतिबिम्ब तात्कालिक ग्रहण कर लेता है–उसी प्रकार राग द्वेष से मुक्त हुआ मन से जिस–जिस विषयों का विचार किया जाता है उन सब विषयों को शुद्ध हुआ मन तत्कालिक उसके वास्तविक स्वरूप में समझ लेता है।

इस भौतिक दुनिया के पदार्थों की कामना में जब तक मन रुका हुआ हो तब तक ऐसे मन को विशेष उच्च विषयों का दैविक विषयों का विचार करने का समय और योग्यता नहीं होती। त्याग बुद्धि के विकास के साथ मनुष्य को इस सृष्टि के क्षणिक भोग, जो सामान्य मनुष्य को अति उपयोगी लगते हैं, वे त्यागी की दृष्टि में क्षुद्र, नीरस और त्याग करने लायक लगते हैं।

सृष्टि के क्षुद्र विषयों की कामना में से मुक्त हुआ मन दूरन्देशी होता है। ऐसे मनुष्यों को भौतिक सृष्टि में स्थित दैवी जगत की झांकी होती है। दैवी जगत का दिव्य प्रकाश वास्तविक त्यागी को दो प्रकार से मदद करता है। दुनिया के विषयों के प्रति, त्यागी में हुई वैरागी वृत्ति को यह दिव्य ज्योति विशेष दृढ़–सुरक्षित करती है। इस सन्बन्ध में गीता में कहा है कि–

विषयाविनिवर्तन्ते निरादारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।। १८–५६

देहधारी पुरुष निराहार–इंद्रियों के विषयों को उपभोग नहीं करने वाला, उसकी विषयों–विषय भोगने की कामना निवृत होती है सही परन्तु उन विषयों के प्रति उसकी रसवृति तो रहती ही है। 'जब परब्रह्म का–परमेश्वर का उसे दर्शन होता हैं' तब ही उन विषयों के प्रति उसकी रसवृत्ति–कामना भी शान्त होती हैं। वास्तविक त्यागी को परब्रह्म का दर्शन होने से, तथा विषयों के प्रति और ऐसे विषयों के रसवृत्ति के प्रति वास्तविक त्यागी की उदासीनता होने से ऐसे त्यागी को अधोपतन का डर नहीं रहता। इस प्रकार होने से उसकी शक्ति का उपयोग

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आध्यात्मिक क्षेत्र में आगे बढ़ने में ही होता है।

वास्तविक त्यागी ने जगत के झूठे जंजाल में से अपनी राग द्वेष रूप वृत्ति को उठा ली होने से तथा परमेश्वर रूप प्रकाश स्तम्भ–ज्योति स्तम्भ का दर्शन किये होने से, अपने आप वह अपने ईष्ट आराध्यदेवरूपी प्रकाश घर (स्तम्भ) की तरफ खिंचा जाता है। इस दिव्य प्रदेश की मनोहर ज्योति से ही वह आकर्षित होता है। जैसे सामान्य पतंगा दिये को सोना मानता है उसमें गिरने की इच्छा रखता है उसी प्रकार वास्तविक साधक ब्रह्मज्योति को प्राप्त करने के लिये आकर्षित होता है और अन्त में उसी में लीन होकर ब्रह्मरूप प्राप्त करता है।

त्यागी–साधक जब ऐसी उच्चस्थिति को प्राप्त करता है तब वह उसकी भावनानुसार दैवी जगत को ध्यान में रखकर कर्म करता है। प्रत्येक मनुष्य तीन प्रकार में से एक प्रकार का त्यागी होता है–भक्ति, कर्मयोग या ज्ञान में से एक प्रकार की साधन प्रणालिका की तरफ प्रत्येक मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुसार उस ओर खिंचता है। यह तीन मार्ग शुरुआत में अलग–अलग जैसे दिखते हैं, परन्तु त्यागी साधक–अभ्यासी जैसे जैसे अपने ध्येय की तरफ नजदीक, और नजदीक आता जाता है वैसे–वैसे भक्ति, कर्म, ज्ञान के ये तीनों मार्ग इकट्ठे मिलते हों वैसा उसे प्रतीत होता है। एक ही ध्येय को प्राप्त करने के ये तीन अलग–अलग मार्ग होने से, ध्येय की प्राप्ति में ये तीनों मार्ग इकट्ठे होते हैं, एक दूसरे में लीन हो मिल जाते हैं।

इतनी उच्चस्थिति को प्राप्त होने के बावजूद, जब तक मनुष्य देहधारण करता है तब तक उसे कर्म तो करना ही पड़ता है। यदि साधक भक्ति की जाति का होता है तो वह साधक भगवान को नीचे के श्लोक के अनुसार अपने जीवन के अनुसार सूत्ररूप में स्वीकार कर कार्य करता है–

चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव।। १८–५६

तेरे सब कर्म मन से मुझे अर्पण कर, मेरे परायण–परमेश्वर में चित रखने वाला हो बुद्धियोग का–कर्मयोग का आश्रय ले हमेशा मेरे में चित रखने वाला हो मेरा ही ध्यान कर।

इस प्रकार ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म करने से तथा ईश्वर में चित लगाने से क्या फल होगा वह भी भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में ही कहा है:–

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्।। ४–७

मेरा परमेश्वर का आश्रय लेकर कर्म करने वाला कर्म करने के बावजूद मेहरबानी से–अनुग्रह से, शाश्वत–नित्य–और अव्यंय–अविनाशी पद को–परम स्थान को पाता है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

शाश्वत तथा अविनाशी पद को प्राप्त करने के उपाय कितने सरल तथा सीधे हैं यह ऊपर के श्लोक से स्पष्ट होता है। प्रत्येक कर्म करने के बावजूद उस कर्म को भगवच्चरणारविन्द में अर्पण करने की बुद्धि से राग–द्वेष को, अहम् भावको, काम वासना को त्याग करके करने में आये और बुद्धि हमेशा परमात्मा के ध्यान में लगाने में आए तो केवल उतने से ही शाश्वत एवं अव्यय पद की प्राप्ति करवा देने का भगवान श्रीकृष्ण का यह करार वचन है। सच्चे भक्त के लिये इससे अधिक पवित्र करार शायद ही कोई और हो सकता है।

भगवान का यह वचन भक्त के लिये महान दस्तावेज (Magna-Carta) है। कुछ एक साधक की प्रकृति ही इस प्रकार की होती है कि उनकी रग–रग में कर्म करने की शक्ति व्याप्त रहती है। ऐसे मनुष्य केवल भगवद अर्पण करने की बुद्धि से कर्म नहीं कर सकते हैं। भक्त का सत्व अलग प्रकार का होता है। वास्तविक कर्मयोग का सत्व–संगठन अलग प्रकार का होता है। भगवान जैसा बनने की ऐसे साधक की उत्कंठा होती है: 'परन्तु भगवान जैसा करके, भगवान जैसा बनना, ऐसा विचार उसके दिमाग में से हटता नहीं है।' ऐसे वास्तविक कर्मयोगी को क्या करना चाहिये उसका गीता में निर्णय दिया है। इस प्रकार के भक्त, भगवान स्वयं कैसा कर्म करते हैं, किस बुद्धि से–किस हेतु से कर्म करते हैं यह जानने को उत्सुक होता है। भगवान स्वयं कब कर्म करते हैं, क्यों कर्म करते हैं, किस तरीके से कर्म करते हैं, उसका श्रीकृष्ण ने स्वयं ही हमें गीता में दिगदर्शन कराया है:–

यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। ४–८

जब जब धर्म की–धर्म व्यवस्था की–राज्य व्यवस्था की, समाज की ग्लानि, ह्रास–नाश अव्यवस्था होती है और अधर्म का–अव्यवस्था–पाप का–अंधाधुंधी का उदय होता है तब मैं परमात्मा जन्म लेता हूँ, अवतार लेता हूँ–कर्म करने की शुरुआत करता हूँ। परमेश्वर स्वयं सामान्य रीति से निष्क्रिय है। लेकिन जब अव्यवस्था–अधर्म का जोर बढ़ता है तब प्रभु अवतार धारण करते हैं। प्रभु के अवतार होने के बाद प्रभु किस हेतु से किस प्रकार के कर्म करते हैं इसका विचार नीचे किया गया है–

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।। १८–४६

साधु–अच्छे पुरुष के संरक्षण करने, दुष्टकृतों–दुराचारियों का नाश करने तथा वैसा कर धर्म का संस्थापन करने में परमेश्वर युग–युग में अवतार लेता, कर्म करता है। अच्छे मनुष्यों का संरक्षण, दुष्ट लोगों का संहार और धर्म का संस्थापन यह तीन सिद्धान्त केवल गीता में ही नहीं परन्तु प्रत्येक सुधरी हुई

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सरकार की यह नींव रूप है। इन तीन में से पहले दो में से एक का भी बराबर पालन न करने से कोई भी राज्यव्यवस्था–समाज व्यवस्था या समाज टिक ही नहीं सकता, तो फिर उन्नति की आशा ही कहाँ से रखी जा सकती है। मनुष्य जाति के, प्राणीमात्र के भोग तथा मोक्ष के लिए सृजनहार ने यह सृष्टि रची है। उस सृष्टि में यदि अच्छे मनुष्य को सरक्षण न मिले, दुंष्टों का दमन न हो तो फिर तमाम प्राणियों का भोग एव मोक्ष का अंतिम ईश्वरी आशय फतेहमंद नहीं होगा यह स्पष्ट है। इस कारण से जब–जब दुनिया पर ऐसी आफत आती है और वह आफत इतने अधिक बड़े पैमाने पर होती है कि सृष्टि के सामान्य व्यक्ति से वह दूर न हो सके, तब प्रभू स्वयं अवतार धारण करते हैं।

वास्तविक कर्मयोगी अपने कर्म करने की प्रेरणा ऊपर के श्लोक से पाते हैं। प्रभु के प्रतिनिधि के रूप में–दैवी फरिश्ते के रूप में–देवदूत के रूप में वे इस सृष्टि मे विचरण करते हैं और दुष्टो का दमन कर–खराब मनुष्यों को काबू में रख–पापियों का निग्रह कर, साधुओं को अच्छे मनुष्यों को संरक्षण दे–उनको भयरहित करते हैं।

ऊपर के श्लोक में 'धर्म' शब्द सम्प्रदाय की संकुचित दृष्टि से कोई विशेष सम्प्रदाय या पंथ ऐसे अर्थ में नहीं लेना है। 'साधू' शब्द भी उसके व्यापक और विस्तृत अर्थ में लेने का है। 'दुष्ट' का अर्थ भी उसके वृहद् अर्थ में लेने का है। साधू का संरक्षण, दुष्ट का दमन तथा धर्म का संस्थापन यह तीन दिव्य कर्म (Divine Act) हैं। प्रत्येक देश के राज्य कर्ताओं, राज्य तंत्रों और राज्य अधिकारी इस श्लोक को सत्य समझकर आचारण कर सच्चे कर्मयोगी बने तो देश की बहुत सारी दुर्दशा दूर हो जाए।

यह पूरा विश्व विश्वनाथ का महान मंदिर है। इस विश्व मंदिर के अन्दर विचरने वाला प्रत्येक प्राणी प्रभू की सच्ची और जीवंत प्रतिमा है। वास्तविक कर्मयोगी इस प्रतिमा का पुजारी है। विश्व की–विश्वनाथ की इस पूजा में पूजा–सामग्री फल, फूल, धूप, नैवैद्य चाहिए वह कर्मयोगी अपने कर्म से अपनी समाज सेवा, साधु के संरक्षण तथा दुष्ट के दमन और धर्म–संस्थापन से पूरा करते हैं। इस प्रकार सच्चा कर्मयोगी अपने कर्म से प्रभु की पूजा कर स्वयं संसिद्धि को पाता है, स्वयं प्रभुमय होता है।

दुनिया की सर्वपूजापद्धंति से अपना कर्तव्य कर ईश्वर की पूजा करने की इस पद्धति को भगवदगीता में सर्वोतम कहा है–

> यतः प्रवृत्तिमेतानां येन सर्वमिदं ततम्।
> स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।। ४–२४

जिस परमात्मा से सर्वभूत प्राणियों की प्रवृति–उत्पति हुई है, जिस परमात्मा से यह सकल संसार विस्तरित हुआ है, उस परमात्मा की अपने कर्म से जो मनुष्य

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पूजा करते हैं उसे संसिद्धि—पूर्णतया मोक्ष मिलता है। सच्चे कर्मयोगी को भगवान श्रीकृष्ण, का यह अनुपम संदेशा है। भगवान के वाक्य रूप इस प्रकाश स्तंभ की ज्योति को लक्ष्य में रख सच्चा कर्मयोगी इस भवसागर में अपनी जीवन नौका चलाकर, इस संसार सागर को पार करता है। मोक्ष भी पाता है।

भक्त और कर्मयोगी के बाद अब तीसरे प्रकार का साधक बाकी रह जाता है। वह साधक ज्ञानी है। वास्तविक ज्ञानी मानता है कि जगत के अन्दर जो भिन्नता (Diversity) दिखती है, वह केवल आभासमात्र है और इस दुनिया का एक वास्तविक तत्व केवल ब्रह्म है। ऐसा ज्ञानी मानता है कि शुरुआत में भी एक ब्रह्म था और अन्त में भी केवल एक ब्रह्मतत्व रहेगा। समस्त जगत इस ब्रह्म तत्व का विवर्त रूप है। इस प्रकार ज्ञानी की मान्यता होने से उसमें द्वैतभाव नहीं होता है। ऐसा ज्ञानी सर्व को ब्रह्ममय देखता होने से जगत के कर्म भी वैसी बुद्धि से करता है और ऐसा करके ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है।

ऐसा ज्ञानी कैसी बुद्धि से कर्म करता है और उसका, उसे क्या फल मिलता है? उस विषय में भगवान ने स्वयं गीता में कहा है:—

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना।। ४—२५

वास्तविक ज्ञानी, ब्रह्मरूप इस विश्व को एक वेदी के रूप में कल्पना करता है। अपने जीवन को एक महान यज्ञ के रूप में कल्पना कर, जीवन के प्रत्येक कर्म को इस विश्व की वेदी पर यज्ञ भावना से ब्रह्मरूप—विश्वचलन रूप अग्नि में हवन करता है। ऐसा करने के बावजूद वह ज्ञानी होने से इन सर्व में ब्रह्म है—यह सर्व ब्रह्ममय है उसका निरन्तर अनुसंधान रखता है। अर्पण करने की क्रिया—हवन ब्रह्म है, हवि—कर्म भी ब्रह्म है। अग्नि—विश्व व्यापार भी ब्रह्म है। इस प्रकार सर्वज्ञ ब्रह्म भावना की बुद्धि से अपने सर्व ब्रह्मरूप कर्म ब्रह्मार्पण करने वाले ज्ञानी को ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार भक्त कर्मयोगी और ज्ञानी किसी भी दृष्टि से कर्म करते—करते अंत में परम शांति को पा शाश्वत और अव्यय पद को ब्रह्मभाव को पाकर ब्रह्मरूप हो जाता है। इस प्रकार भक्त, ज्ञानी और कर्मयोगी अन्त में एक ही शाश्वत सुख को—अव्यय पद को—परमात्मा को, ब्रह्म को—परमानन्द को पाता है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

❑

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गीताभ्यास कर्मयोग–परिशिष्ट

भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने सभी उपनिषदरूपी गांयों में से भगवद्गीतारूपी गीतामृत मथकर निकाला है। इस कारण से भगवद्गीता का–उसके कर्मयोग का विशेष सूक्ष्मता से अभ्यास करने वाले अभ्यासी को उपनिषद में आए कर्मयोग संबंधी भागों पर दृष्टि डालने की जरूरत है। उपनिषद के उपरान्त सनातन धर्म के कुछ एक प्रमाण ग्रन्थ हैं (Authoritative Books) । ऐसे ग्रन्थों में अलग–अलग जगह पर कर्म के विषय में काफी कुछ कहा गया है। ऐसे महत्व के धर्मग्रन्थों के महत्वपूर्ण भाग पर अभ्यासी का ध्यान आकर्षित हो तो कर्मयोग के सिद्धान्त बहुत स्पष्टता से समझ में आ सकते हैं और वैसा होने से ऐसे सिद्धान्त बहुत आसानी से आचरण में उतारे जा सकते हैं। ऐसी शुभ इच्छा से और कर्मयोग के अभ्यासी के अभ्यास की वृद्धि हो उसके लिए, महत्व के ग्रन्थों तथा उसमें से बहुत ही महत्व के भागों पर पाठक वर्ग का ध्यान आकर्षित करने का प्रयत्न किया है। इस हेतु से नीचे दर्शित परिशिष्ट तैयार किया गया है। सनातन धर्म रूपी महासागर महाविस्तृत है। उसकी गहराई समझना मनुष्य की बुद्धि के बाहर है। इस तरह होने के बावजूद इस दिशा में थोड़ा कुछ विहगावलोकन करने के लिए प्रत्येक उच्च आत्मा आकर्षित होती है। इसके साथ दिये हुए परिशिष्ट सम्पूर्ण नहीं हैं परन्तु अभ्यासी को मार्गदर्शक बनें, ऐसे उदाहरण रूप हैं। अभ्यासी आगे पढ़ने के लिये आकर्षित हो वैसे प्रसगों पर उसे शुरुआत में मार्गदर्शक हो वैसे ग्रन्थ तथा उसमें कर्मयोग के विषयों को इन परिशिष्टों में अंगुलिदर्शन किया है:–

१. गीताभ्यास–कर्मयोग और उपनिषद ग्रन्थ

२. गीताभ्यास–कर्मयोग और समृति ग्रन्थ

३. गीताभ्यास–कर्मयोग और दर्शन ग्रन्थ

४. गीताभ्यास–कर्मयोग और पुराण ग्रन्थ

५. गीताभ्यास–कर्मयोग और भारतादि इतिहास ग्रन्थ

५. गीताभ्यास–कर्मयोग और अर्वाचीन ग्रन्थ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परिशिष्ट–१

उपनिषद–श्रुति

उपनिषद ग्रन्थों का मुख्य विषय ज्ञान, ब्रह्म, अद्वैत, सर्वात्मक भावना का प्रतिपादन करना है। इस कारण से ऐसे ग्रन्थों में कर्म के विषय में विस्तृत चर्चा न की गई हो यह स्वाभाविक है। सभी कर्म परिणाम में बंधनकारक हैं इसलिए उनका सन्यास करना चाहिए, उपनिषद ग्रन्थों का यही मुख्य प्रतिपाद्य विषय है।

इस प्रकार होने के बांवजूद भी उपनिषद ग्रन्थों की यह मान्यता है कि जैसे बिना कलई के बर्तन में खट्टी छाछ अच्छी नहीं रहती है उसी प्रकार शुद्ध अन्तःकरण के बिना ज्ञान टिक नहीं सकता। इस कारण से अन्तःकरण की शुद्धि ज्ञानमार्ग में आवश्यक है। अन्तःकरण की शुद्धि यानि उसके मल को–रागद्वेष को त्यागना। ऐसी शुद्धि करने के लिए कर्म की महत्ता को उपनिषद में भी स्वीकारा है। इस कारण से उपनिषद ग्रन्थ में कुछ एक जगहों पर कुछ एक कर्म–अन्तःकरण की शुद्धि करने में उपयोगी होने वाले कर्म के सम्बन्ध में विचार किया गया है। उपनिषद के ये विचार कर्मयोगी को बहुत उपयोगी हैं; भगवद्‌गीता का कर्मयोग का मूल सिद्धान्त (Fundamental Principle)–सिद्धान्त रत्न उपनिषद ग्रन्थों में कहीं–कहीं अलग–अलग जगहों पर पड़े हुए हैं। ऐसे अलग–अलग सिद्धान्तों को एकत्र कर उस पर विचार करने से अभ्यासी में श्रद्धा तथा उत्साह बढ़ता है। इस कारण से सच्चा कर्मयोगी बनने की इच्छा करने वाले साधक को समय मिलते ही नीचे दर्शित मूल ग्रन्थों को पढ़ने की विशेष जरूरत है।

ईशावास्य उपनिषद

यह उपनिषद ग्रन्थ बहुत छोटा है फिर भी कर्मयोग का सिद्धान्त इसमें है। पहले दो श्लोक में मूल सिद्धान्त है। इस जगत में एकमात्र परमात्मा ही सत्य है। उसके अलावा तमाम वस्तु असत्य हैं। इस प्रकार के ज्ञान से जगत में से अभ्यासी की सुखबुद्धि तथा शाश्वत बुद्धि का तिरोधान होता है, घटती है। जगत का त्याग–जगत की तीन प्रकार की ऐष्णा (पुत्रेषणा, लोकेषणा, वित्तेषणा) का त्याग कर सुखी होने का सन्मार्ग इस उपनिषद में बताया गया है। किसी के भी धन की आकांक्षा नहीं रखने का इस उपनिषद में आदेश है। इस प्रकार सभी ऐष्णाओं का त्याग कर यह सर्व जगत परमात्मा का स्वरूप है वैसी भावना करने की है। कामना त्याग–वासना त्याग–फलाकांक्षा के त्याग होते ही निष्काम बुद्धि अपने आप प्रगट होती है। कर्म मनुष्य से छूटे वैसे नहीं हैं। इस कारण से त्याग बुद्धि से विहित कर्म (Prescribed Action) करके मनुष्य को जीवन व्यतीत करना चाहिए। त्याग बुद्धि में विहित कर्म वर्णाश्रम कर्म करने से मनुष्य पापकर्म के अशुभ फल से लिपटता नहीं है। ऐसा इस उपनिषद का सिद्धान्त है (१–२)।

अपनी आत्मा में सर्वभूत को देखने वाला और सर्वभूत में अपनी आत्मा को

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देखने वाला किसी की निन्दा नहीं करता। (६)

ऐसा ऐक्य भाव होने से मनुष्य के शोक, मोह आदि का नाश होता है। ऐक्य भाव को अलग रखकर भी जो अविद्या से–काम बुद्धि से कर्म करता है वह दुःख को प्राप्त होता है।

केन उपनिषद

सर्वात्म भावना के महत्व को इस उपनिषद के दूसरे खण्ड के पाँचवे श्लोक में दर्शाया गया है। सर्वभूत में एक आत्मा को देखने वाला धीरपुरुष अमृत रूप होता है। इस उपनिषद के चौथे खण्ड में ब्रह्म विद्या के साधनों को दर्शाया गया है। उस खण्ड के आठवें श्लोक में बताया है कि तप, दम और कर्म ये ब्रह्म विद्या की प्राप्ति के महत्व के साधन हैं। वेद वे ब्रह्म विद्या के स्थानरूप हैं। ब्रह्म विद्या का वास्तविक स्थान सत्य है।

कठ उपनिषद

इस उपनिषद में दो अध्याय हैं और दोनों अध्याय में तीन–तीन वल्ली हैं। यह उपनिषद उत्तम है। यमराज तथा नचिकेता का प्रसिद्ध संवाद इस उपनिषद में है।

आरुणी नाम के ऋषि ने यज्ञ किया। आरुणी को उद्दालक नाम का पुत्र था। जैसे इस दुनिया में हमेशा बनता है उसी प्रकार पुत्र के प्रति प्रेम को लेकर आरुणी मुनि ने यज्ञ की पूर्णाहुति के समय सभी अच्छी गायों को अपने पुत्र के लिए रख, निर्बल, दूध न देने वाली गायों को ब्राह्मणों को दान में दिया। पिता की यह ममता पुत्र ने छुड़ाई, अपने तथा पिता के उद्धार में आड़े आने वाला ममत्व छुड़ाया। उद्दालक की पितृभक्ति का भी इस उपनिषद में अच्छा परिचय होता है।

जिस वस्तु का दान करना हो वह वस्तु उत्तम होनी चाहिए। इस कारण से बताया है कि अशक्त गायों के दान से दाता को आनन्दरहित लोक की प्राप्ति होती है।

अतिथि सत्कार का महत्व अगले आठवें श्लोक में बताया है। जिस मनुष्य के घर में अतिथि, ब्राह्मण बिना भोजन किये–बिना भोजन पाये रहते हैं उस घर के मालिक की आशा, प्रतीष्ठा, अच्छे मनुष्यों का साथ और सहवास, यज्ञ, पुत्र और पशुओं का नाश होता है।

नचिकेता को लुभाने के लिए यमराज उसे दुनियां के पदार्थ मांगने को कहते हैं। नचिकेता कहते हैं कि दुनिया के पदार्थ क्षणिक हैं। ऐसे पदार्थ इन्द्रियों के तेज का नाश करते हैं। लम्बे से लम्बा आयुष्य भी क्षणिक जैसा है। मनुष्य केवल द्रव्य से संतुष्ट नहीं होता। सौन्दर्य तथा क्रीड़ा से उत्पन्न होने वाला सुख क्षणिक होने से सयाने मनुष्य उससे संतुष्ट नहीं होते हैं। (२६–२८)

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रथम अध्याय की तृतीय वल्ली कर्मयोगी के लिए उपयोगी है। अपने किये हुए कर्म जीव को अवश्य भुगतने पड़ते हैं। यह शरीर रथ है उसमें स्थित आत्मा रथी रथ को चलाने वाला है, बुद्धि सारथी है और मन लगाम है। इन्द्रियां इस शरीररूपी रथ के घोंड़े हैं। इन्द्रियों के विषय रथ के मार्गरूप हैं। जो अविवेकी होता है वह अयुक्त मनवाला होने से इन्द्रियों को काबू में नहीं रख सकता परन्तु जो ज्ञानवान होता है वह इन्द्रियरूपी अश्वों को काबू में रखता है, इन्द्रिय–निग्रह करता है। इन्द्रिय–निग्रह के बिना परब्रह्म का साक्षात्कार नहीं होता। आगे चलकर कहा है कि इन्द्रिय से उसके विषय अधिक महान हैं। अर्थ से मन तथा मन से बुद्धि विशेष महान है। इसकी तुलना गीता के अध्याय ३–४० से की जा सकती है।

दूसरे अध्याय के छठीं वल्ली (१०–५०) में कर्मयोग के महत्व के सिद्धान्त हैं। जब पाँच इन्द्रिय सहित मन स्थिर होता है तब बुद्धि की चेष्टा बंद होती हैं और मनुष्य परमगति को पाता है; इन्द्रियों को दृढ़ता से धारण कर रखना इन्द्रियों का निग्रह करना योग है; इस योग के प्राप्त होने के पश्चात भी अप्रमत्त–बिना आलस्य रखे उसका रक्षण करना चाहिए क्योंकि 'आलस्य' से एक बार प्राप्त हुआ योग भी खो बैठने का भय रहता है। बुद्धि में कामवासना रहती है। इसलिये वैसी सर्वकामनाओं के त्याग से मनुष्य अमृत्य भाव को प्राप्त होता है। हृदय की सर्व कामनारूपी ग्रन्थी का जब नाश होता है तब मनुष्य अमृतमय होता है। (५–६ श्लोक १०–१५)

प्रश्न उपनिषद

प्रथम प्रश्न श्लोक १५–१६ में दर्शित है कि ब्रह्मलोक प्राप्त करने के लिए तप, ब्रह्मचर्य तथा सत्य की जरूरत है। जिनमें कुटिलता, अनृत–असत्य भाषण तथा माया नहीं वही ब्रह्मलोक को पाते हैं। छठें प्रश्न के छठें श्लोक में मरण–संबंधी दुःख के नाश के लिये पुरुष प्राप्ति–आत्मा का ज्ञान महत्व का है ऐसा दर्शाया है।

मुंडक उपनिषद

इस उपनिषद में तीन मुंडक प्रकरण हैं और प्रत्येक प्रकरण के दो खण्ड–शाखा प्रकरण हैं। तीसरे मुंडक के दोनों खण्ड कर्मयोग के अभ्यासी के लिये उपयोगी हैं।

प्रथम खण्ड में जीव और ईश्वर की, दुनिया रूपी एक वृक्ष पर साथ रहते हुए पक्षी की जैसी कल्पना की है। जीव सुख–दुःख के उत्पादक पुण्य–पाप रूपी कर्म करते हैं और उसी से उसका फल भोगते–पाते हैं। ईश, विश्वरूपी एक ही पेड़ पर जीव के साथ रहते हैं फिर भी कर्म के साक्षी के रूप में ही रहते हैं। ईश कर्म के कर्ता नहीं।

जीव कर्म करते रहने से सुख–दुःख को पाता है। परंतु जब ईश्वर को देखता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है—पहचानता है तब वह शोकरहित होता है।

आत्मा सत्य, तप, ब्रह्मचर्य और ज्ञान से प्राप्त होता है। सत्य की महिमा बहुत बड़ी है यह जानने के लिये इस उपनिषद में कहा है कि सत्य की ही अन्त में जय होती है, असत्य की—झूठ की नहीं। सत्य का अनुष्ठान करने वाले के लिए सत्य से देवयान मार्ग खुल जाता है।

इस मुंडक के दूसरे खण्ड में कहा है कि विषय का चिन्तन करने वाला अपने इच्छित विषयों में जन्म धारण करता है। कृतात्मा—सर्वकामनाओं को त्याग करने वाले की कामना इस लोक में ही पूरी हो जाने से दुबारा जन्म लेने की जरूरत नहीं होती।

आत्मा की प्राप्ति में कौन से साधन उपयोगी हैं तथा कौन से साधन निरुपयोगी हैं यह भी बताया है। बलहीन मनुष्य से, प्रमाद से यह आत्मा प्राप्त नहीं हो सकती। सन्यासरहित—त्यागरहित मनुष्यों से भी वह प्राप्त नहीं किया जा सकता परंतु रागद्वेष के त्याग करने से जितेन्द्रिय तथा शान्तचित्त वाला होने से आत्मा प्राप्त हो सकती है। (४—५)

समुद्र में नामरूप का त्याग करके नदियाँ मिल जाती हैं, उसी प्रकार परमात्मा में अपने अहंभाव को त्याग कर मिल जाने से दिव्य पुरुष की प्राप्ति होती है (८) गीता के २—७० से तुलना करें।

माण्डूक्य उपनिषद

इस उपनिषद में १२ मंत्र हैं। इन मंत्रों पर गौडपादाचार्य ने कारिका लिखी है। आगम, वैतथ्य, अद्वैत और अलातशांति इस टीका के ये चार प्रकरण हैं।

ब्रह्म के चार पाद, ओंकार का वर्णन आदि विषय इस पाद में वर्णित हैं। वैतथ्य प्रकरण में जगत के तमाम भावों को मिथ्या (Transitory) ऐसा दर्शित किया है। यति के आचार का वर्णन करते हुए कहा है कि जो कोई सदइच्छा से प्राप्त होता है उस पर शरीर का निर्वाह करना (३७) गीता के ४—२२ से तुलना करें।

तीसरा प्रकरण अद्वैत प्रकरण है । इस प्रकरण में बताया है कि मन से ही द्वैतभाव उत्पन्न होता है। मन को लेकर ही जगतरूप दृश्य है और मन अमन हो जाय तब दिखने वाला द्वैत , अद्वैत हो जाता है (३०—३१)। सतत प्रयत्न करके मन का निग्रह करना (४१) और मनोनिग्रह से योगी को अभयता, दुःख का क्षय तथा शन्ति प्राप्त होती है (४०) गीता के (६—३६) से तुलना करें।

छान्दोग्य उपनिषद

इस उपनिषद में आठ प्रपाठक हैं। इस उपनिषद में उपासना के विषय पर बहुत अच्छी चर्चा की गयी है। प्रत्येक प्रपाठक के विभाग को खण्ड कहा गया है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रथम प्रपाठक में ओंकार की उपासना परमात्म बुद्धि से करने को कहा गया है। दूसरे प्रपाठक के २३वें खंड में धर्म के विभाग रूप में यज्ञ, अध्ययन और दान के विषय में कहा गया है।

चौथे प्रपाठक के चौथे खण्ड में सत्यकाम जाबालि गुरु के आश्रम में जाता है। गुरु उसका गोत्र पूछते हैं। सत्यकाम अपने पिता के नाम के बदले अपनी माँ का नाम बताता है। सत्यकाम के ऐसा सत्य बोलने से ही गुरु उसे स्वीकार करते हैं। ब्राह्मण के सिवा ऐसा सत्य कोई अन्य नहीं कह सकता, ऐसा गुरु कहते हैं। सत्य वचन कितना श्रेयस्कर है यह इस कथा से दर्शित होता है। पुरुष यानी मनुष्य संकल्पवान है और उसी कारण जैसा–जैसा वह संकल्प करता है वैसा–वैसा वह होता जाता है। इस कारण से संकल्प–विचार हमेशा शुद्ध और उच्चगामी रखने को कहा गया है (३–१४)।

बृहदारण्यक उपनिषद

इस उपनिषद में ६ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय के विभाग को ब्राह्मण कहा गया है।

प्रथम अध्याय में अश्व का प्रजापति रूप में वर्णन करके अश्वमेध यज्ञ का रहस्य समझाया गया है। चौथे अध्याय के चौथे ब्राह्मण में आत्मा नया शरीर किस तरीके, से पूर्व की वासना के आधार पर धारण करता है उस विषय का विवेचन है। जैसे घास का एक छोटासा कीड़ा एक तिनके से दूसरे तिनके पर पैर रखता है और पिछला पैर उठा लेता है उसी प्रकार आत्मा पुराने शरीर में से नया शरीर ग्रहण करता है। जैसे सुनार एक सोने के टुकड़े को तोड़कर दूसरा एक अच्छा और नया घाट (Design) तैयार करते हैं (३–४) वैसे हिरण्यगर्भ एक शरीर के नाश के बाद उसकी वासना के अनुरूप, दूसरे अच्छे शरीर की रचना करते हैं।

यह पुरुष काममय है। पुरुष की जैसी इच्छा होती है, वैसा ही उसका निश्चय होता है। इस प्रकार की इच्छा के अनुसार–किए हुए निश्चय के अनुसार वह कर्म करता है और अपने किए हुए शुभाशुभ कर्म के अनुसार वह शुभाशुभ फल को प्राप्त करता है। इसलिए मनुष्य को–इच्छा क्षुद्र विषय की नहीं रखकर उच्च विषय की ही रखना और निश्चय भी वैसा ही करना। इस प्रकार का निश्चय करने के लिए मनुष्यों को एषणा का त्याग करने की जरुरत है। एषणा त्याग से मनुष्य पुण्य कर्म करने की तरफ झुकते हैं, पुण्य प्रभाव से मनुष्यों को ज्ञान प्राप्त होता है और उससे मोक्ष होता है। सर्प जैसे शरीर पर से अपनी केंचुली का त्याग करता है उसी प्रकार जीवनमुक्तको शरीर पर से ममता उठा लेने की जरूरत है।

तैत्तिरीय उपनिषद

इस उपनिषद के तीन प्रकरण हैं– शिक्षा अध्याय, ब्रह्मवल्ली और भृगुवल्ली छोटे विभाग को अनुवाक नाम दिया गया है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शिक्षा अध्याय के ६वें अनुवाक में रूत–शास्त्र के अनुसार किए हुए कर्तव्यों को निश्चय, सत्य के तप, इन्द्रियनिग्रह, शम–मनोनिग्रह–स्वाध्याय–सतशास्त्रों का अभ्यास,अग्निहोत्र यह सर्व अनुष्ठान–करने योग्य कर्म बताये गये हैं सत्य तप स्वाध्याय को उत्तम कर्म कहा है।

ग्यारहवें अनुवाक में वेदाध्ययन करने के बाद गुरु शिष्य को उपदेश देते हैं कि सत्य बोलो, धर्म का आचरण कर, स्वाध्याय करने में आलस्य न करो। गृहस्थाश्रम को स्वीकार कर और वैसा करके प्रजातन्तु के सूत्र को काट न डाल, प्रजोत्पत्ति करो। मातापिता, अतिथि और आचार्य को देव समझ उनकी उपासना, सेवापूजा करनी चाहिए। ब्राह्मण को मान देना,यथाशाक्ति दान देना और वह भी श्रद्धायुक्त होकर देना। ऐसा दान पात्र–अपात्र का विचार कर ही देना।

भृगुवल्ली क़े दशम अनुवाक में अतिथि सत्कार तथा अन्नदान को एक व्रत के रूप में आचरण करने को कहा गया है। गृहस्थाश्रमी के घर में सम्मानपूर्वक अतिथि का सत्कार होना चाहिए। ऐसे गृहस्थाश्रमी को दूसरे जन्म में सत्कार्यपूर्वक अन्न मिलता है।

ऐतरेय उपनिषद

इस उपनिषद में तीन अध्याय हैं। हर एक अध्याय में अलग–अलग खंड हैं।

प्रथम अध्याय के तीसरे खण्ड में देह की उत्पत्ति कर्म के अनुसार होती है वह कहा गया है। तत्वज्ञान से पुनर्जन्म का अभाव होता है। नामदेव को ज्ञान होने से चालू देह के नाश होने के बाद स्वर्गसुख भोगकर जन्म–मरण से मुक्ति मिली थी, मोक्ष पाया था यह बात दूसरे अध्याय में कही है।

श्वेताश्वतर उपनिषद

इस उपनिषद में छः अध्याय हैं। पहले अध्याय में दर्शाया गया है कि जैसे तिल को पीसने से तेल दिखता है, जैसे दही को विलोने से घी दिखता है, जैसे अरनी की दो लकड़ी को घिसने से उसमें अग्नि पैदा होती है, उसी प्रकार इन्द्रिय–निग्रह मनोनिग्रह रूप तप और सत्य के अनुष्ठान से आत्मा देखी जा सकती है–व्यक्त की जा सकती है।

५वें अध्याय में कहा है कि यह जीवात्मा स्वरूप से स्त्री–पुरुष, नपुंसक नहीं परन्तु जो जो शरीर वह धारण करता है उस उस रूप में वह दिखती है। छठे अध्याय में कहा है कि सभी भूत प्राणी के शरीर में एक अन्तर्यामी देव रहा है। प्राणी के सब कर्मो का वह नियामक तथा साक्षी है (६–११)।

ब्रह्मबिन्दु उपनिषद

इस उपनिषद में मन के स्वरूप का अच्छा वर्णन है। मनुष्य के बंध तथा मोक्ष

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का कारण मन है। अशुद्ध यानी कामनायुक्त मन से मनुष्य को बन्धन होता है और कामना–इच्छा वासना के बिना मन से, निष्काम मन से मनुष्य को मोक्ष होता है।

मनुष्य का नाश वह तो देह का होता है, जीव का नाश नहीं होता। देह के नाश होने से जीव कर्मानुसार नया देह धारण करता है।

लाल, सफेद, कांली ऐसी अलग–अलग रंगों वाली गायों का दूध सफेद एक ही रंग वाला होता है, इस प्रकार देह अलग–अलग होने के बावजूद उसमें रही विज्ञान आत्मा एक है। मनरूपी मथानी से मथकर अलग–अलग देहों के पीछे रही एक आत्मा के दर्शन कर। सर्वप्राणी मात्र में जो शक्ति है वह मैं ही हूँ मैं सर्वभूतमय हूं वैसी भावना करनी।

अक्षि उपनिषद

प्रत्येक मनुष्य दूसरों को दुःख न करे वैसे प्रकार के पुण्य कर्म का सेवन कर, पाप से डरना, भोग की उपेक्षा कर, मन, वचन, वाणी से सत्संग करना, सत्शास्त्रों का अध्ययन करना–यह इस योग की मुख्य भूमिका है।

मैत्रायणी उपनिषद

प्रत्येक मनुष्य को अपने कर्म–अवश्य भोगने पड़ते हैं। मरण यह मनुष्य के लिए आवश्यक है। जैसे पशु रस्सी से बँधा होता है वैसे ही भूतात्मा अच्छे या खराब कर्म से बँधा हुआ है।

धर्माचरण और विद्या की प्राप्ति यह भूतात्मा को तारने के उपाय हैं। जो अपने आश्रम धर्म का पालन करते हैं वे तपस्वी हैं। इस प्रकार का तप किए बिना–वर्णाश्रम धर्म का पालन किए बिना कर्मशुद्धि नहीं होती है। ❑

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परिशिष्ट–२

स्मृति ग्रंथ

भगवद्‌गीता में बहुत कुछ जगहों पर, नियत कर्म, स्वकर्म, स्वधर्म, कर्तव्य कर्म आदि शब्द आते हैं। नियत्त कर्म यानी क्या, मनुष्यों के लिए कौन–कौन से कर्म नियत कर्म कहलाते हैं उसका विचार करने की कर्मयोगी को प्रारम्भ में ही जरूरत होती है।

धर्म, स्वधर्म, वर्णाश्रम धर्म आदि अलग–अलग धर्मो का यथार्थ ज्ञान पाने के लिए स्मृति ग्रंथों का अभ्यास करना बहुत जरूरी है।

स्मृति की संख्या के बारे में कुछ लोगों में मतभेद है। परंतु सामान्य रीति से १८ स्मृति ग्रंथ प्रामाणिक रूप से माने गये हैं। इन १८ में से मनुस्मृति याज्ञवल्क्य स्मृति–ये दो मुख्य स्मृतियाँ हैं। कलियुग में पराशर स्मृति भी उपयोगी स्मृति गिनी जाती है।

आहार–व्यवहार, प्रायश्चित, वर्णाश्रम धर्म, सामान्य धर्म, आपद धर्म, राज्य व्यवस्था आदि विषय सभी स्मृतियों में प्रधान रूप से चर्चित किये गये हैं। समाज के अलग–अलग अंगों की कैसे–कैसे संयोगों में कैसे–कैसे कर्तव्य हैं वे स्मृति ग्रंथों में दर्शित होने से स्मृति ग्रंथों को धर्मशास्त्र भी कहा गया है (Science of duties) ।

स्मृति ग्रंथ सैकड़ों वर्ष पहले लिखे गये थे। उस समय मनुष्य जाति इतनी अधिक विस्तृत न थी, समाज की जरूरतें भी परिमाण में कम थीं इस कारण से रोज घर के काम में राज्य कार्यभार में तथा धर्म के काम में उपयोगी हो वैसा एक ही ग्रंथ उस समय की प्रजा के लिए काफी था।

आजकल स्थिति बदल जाने से स्मृति ग्रंथों के कुछ एक भाग में ढील देने की जरूरत है। महर्षि पराशर ने भी यहं आवश्यकता देखी थी जिसके कारण पराशर स्मृति में थोड़ा बहुत परिवर्तन बदलती हुई स्थिति को देखते हुए किया था।

इस प्रकार होने से भी स्मृति के–धर्मशास्त्र के बहुत कुछ सिद्धान्त गृह विद्या, राज्य विद्या, आरोग्य विद्या, समाज विद्या आदि उपयोगी विज्ञान के मौलिक सिद्धान्त रूप होने से अभी भी उपयोगी हैं। इस कारण से स्मृति में दर्शित ज्ञान मनुष्य के आरोग्य, सामाजिक सुख, राज्य–व्यवस्था के लिए बहुत लाभदायक होने से अभी भी हमारे सुशिक्षित वर्ग के और युवक वर्ग के लिए स्मृति ग्रंथ पढ़ने की खास जरूरत है।

दुनिया की बदलती हुई स्थिति में अपना कर्तव्य कर्म क्या है यह निश्चित करने के लिए कर्मयोगी को तो धर्मशास्त्र का ज्ञान बहुत महत्व का है। धर्मशास्त्र–स्मृति ग्रंथ का ज्ञान कर्मयोग के अभ्यासी के लिए भालमीथी जैसा है। स्मृति ग्रंथों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का अभ्यास कर उसके पीछे छिपे सिद्धान्तों का बहुत अच्छा ज्ञान शुरुआत में ही लेने की जरूरत है। भगवदगीता जैसे छोटे ग्रंथ में भी स्मृति ग्रंथों के कुछ एक महत्व के सारांश दिये गये हैं, परतु कर्मयोग को अपने जीवन का ध्येय बनाने की इच्छा करने वाले अभ्यासी को स्मृति ग्रंथों का अच्छा अभ्यास किए बिना काम नहीं चल सकता।

मनुस्मृति

इस स्मृति में १२ अध्याय हैं। पहले अध्याय में १११–११८ श्लोक में पूरी स्मृति में क्या–क्या, कौन विषय की चर्चा की है उसकी एक संक्षिप्त सूची दी गयी है।

पहले अध्याय में जगत की उत्पत्ति का वर्णन है। ब्रह्मचारी के कर्तव्य कर्मो का वर्णन दूसरे अध्याय में है। विवाह लग्न तथा पंच महायज्ञों का वर्णन तीसरे अध्याय का विषय है। चौथे अध्याय में आजीविका तथा उसके साधन आदि दर्शित हैं। ५वें अध्याय में भक्ष्याभक्ष्य–विवेक, शौच–निर्णय और स्त्री–धर्म के विषय आये हैं।

वानप्रस्थ के तथा राजा के धर्म छठें तथा सातवें अध्याय में कहे गये हैं। आठवें तथा नवें अध्याय में दीवानी तथा फौजदारी कायदे कानून के विषय हैं। आपत्ति धर्म आदि दसवें अध्याय में कहे गये हैं। ग्यारहवें अध्याय में प्रायश्चित विधि दी गई है। कर्म तथा उससे होने वाला शुभाशुभ फल तथा उसके विपाक आदि का आखिरी अध्याय में विचार किया गया हे। कर्म के सामान्य स्वरूप को और उससे होने वाले फल का इस अध्याय में विचार किये होने से कर्मयोग के अभ्यासी के लिए यह अध्याय अधिक मनन करने लायक है।

प्रथम अध्याय में धर्माधर्म विवेक का भी विचार करने में आया है। यज्ञ भाग आदि धर्मकर्म हैं। ब्रह्महत्या वगैरह अधर्म–न करने लायक कर्म है (२६)। परमेश्वर ने शुरुआत में प्राणी के कर्मानुसार सृष्टि की व्यवस्था की है (२८–२९)।जैसे ऋतु बदलती है तो वनस्पति, पेड़, बेल आदि नये फल–फूल धारण करते हैं उसी प्रकार प्रत्येक जीव अलग–अलग जन्म में अपने पहले के शुभाशुभ कर्मो के अनुसार सुख–दुःख भोगते हैं (३०)। सतयुग, द्वापर युग, त्रेता युग और कलियुग ऐसे चार विभाग किए हैं। पूर्व पूर्व के युग से उत्तर–उत्तर के युग में मनुष्य की धर्मभावना कम होती जाती है। इस कारण से मनुष्य के आयुष्य में भी उस प्रकार बदलाव होता जाता है (८०–८७)। आचार वही परमधर्म है उस कारण आचार भ्रष्ट हुए लोगों को वेदोक्त कर्म के फल नहीं मिलते, जबकि आचारवान मनुष्यों को सर्ववेदोक्त कर्म का सम्पूर्ण फल मिलता है (१०८–११०)।

दूसरे अध्याय में पहले पाँच श्लोक में धर्म का सामान्य लक्षण तथा काम्यबुद्धि से धर्माचरण नहीं करने को कहा गया हैं। धर्माचरण में काम्यबुद्धि रखना यह ठीक नहीं वैसे ही सामान्य लोग काम्यबुद्धि के बिना कर्म नहीं कर सकते। कामनारहित

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मनुष्य का कोई कार्य देखने में नहीं आता। इस प्रकार होने से धन स्त्री पुत्र लोकेषणा ऐसे प्रकार की क्षुद्र कामना का त्याग कर उच्च प्रकार की कामना से कर्म करना चाहिए। इस प्रकार कर्म करने वाले–उच्च आशय से और निष्काम बुद्धि से कर्म करने का जो जो संकल्प करते हैं वह सिद्ध होते हैं (१–५)।

क्षुद्र प्रकार की कामनाओं का त्याग करना हो तो इन्द्रिय–निग्रह की जरूरत पड़ती है। पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा ग्याहरवाँ मन है। मन को संयमित करने से तमाम इन्द्रियों का निग्रह होता है। इन्द्रियों तथा विषयों के संग से जीव को परिणाम में दुःख होता है। जैसे अग्नि में घी डालने से अग्नि शान्त नही होती परंतु अधिक प्रज्ज्वलित होती है, वैसे विषय भोगने से इन्द्रियों की लालसा–भोगवासना शान्त–तृप्त नहीं होती परंतु और अधिक बढ़ती है (८६–६५)।

जैसे पानी के बर्तन में एक भी छिद्र हो तो पूरा पानी बह जाता है उसी प्रकार यदि एक भी इन्द्रिय प्रमत्त हो तो बुद्धि का–विवेक बुद्धि का नाश होता है (६६)। जब तक इन्द्रिय निग्रह बराबर न हो तब तक वेदाध्ययन, दान, यज्ञ, तप कुछ भी फल नहीं देता (६७)।

मनोनिग्रह तथा इन्द्रिय–निग्रह के विषय में कहा है कि शुद्ध मन वाले, गुप्त वाणी वाले और सत्यवादी मनुष्य को वेद में कहे सर्वशुभ फल की प्राप्ति होती है (१६०)।

माता–पिता तथा आचार्य का मनुष्य पर बहुत उपकार होता है इस कारण से इन तीनों के प्रति पूज्यभाव रखना, उनकी सेवा करना ही वास्तविक तप है। इस प्रकार का तप करने वाला मनुष्य तेजस्वी होता है और तीनों लोक में विजयी भी होता है (२२५–२३७)।

तीसरे अध्याय में विवाह विचार और उसके सम्बन्धी कन्या की योग्यता अलग–अलग जाति की लग्नविधि, पंचमहायज्ञ, श्राद्ध आदि विषय दिये गये हैं। अतिथि सत्कार के सम्बन्ध में बताया है कि गृहस्थ के घर में अतिथि आये तो उसका सत्कार करना, उसको बैठने के लिए आसन, पीने के लिए पानी तथा भोजन के लिए अन्न देना चाहिए। अतिथि के सत्कार से जगत में कीर्ति बढ़ती है। गृहस्थ लम्बी आयु वाला होता है और अन्त में स्वर्ग प्राप्त होता है (६६–११६)।

चौथा अध्याय गृहस्थाश्रम के लिए है। गृहस्थाश्रम में आजीविका के साधन की जरूरत पड़ती है। आजीविका चलाने में दूसरों को उपद्रव न हो यह खास बात ध्यान में रखने की जरूरत है। शील तथा उच्चवृत्ति से चलती आजीविका को सर्वोत्तम कहा गया है। कपट और शठतारहित शुद्ध साधनों से आजीविका चलाना सर्वसुख का मूल संतोष है जिससे आजीविका में भी संतोष रखना (१२)।

स्मृति में दर्शित प्रमाणों के सदाचार का पालन करने से मनुष्य को आयुष्य, आरोग्य और प्रतिष्ठा मिलती है। दुराचारी मनुष्य अपने दुराचार से ऊपर के तीनों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का नाश करते हैं (१५६–१५७)।

दुराचारी यानी अधर्म का आचरण। ऐसा दुराचारी मनुष्य इस लोक या परलोक में सुख नहीं पाता। अधर्मी की तुरन्त पायमाली होती है। इस प्रकार समझकर अधर्म आचारण का विचार भी नहीं करना चाहिए। पृथ्वी में बोया हुआ बीज जैसे तुरन्त का तुरन्त फल नहीं देता परन्तु कालान्तर में जरूर फलित होता है उसी प्रकार धर्म और अधर्म भी समयान्तर से फल जरूर देते हैं। अधर्म आचरण से कोई समय मनुष्य संपत्ति पाता है, शत्रु का पराजय करता है फिर अन्त में ऐसे अधर्मी मनुष्य की उसके पुत्र, पौत्र तथा सभी संपत्ति का नाश होता है। इस प्रकार होने से मनुष्यों को अर्धर्मों से दूर रह धर्माचरण का सदाचरण का सेवन करना चाहिए (१७०–१७६)।

मनुष्य के मर जाने के बाद, उसके सगे सम्बन्धी, मित्र, पुत्र या पैसा कोई भी उसके साथ नहीं जाता। इस जिन्दगी दरम्यान मनुष्य के किये हुए शुभाशुभ कर्म–धर्माधर्म उसके साथ जाते हैं। इस कारण से मनुष्य को हमेंशा धीरे–धीरे धर्म संचय करना चाहिए (२३८–२४३)।

धर्म करने में भी मनुष्य को अभिमान नहीं करना चाहिए। धर्म अपनी आत्मा की उन्नति कें लिए आचरण करने में आता है लोगों को बोल बताने के लिए नहीं। तप करके गर्व करनें से, यज्ञ करके असत्य बोलने और दान करके कहने से इन तीनों का नाश होता है (२३६–२३७)। असत्य भाषण, झूठ बोलना–यह बड़े से बड़ा पाप है। सभी वस्तु की चोरी करने वालों को जो पाप लगता है वह पाप असत्य बचन बोलने वाले को–झूठे मनुष्य को लगता है (२५६)।

पाँचवे अध्याय में भक्ष्याभक्ष्य तथा शुद्धि का विचार किया गया है। सदाचारी मनुष्य को मृत्यु का भय नहीं होता। संध्या वगैरह नित्य कर्म तथा वेदोक्त कर्म कें अभाव से सदाचार के त्याग से और निषिद्ध की हुई वस्तु के खाने से ब्राह्मणों का मृत्यु से नाश होता है। अच्छे खानपान तथा सदाचार से मनुष्य दीर्घायु होता है। वह सभी मनुष्यों को सुविदित ही है। इस प्रकार होने से कौन–कौन शाक–अन्न–फल खुराक वर्जित किये गये हैं उसका इस अध्याय में स्पष्टीकरण किया गया है। मांसाहार त्याज्य कहा गया है और वैसा करने से १०० अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है (५६)।

शुद्धि के लिए भी इस अध्याय में वर्णन है। सभी प्रकार की शुद्धि में सन्मार्ग से, न्याय से प्राप्त द्रव्य की शुद्धि बड़ी से बड़ी शुद्धि है (१०६)। काफी वस्तुओं की शुद्धि अग्नि से, पानी से या माटी से होती है परंतु विद्वान क्षमा से, अधर्म करने वाला दान से और छिपे पाप करने वाला गायत्री मंत्र के जप से शुद्ध होता है। पानी के साथ शरीर शुद्ध होता है। सत्य वचन से मन शुद्ध होता है। तप से जीवात्मा शुद्ध होती है और ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है (१०६)। स्मृति शास्त्र की उदार भावना के अनेक उदाहरणों में से ऊपर का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गृहस्थाश्रम में स्त्री एक महत्व का भाग अदा करती है इस कारण से पत्नी धर्म भी उसमें कहा गया है। पतिव्रता रहना और स्वामी की सेवा करना यह स्त्री के लिए उत्तम धर्म है। पति जैसा भी दुराचारी हो तो भी उसमें देवबुद्धि रख उसके प्रति वफादार रहने से स्त्री महान योगी से भी समाज पर अधिक उपकारक बनती है। पति की आज्ञा के सिवा व्रत आदि धार्मिक कर्म भी नहीं करना वैसा स्त्रियों के लिए आदेश है। ऐसी स्त्रियों को साध्वी कहा गया है ऐसी स्त्री इस संसार में सुखी हो आसपास के मनुष्यों को सुखी करके मरण के बाद स्वर्ग में जाती है और पतिपरायण सती का बहुत बड़ा माहात्म्य है (१४६–१६६)।

छठें अध्याय में यती तथा वानप्रस्थ के धर्म हैं। सातवें अध्याय में राजाओं के राज्य धर्म का विवेचन है। आठवें अध्याय में कायदे–कानून, दीवानी तथा फौजदारी तथा न्याय के महत्व के सिद्धान्तों का वर्णन है। नवें अध्याय में वारसा आदि तथा दूसरे कायदों से सम्बन्धित विषय पर विवेचन हैं।

सन्यास आश्रम में तिलक–छापा–वेश आदि बाह्य चिन्हों का उपयोग नहीं। इस कारण उसकी परवाह न रखकर सभी पर समान दृष्टि रखे वही संन्यासी। जीवात्मा को उत्तम तथा अधम गति उसके कर्म के अनुसार मिलती है। शास्त्र में कहे सभी आश्रमों का क्रमवार सेवन करने से पुरुष उत्तम गति को प्राप्त करता है। धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय–निग्रह, विज्ञान–विद्या, सत्य और अक्रोध ये धर्म के दस लक्षण सभी मनुष्यों के आचरण योग्य हैं। सातवें अध्याय में पुरुषार्थ के विषय में कहा गया है। सभी कार्य की विजय का आधार दैव और पुरुषार्थ(Action of present life) पर है। देवं अनुकूल न हो और पुरुषार्थ करने में आवे तो भी सिद्धि मिलती है परंतु दैव की अनुकूलता होने से भी जो पुरुषार्थ न करने में आवे तो सिद्धि नहीं मिलती। इस कारण मनुष्यों को हमेशा पुरुषार्थ करना चाहिए (७–२०५)।

धर्म का नाश करने से अधर्म करने वाले का नाश होता है और धर्म का रक्षण करने से धर्म अपना रक्षण करता है। इस प्रकार होने से अपनी सही सलामती के खातिर भी मनुष्य को धर्म का नाश नहीं करना चाहिए (८–१५)। मनुष्य के मरण के समय उसका सर्वस्व नाश होता है। केवल उसके किये हुए धर्माचरण ही उसके साथ जाते हैं।

सत्य सम्बन्ध में कहा है कि सत्य से श्रेष्ठ कोई धर्म नहीं और असत्य जैसा कोई बड़ा पाप नहीं। सत्य बोलने से मनुष्य की वृद्धि होती है। असत्य भाषण करने वाले जानते हैं कि हमको कोई नहीं देखता परन्तु मनुष्य के अंतःकरण में जो दैव है वह सभी कुछ जानते हैं और देखते हैं। यह अन्तर्यामी पुरुष, आकाश, पृथ्वी आदि सभी जगह में रहता है और प्रत्येक प्राणी के शुभाशुभ कर्म को देखता है (८–८६)। झूठे साक्ष्य देने वाला ब्रह्महत्या तथा बालहत्या करने वाले के समान ही पापी होता है। एक समय भी झूठी साक्षी देने से जन्म के पुण्यकर्मों का नाश होता है (८–८९–९०)।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दसवें अध्याय में कुछ एक आपत्तिकाल के धर्म का निरूपण है। धर्म–कर्म का त्याग करने से उच्चवर्ण वाला भी नीच जाति को पाता है वैसे ही नीच वर्ण का मनुष्य अच्छा कर्म करे तो वह उच्चगति को पाता है (१०–१२८)।

ग्यारहवें अध्याय में प्रायश्चित के विषय में कहा गया है। बहुत कुछ पापों के प्रायश्चित दर्शित किये गये हैं। कैसे–कैसे प्रकार के पाप करने से मनुष्य को कैसी–कैसी व्याधि होती है वह इस अध्याय में दर्शाया गया है। अपना पाप प्रसिद्ध करने से, किये हुए पाप का प्रायश्चित–पश्चात्ताप करने से तथा फिर से वैसा पाप न करने का दृढ़ संकल्प करने से पापी मनुष्य अपने–पाप में से शुद्ध होता है (२२३–२२६)। तप करने से इस लोक का तथा परलोक का उत्तम सुख मिलता है इसलिये इन्द्रिय निग्रह कर सभी को यथाशक्ति जितना बन सके उतना तप करना चाहिए (२३४–२४४)।

बारहवें अध्याय में कर्म तथा उसके फल के विषय में कहा गया है। कर्मयोगी को यह अध्याय बहुत उपयोगी है। मनुष्य मन, वचन तथा काया से तीन प्रकार से कर्म करते हैं। इन तीनों कर्मानुसार मनुष्य को शुभाशुभ फल मिलता है। मनुष्य को ऊँच–नीच जन्म भी उसके कर्मानुसार ही मिलता है। इसके उपरान्त मन, वचन और काया इन तीनों से जिस जिस ने कर्म किया हो उसको उसके कर्म का फल मिलता ही है। मन,से किये हुए। तेरह निश्चय ही धर्म का मूल है। ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ है। इन इन्द्रियों में से जिन–जिन इन्द्रियों से कर्म किये जाते हैं उन–उन इन्द्रियों को उसका फल भोगना पड़ता है। इस प्रकार मन, वचन और काया को काबू रखने के बाह्य चिन्हरूपी सन्यासी त्रिदण्ड को धारण करते हैं (१–११)।

धर्माधर्म रूप कर्म के फल भोगने के लिए मनुष्य के पांच तन्मात्रा मे से एक सूक्ष्म शरीर उत्पन्न होता है। सुख–दुःख को भोगने के बाद यह शरीर लय हो जाता है। फिर से मनुष्य के कर्मानुसार उसे देह मिलती है (११–२०)।

कर्म विपाक यानी किस कर्म का कब और कितना फल मिलता है उस पर विचार कर कुछ एक दुष्कर्मो को करने वाले को कैसा फल मिलता है उस विषय को इस अध्याय में दर्शाया गया है।

विषय आसक्त पुरुष, विषय भोग से धीरे–धीरे पापकर्म की तरफ आकर्षित हो अधिक से अधिक पाप कर्म करते हैं उससे उसकी अधोगति होती है। ऐसे मनुष्य कुछ एक लोगों से, क्लेशों से, वृद्धावस्था से बहुत पीड़ा पाते हैं।

वेदाभ्यास, तप, इन्द्रिय–संयम, अहिंसा, आचार्य की सेवा, ईश्वर का ज्ञान ये उत्तम कर्म हैं। आत्मज्ञान प्राप्त करना यह सर्वोत्तम फल है। इस लोक के सुख की या परलोक के स्वर्ग आदि सुख की कामना से–काम्यबुद्धि से किये हुए कर्म प्रवृत्त कर्म कहलाते हैं। इस लोक के तथा परलोक के दृष्ट तथा अदृष्ट फल की

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्पृहा रखे बिना, ज्ञान दृष्टि से जो कर्म किये जाते हैं वे निवृत्त कर्म हैं। निवृत्त कर्म–निष्काम कर्म करने से मनुष्य मोक्ष पाता है।

याज्ञवल्क्य स्मृति

आचार अध्याय, व्यवहार अध्याय और प्रायश्चित अध्याय ऐसे तीन अध्याय हैं। पहले अध्याय में तेरह, दूसरे अध्याय में पच्चीस और तीसरे अध्याय में छः प्रकरण हैं।

पहले प्रकरण के उपोद्घात प्रकरण में धर्म के मूल (Source) को बताते हुए कहा है कि श्रुति, स्मृति, सदाचार, अपनी आत्मा को प्रिय लगे वैसा और सम्यक प्रकार के संकल्प से उत्पन्न हुआ ' . ˝ निश्चय ही धर्म का मूल है (१–७)। यज्ञ, सदाचार, इन्द्रियनिग्रह, अहिंसा, दान, वेदपाठ यह सभी परमधर्म हैं परन्तु इस सब से उत्तम धर्म तो चित्तवृत्ति को रोक आत्मा में जोड़ना ही है (१–८)।

इस स्मृति में भी अतिथि सत्कार को बहुत महत्व दिया है। प्रत्येक मनुष्य को यथाशक्ति, पात्र–ब्राह्मण को दान देना, थके हुए मनुष्यों को विश्रांति, रोगी की परिचर्या–सेवा, देवार्चन यह भी उत्तम प्रकार के दान गिनने में आये हैं। सभी दान से ब्रह्म विद्या का दान सर्वोत्तम है और वैसा दान देने वाले को ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। (२१२)

प्रायश्चित्ताध्याय के यति धर्म प्रकरण में कहा है कि यह जीव अपने कर्मानुसार मन, वचन और काया से किये हुए कर्म के अनुसार अंत्यज, पक्षी, स्थावर योनि को पाता है (१३१)। कर्म के विपाक के सम्बन्ध में कहा है कि कुछ एक कर्म का फल कर्ता को इसी जीवन दरम्यान मिलता है और कुछ एक का फल कर्ता को मरणोपरांत मिलता है। कर्म की जात तथा स्वभाव पर कर्म विपाक का आधार है (१३३)। सत्वगुण, रजोगणु और तमोगुण के अनुसार मनुष्य देव तथा तिर्यक योनि में जन्मता है (१३६–१३८)।

कैसे–कैसे प्रकार के कर्म से मनुष्य की ऊँच–नीच जातियों में कैसे जन्म होता है तथा उस जन्म में मनुष्य का आरोग्य आदि कैसा रहता है उस विषय में बहुत ही दृष्टांत देकर समझाया गया है। परन्तु इन सभी का संक्षिप्त सार इतना ही है कि कर्म के अनुसार मनुष्य को ऊँच–नीच जन्म और सुख–दुःख मिलता है।

पराशर स्मृति

इस स्मृति में आचार निरूपण, गृहस्थ के सनातन धर्म, अशौच, प्रायश्चित आदि बारह अध्याय हैं। कलियुग में यह स्मृति प्रमाण मानी जाती है।

प्रत्येक कल्प के धर्म का निर्णय करने वाले ऋषि–मुनि उत्पन्न हुए हैं। युग के बदलाव होने के साथ–साथ मनुष्य के धर्म तथा कर्म में भी बदलाव होता है। इस प्रकार होने से सतयुग में तप, त्रेता में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ तथा कलियुग में दान को श्रेष्ठ मानने में आया है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कलियुग में कैसी स्थिति होगी उसका वर्णन भी करने में आया है। कलियुग में अधर्म धर्म को जीतेगा, चोर राजा को और स्त्रियाँ पुरुष को जीत लेगी।

आचार के संबंध में कहा है कि आचार से चारों वर्ण की रक्षा होती है जिसका देह आचार भ्रष्ट होता है उससे धर्म दूर हो जाता है।

संध्या, स्नान, गायत्री जप, होम, देवता तथा अतिथि का पूजन और वैश्वदेव–यह कर्म ब्राह्मण को रोज करने लायक है।

भिक्षुक को भी दान देने की जरूरत है। वैश्वदेव करने में छिपी न्यूनता भिक्षुक को दान देने से दूर होती है।

पति के मरने के बाद ब्रह्मचर्य का पालन करने वाली स्त्री स्वर्ग जाती है। दुर्बल बालक तथा वृद्ध पर अनुग्रह करना।

वेदवेत्ता ब्राह्मण में सभी देवताओं का वास है। इस कारण से वह जंगम तीर्थ है; उसके वाक्यरूपी जल से मनुष्य शुद्ध होता है।

अन्य स्मृतियाँ

अत्रि, विष्णु, हारित, उष्ना, अंगिरा, यम, आपस्तम्ब, संवर्त, कात्यायन, बृहस्पति, व्यास, शंख, लिखित, दक्ष, गौतम, शातातप, वसिष्ठ आदि स्मृतिकार है। इन स्मृतियों में भी प्रधानरूप से आचार, व्यवहार, प्रायश्चित आदि विषय पर चर्चा की गयी है।

विष्णु स्मृति के (३८–४५) प्रकरणों, में किये हुए पाप कर्मो का भविष्य में किस प्रकार का बदला मिलता है और वैसा बदला देने के लिए नरक आदि स्थानों की योजना के विषय में विचार किया है। हारित स्मृति में विष्णु भक्तों को भी उपयोगी हों वैसे विचार हैं। आपस्तम्ब स्मृति में गौ–रक्षण और गौ–पूजन के विषय में अच्छे विचार करने में आए हैं।

प्रत्येक मनुष्य अपने कर्म बराबर कर सके, निभा सके तो उतने से ही अपनी बहुत उन्नति खुद कर सकता है। 'स्वकर्म से संसिद्धि' इस विषय का ज्ञान स्मृति ग्रन्थों के अभ्यास से होता है। इस मुख्य मुद्दे को ध्यान में रख स्मृतिग्रन्थों का अवलोकन करें तो कर्मयोगी को बहुत उपयोगी हो सकेगा।

दर्शन ग्रन्थ

दर्शन यानि दृष्टिबिन्दु (Angle of Vision)। दर्शन यानि सृष्टि और उसके अलग–अलग पदार्थों का अलग–अलग दृष्टिबिन्दुओं से निरीक्षण कर निश्चित की हुई ज्ञानपद्धति।

दर्शनशास्त्र में जगत का तथा उसके मुख्य तत्त्वों का, सुख–दुःख का, मोक्ष का सही रूप, वास्तविक दृष्टि से क्या स्वरूप है यह निश्चित करने में आया है। ऐसा करने में केवल गुरु शिष्य की संवादात्मक पद्धति नहीं स्वीकारते हुए, प्रत्येक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषय का न्याय पुरसर और पद्धति के अनुसार विचार किया गया है।

कर्म, दर्शनशास्त्र का मुख्य प्रतिपाद्य विषय नहीं फिर भी सृष्टि के तथा उसके पदार्थ में कर्म एक महत्व का तत्व होने से दर्शन शास्त्रकारों ने कर्म के सन्बन्ध में भी बहुत अच्छे और सूक्ष्म विचार किए हैं।

अलग–अलग दृष्टिबिन्दुओं से, अलग अलग दर्शनकारों ने कर्म–संबंधी विचार किए हैं, यह बात अभ्यासी को भूलने जैसी नहीं है। इस बात को ध्यान में रखने से प्रथमदृष्टि से दिखने वाले कुछ एक विरोधाभास दूर होंगे।

कुछ एक लोग छह दर्शन मानते हैं। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा इन छह को दर्शन के नाम से पहचाना जाता है। भारद्वाज प्रणीत कर्म मीमांसा को भी कुछ एक सातवाँ दर्शन मानते हैं। इस प्रकार होने से दर्शनशास्त्र ज्ञान की सात भूमिका (Seven Stages of Evolution) है ऐसा भी कुछ एक लोगों का कहना है।

दर्शनशास्त्र के अभ्यास में बुद्धिबल की जरूरत पड़ती है और विषयशास्त्रीय तथा सूक्ष्म रीति से चर्चित किए होने से बुद्धिमान मनुष्यों को भी समझ पड़ने में विलम्ब होता है। इस प्रकार होने से भी दर्शनशास्त्र का अभ्यास उपयोगी है। अच्छी पुंस्तकें पसंद कर यह अभ्यास शुरु करने में आए तो बुद्धि विलास के साथ अभ्यासी की आध्यात्मिक क्षेत्र में हुई उन्नति बहुत वेगवान बनती है।

न्याय दर्शन

न्याय दर्शन के प्रणेता महर्षि गौतम हैं। इस दर्शन में पाँच अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय के छोटे विभाग को 'आन्हिक' कहा है। प्रत्येक अध्याय में दो आन्हिक हैं।

प्रथमाध्याय के प्रथम सूत्र में बताया है कि निःश्रेयस की प्राप्ति ही इस दर्शन का हेतु है। प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टांत, सिद्धान्त, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास और निग्रहस्थान–इन सोलह पदार्थो का तत्वज्ञान से क्रमानुसार मिथ्याज्ञान, दोष–प्रवृत्ति, जन्म और दुःख का अत्यंत अभाव होने से अपवर्ग–दुःख के अत्यंत अभाव की प्राप्ति होती है। ऊपर दर्शित १६ पदार्थो तथा उसके स्वरूप का निर्णय करने में दर्शन का बहुत कुछ भाग आ जाता है।

पहला पदार्थ प्रमाण है। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द इस तरह चार प्रकार के प्रमाण का वर्णन करने के बाद प्रमेय का वर्णन किया गया है। आत्मा शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव (Transmigration), फल, दुःख और अपवर्ग यह बारह प्रमेय हैं (Object of knowledge)।

बारह प्रमेय की व्याख्या दी गई है, वह भी उपयोगी है। 'आत्मा' यह शब्द नैयायिक जीव (Ego) इस अर्थ में उपयोग में लेते हैं। इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दुःख, ज्ञान यह आत्मा के लिंग (Marks) हैं। 'शरीर' यानी चेष्टा–क्रिया, इन्द्रिय और अर्थ का आश्रय स्थान। इस प्रकार के शरीर को प्राण–नाक, रसना–जीभ, चक्षु–आँख, त्वचा–चमड़ी, कर्ण–कान यह पाँच इन्द्रिय होती है। यह पाँच इन्द्रियाँ पंचमहाभूत में से उत्पन्न होती हैं। पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश ये पाँच महाभूत हैं।

गंध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द ये ऊपर दर्शित पाँच इन्द्रिय के अर्थ (Objects) हैं। 'बुद्धि' यानि उपलब्धि या ज्ञान। 'प्रवृत्ति' यानी मन, बुद्धि, वचन और शरीर से किए हुए कार्य। प्रवृत्ति होने का मुख्य कारण 'दोष' है। 'दोष' यानि इच्छा, रागद्वेष और मोह। इन तीन का अभाव हो तो प्राणी की किसी भी विषय में प्रवृत्ति नहीं होगी। प्रवृत्ति करने से मनुष्य के धर्माधर्म रूप संस्कार उत्पन्न होते हैं। इसी कारण से पुनर्जन्म इस प्रवृत्ति का परिणाम है। प्रवृत्ति में से उत्पन्न होने वाले परिणाम को 'फल' कहा गया है। मनुष्य को जिससे बंधन–पीड़ा होती है वह 'दुःख' है। इस प्रकार के दुःख का अत्यंत नाश–इस प्रकार के दुःख से मोक्ष अपवर्ग है। इस प्रकार के अपवर्ग की प्राप्ति का उपाय न्याय दर्शन में बताया गया है। पहले अध्याय के बाकी के भाग में निग्रह स्थान तक दूसरे पदार्थों की व्याख्या और विवेचन किया गया हैं।

दूसरे अध्याय में संशय, प्रमाण, प्रमेय आदि विषयों पर विचार किया गया है।

तीसरे अध्याय में इन्द्रिय, शरीर, बुद्धि, मन के विषय पर विचार किया गया है। इस अध्याय में प्रमेयों के सन्बन्ध में विचार करने में आए हैं। प्रमेयों में मुख्य प्रमेय आत्मा है। इस कारण से आत्मा क्या है और क्या नहीं उसका विचार किया गया है। इस सन्दर्भ में विचार कर यह निर्णय किया गया है कि देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, वेदना (Knowledge), आत्मा नहीं है। आत्मा अलग ही प्रमेय है। तुरन्त के जन्मे हुए बालक में भी स्तनपान करने की प्रवृत्ति दिखती है। उसे भी हर्ष, शोक और भय है, उससे अनुमान होता है कि पूर्वजन्म में बालक ने आत्मा में यह अनुभव पाया था।

पूर्वजन्म में किये हुए कर्म से इस शरीर की उत्पत्ति हुई है। शरीर की उत्पत्ति में जैसे कर्म निर्मित हैं उसी प्रकार शरीर और आत्मा का संयोग (Union) भी कर्म को आभारी है। इस प्रकार होने से कर्म के क्षय होने से ही शरीर और आत्मा का वियोग होता है। इस प्रकार नहीं मानने से अकृताभ्यागम दोष आता है।

चौथे अध्याय के पहले आन्हिक में बाकी रहे हुए प्रवृत्ति आदि छह प्रमेय का विचार किया गया है।

प्रवृत्ति की व्याख्या आगे भी दी है। रागद्वेष और मोह ये दोष के अवान्तर भेद हैं। आत्मा को नित्य मानने में आया है और आत्मा को नित्य मानने से ही प्रेत्यभाव होता है। कर्म का फल ईश्वराधीन है परन्तु ईश्वर कर्म का कारण नहीं क्योंकि पुरुष के कर्म का अभाव हो तो ईश्वर फल नहीं देता।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कुछ एक कर्म के फल जल्दी आते हैं और कुछ एक कर्म के फल कालान्तर में होते हैं। इस विषय में बीज तथा वृक्ष का उदाहरण दिया है। कुछ एक बीज जल्दी उग जाते हैं और कुछ एक को समय लगता है। फल और फूल भी बीज में होते हैं परन्तु बीज की अंकुरोत्पत्ति होने से जैसे फल आने में कम–ज्यादा समय लगता है उसी प्रकार कर्म के फल आने में भी कम–ज्यादा समय लगता है।

बीज के फल आने में जैसे वृक्ष आश्रय है उसी प्रकार कर्म के फल आने में आश्रय रूप स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर है।

जन्म वह सब दुःख का कारण होने से दुःखरूप है।

'अपवर्ग' (Release) यानि क्या है? इस विषय को समझाते हुए कहा है कि जैसे कोई भी प्रकार के स्वप्न के बिना गाढ़ निद्रा में किसी भी प्रकार का क्लेश नहीं होता उसी प्रकार अपवर्ग की प्राप्ति के बाद कोई क्लेश नहीं रहता है।

चौथे अध्याय के दूसरे आन्हिक में कहा है कि राग, द्वेष आदि का निमित्त शरीर आदि है। उसकी उत्पत्ति का वास्तविक ज्ञान, तत्व ज्ञान होने से दोष की निवृत्ति होती है।

रूप आदि विषय जिस दोष के निमित्त हैं वह मनुष्य का अपना संकल्पकृत है।

आकाश पंचमहाभूतों में से एक भूत है। यह आकाश का स्वरूप सामान्य मनुष्य की बुद्धि में उतरे ऐसा नहीं; इस पर से उसका लक्षण जानने की जरूरत है। आकाश अव्यूह (Not repelling) अविष्टम्भ (Unobstructing) और विभु (All pervading) है।

मिथ्या ज्ञान का, तत्व ज्ञान से नाश होता है। यह तत्वज्ञान समाधि से उत्पन्न होता है।

अपवर्ग की प्राप्ति के लिए योगशास्त्र में कहे अनुसार यम, नियम का अनुष्ठान तथा दूसरे आध्यात्म विधि के उपायों द्वारा आत्मा को संस्कारित करने की जरूरत है। ज्ञानी लोग के साथ चर्चा करने से भी फायदा होता है। श्रेयार्थी और निंदारहित शिष्य, गुरु और सहाध्यायी के साथ ज्ञानचर्चा से भी बहुत फायदा होता है।

वैशेषिक दर्शन

इस दर्शन के प्रणेता महर्षि कणाद हैं। इस दर्शन में दस अध्याय हैं और प्रत्यंक में दो आन्हिक हैं।

इस दर्शन में दी हुई 'धर्म' शब्द की व्याख्या बहुत उपयोगी है। जिससे अभ्युदय–सांसारिक सर्व प्रकार के सुख की प्राप्ति हो वह धर्म है। इस प्रकार का धर्म मनुष्य को इस लोक में सुख की प्राप्ति कराता है और परलोक में मोक्ष दिलवाता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अभ्युदय की तथा निःश्रेयस की प्राप्ति तत्वज्ञान से होती है। पुण्य विशेष से तत्वज्ञान उत्पन्न होता है। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवायना साधर्म्य और वैधर्म्य के ज्ञान से, तत्वज्ञान से निःश्रेयस की प्राप्ति होती है। ऊपर दर्शित छह पदार्थ में से कर्म संबंधी विचार की इस स्थल पर हमको जरूरत पड़ती है।

उत्क्षेपण करना–उँचे डालना, अवक्षेपण करना–नीचे डालना, आकुंचन–संकोच आना, प्रसारण–फैलाना, गमन–गति करना यह कर्म है। कर्म को कार्यविरोधी कहा है यानि कर्म अपना कार्य करके नष्ट होते हैं। पहले अध्याय के प्रथम आन्हिक में कर्म सम्बन्ध में इतना महत्व का विचार है। दूसरे आन्हिक में कार्य–कारण के स्वरूप आदि का वर्णन है।

कर्मयोग के अभ्यासी के लिए पाँचवे तथा छठे अध्याय उपयोगी हैं। पाँचवे अध्याय में प्रथम आन्हिक में उत्क्षेपण कर्म की परीक्षा करने में आयी है। दूसरे अध्याय में गमन–गति की परीक्षा करने में आयी है। छठें अध्याय में वेद का प्रामाण्य (Authority) सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। छठें अध्याय के दूसरे आन्हिक में द्रष्टा, द्रष्ट प्रयोजन इन दो विषयो पर विचार किया गया है। 'द्रष्ट' यानि इस जन्म में फल दे वैसे कर्म, जिन कर्मो के फल इस जन्म के बाद–मरण के पश्चात् परलोक या दूसरे शरीर में मिलते हैं वैसे कर्म का प्रयोजन 'अदृष्ट' कहा गया है।

सुख–दुःख किस रीति से होता है उस विषय पर विचार करते हुए कहा है कि आत्मा, इन्द्रिय, मन और अर्थ के सन्निकर्ष (Contact) से सुख दुःख होता है। इस चार में से एक का भी वियोग (Disjuction) हो तो सुख–दुःख का भाव नहीं रहता है।

द्रष्टाद्रष्ट प्रयोजन का विचार करते हुए कहा है कि दृष्ट प्रयोजन के बदले अदृष्ट प्रयोजन से अभ्युदय जल्दी होता है। अभिषेक, उपवास, ब्रह्मचर्य, गुरुकुल वास, वानप्रस्थ, यज्ञ, दान, प्रोक्षंण आदि से अद्रष्ट फल उत्पन्न होते हैं। आश्रम धर्म पालन से भी अदृष्ट फल उत्पन्न होते हैं।

धर्माधर्म प्रवृत्ति रागद्वेष से होती है और उसी से जन्म–मृत्यु होता है। आध्यात्मिक कर्म से मोक्ष होता है।

सांख्य दर्शन

इस दर्शन के प्रणेता महर्षि कपिल हैं। विषय (१), प्रधान कार्य (२), वैराग्य (३), आख्यायिका (४), परपक्ष निर्णय (५), विप्सतंत्राध्याय (६), ऐसे छह अध्याय सांख्य दर्शन में होते हैं।

सांख्य दर्शन बहुत महत्व का दर्शन है। सांख्य दर्शन के तत्वगणना का बहुत कुछ भाग अन्य दर्शनकारों ने भी स्वीकार किया है, यह उसकी महत्ता का प्रमाण है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर्मयोग के अभ्यासी को शरीर, इन्द्रिय, मन आदि कर्म करने के महत्व के साधनों का सही स्वरूप जानने की जरूरत है क्योंकि वैसा किए बिना उनसे अधिक आगे बढ़ा नहीं जा सकता। भौतिक शरीर के मरण के पश्चात (Disintegration) उस शरीर से किए हुए कर्म के संस्कार कहाँ रहते हैं तथा नवीन शरीर की रचना करने में वे कैसे भाग अदा करते हैं उस विषयकोजाने बिना मनुष्य की श्रद्धा कर्मयोग में नहीं हो सकती। लिंग शरीर–सूक्ष्म शरीर आदि का सांख्य दर्शन में जो वर्णन किया गया है वह कर्मयोग के अभ्यासी के लिए बहुत महत्व का है।

सृष्टि के संगठन में २५ तत्व हैं। इन पच्चीस तत्त्व में से पुरुष और प्रकृति ये दो महत्व के तत्त्व हैं। भगवद्‌गीता में बहुत जगह पर पुरुष, प्रकृति, क्षेत्रज्ञ, क्षर अक्षर आदि शब्द उपयोग में लाये गये हैं। ऐसे शब्दों का वास्तविक रहस्य समझने के लिए सांख्य दर्शन का अभ्यास बहुत ही अधिक उपयोगी है।

सांख्य दर्शन के प्रथम अध्याय का नाम विषयाध्याय है। इस अध्याय में दुनियां का प्रत्येक पुरुष क्या–क्या इच्छा करता है इस पर विचार करने में आया है। 'पुरुष' यानि मनुष्य और 'अर्थ' यानि इच्छित विषय, पुरुषार्थ यानि प्रत्येक मनुष्य का इच्छित विषय शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक–त्रिविध दुःख की अत्यंत निवृत्ति पुरुषार्थ है। ऐसे प्रकार के पुरुषार्थ को कैसे साधना–मनुष्य जाति के तीन प्रकार के दुःख की अत्यन्त निवृत्ति किस तरह से करनी उस विषय पर विगतवार विस्तृत और पद्धति अनुसार विचार सांख्य दर्शन में किया गया है।

पुरुष और प्रकृति के अविवेक के कारण, पुरुष और प्रकृति का संयोग होता है और उससे दुःख होता है। विवेक के उदय होते ही मनुष्य के दुःख की निवृत्ति होती है।

'प्रकृति' क्या है यह जानने की जरूरत है। सत्व, रजस और तमस की साम्यावस्था, प्रकृति है। प्रकृति में से महत् बुद्धि, महत् में से अहंकार, अहंकार में से पाँच तन्मात्रा, पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा मन उत्पन्न होता है। पाँच तन्मात्रा में से पंचमहाभूत उत्पन्न होता है। इस प्रकार पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश ये पाँच महाभूत हैं। पाँच तन्मात्रा, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहंकार और प्रकृति यह चौबीस तत्व हैं। पुरुष पच्चीसवाँ तत्व है। इस प्रकार तमाम तत्व मिलकर पच्चीस की संख्या बनी है। पूरी सृष्टि की रचना इन पच्चीस तत्त्व में से हुई। प्रकृति आदि अन्य तेईस तत्व जड़ हैं, पुरुष चेतन तत्व है। जैसे लौह चुम्बक के पास दूसरी लौह वस्तु के आते ही उसमें क्रिया उत्पन्न होती है उसी प्रकार पुरुष के समीप रहने से प्रकृति में क्रियाशक्ति उत्पन्न होती है।

प्रकृति सत्व, रजस, तमस यह तीन गुण की साम्यावस्था है। प्रकृति में पहला तत्व महत्–मनस्–बुद्धि उत्पन्न होता है। विचारशक्ति से मनुष्य में अहंकार– अहम् भावना उत्पन्न होती है। अहंकार में से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्दियाँ, पाँच तन्मात्रा उत्पन्न होती है। पाँच तन्मात्रा में से पाँच महाभूत उत्पन्न होते हैं (१–६१)।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकृति और उसके बाद के तमाम तत्त्वों की उत्पत्ति परमार्थ–दूसरों के उपयोग के लिए–पुरुष के भोग और मोक्ष के लिए है। यह सर्व जगत की रचना मनुष्य के शिक्षण–अनुभव तथा सुख के लिए प्रभु ने की है, ऐसा सांख्य दर्शन का सिद्धान्त है।

जिसे सामान्य मनुष्य नाश कहते हैं वह सांख्य–दृष्टि से कार्य का कारण में लीन होना है। नाश यह भी एक प्रकार की अभिव्यक्ति है। बीज का नाश यानि अंकुर की उत्पत्ति (१–१२१–१२२)।

सांख्य दर्शन के दूसरे अध्याय का नाम प्रधान कार्य अध्याय है। प्रधान यानि प्रकृति और उसका कार्य यानि महत् तत्त्वादि यानि बाकी के तत्व। इस अध्याय में इन तत्वों के विषय में विचार किया गया है।

प्रकृति ईश्वराधीन यानि उसकी इच्छा के अनुसार वर्तन करने वाली है। प्रकृति की प्रवृत्ति पुरुष के भोग तथा मोक्ष के लिये ही है। इस अध्याय के शुरुआत में इस विषय में विचार किया गया है।

प्रकृति ईश्वराधीन यानि उसकी इच्छा के अनुसार वर्तन करने वाली है। प्रकृति की प्रवृत्ति पुरुष के भोग तथा मोक्ष के लिये ही है। इस अध्याय के शुरुआत में इस विषय में विचार किया गया है।

प्रकृति की व्याख्या पहले दी गयी है। प्रकृति के बाद के तत्व महत् है। महत् यानि बुद्धि 'अध्यवसाय' यानि निश्चयात्मक व्यापार यह बुद्धि का महत्व का लक्षण है (२–१३)। बुद्धि का कार्य धर्म आदि है (२–१४)। जो बुद्धि से धर्म आदि उपजता हो तो फिर अधर्म कैसे उत्पन्न होता है? इस विषय में विचार करके दर्शाया गया है कि जब बुद्धि में रजस और तमस की छाया पड़ती है तब बुद्धि की धर्म उत्पन्न करने की स्वाभाविक शक्ति विपरीत–उल्टी हो जाती है। इस शक्ति पर मल आ जाता है (२–१४)। कर्मयोग में रागद्वेष दूर करने की आग्रह की महत्ता अब अभ्यासी को समझ में आयेगी।

अहंकार यानि अभिमान (२–१६)। ग्यारह इन्द्रियाँ–मन, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच तन्मात्रा ये सोलह तत्व अहंकार के कार्य है (२–१७)। विकार को प्राप्त हुए अहंकार तत्व में से ग्यारह सत्वगुणी इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं (२–१८)।

मुख, हाथ, पैर, गुदा और शिश्न यह पाँच कर्म करने की इन्द्रियाँ–साधन होने से उसे कर्मेन्द्रियाँ कहा गया है। आँख, कान, चमड़ी, जीभ और नाक इसके द्वारा बाह्य जगत का ज्ञान होने से उसे ज्ञानेन्द्रियाँ कहा गया है। इन दसों इन्द्रियों का प्रवर्त्तक मन है। उसके लिये उसे भी इन्द्रिय रूप ही गिना है। इन्द्र–अधिकारी पुरुष की इच्छा–हुक्म के अनुसार ऊपर की शक्तियाँ काम करती होने से उसे इन्द्रिय कहा गया है। बाह्य जगत जानने का इन्द्रिय एक साधन होने से उसे करण–साधन भी कहा गया है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन्द्रिय संबंध में सामान्य लोग की मान्यता भूल से भरी हुई है। इन्द्रिय को समान्य लोग पंचमहाभूत की बनी हुई मानते हैं वह गलत है। इन्द्रिय अहंकार तत्व की बनी है। अहंकार तत्व अनित्य होने से इन्द्रिय भी अनित्य है।

आँख, कान, वगैरह जो दिखते हैं उसे कुछ लोग इन्द्रिय मानते हैं। यह मान्यता भी गलत है। वास्तविक इन्द्रियाँ अदृश्य हैं जो दिखती हैं वह तो ऐसी अदृश्य इन्द्रिय के रहने की जगह–गोलक हैं। इस प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय के गोलक पंचभौतिक है। इन्द्रिय के सन्बन्ध में किया हुआ यह विचार कर्मयोगी के लिए बहुत आवश्यक है।

मन उभयात्मक है (२–२६)। मन के अन्दर कर्मेन्द्रिय तथा ज्ञानेन्द्रिय यह दो प्रकार की इन्द्रिय के गुण हैं। उसी से मन दोनों इन्द्रियों का प्रेरक है।

रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श यह ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं। वाक्, पानी, पाद, भोग, मलत्याग वह कर्मेन्द्रियों के विषय हैं (२–२८)।

मन, बुद्धि और अहंकार यह तीन अन्तःकरण–अन्दर की इन्द्रियाँ कहलाती हैं। प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान–पाँच 'प्राण' वह अन्तःकरण की सामान्य वृत्ति है। इस पर से यह पंच प्राणवायु नहीं परन्तु मनोबुद्धि अहंकार यह तीन तत्व अन्तःकरण की वृत्ति हैं। इस तत्व की गति वायु के जैसे तेज होती होने से 'प्राण' आदि को वायु कहते हैं। वास्तविक रूप में देखने से वह वायु नहीं परन्तु वृत्ति है।

अन्तःकरण की ऊपर दर्शित प्राण आदि रूप प्रतीत होने वाली वृत्ति पाँच प्रकार की है। यह वृत्ति क्लिष्ट (Painfull) और अक्लिष्ट (Non Painfull) ऐसे दो प्रकार की है। अन्तःकरण मन, अहंकार, बुद्धि की वृत्ति वायु जितनी जल्दी से बदलती जाती है। इस प्रकार की वृत्ति को रोककर स्वस्थ करने की जरूरत है। वृत्ति की निवृत्ति ही पुरुष उपराग का उपशमन -अपने स्वरूप में शान्ति का अनुभव करता है (२--२४)। जैसे स्फटिक के पास से लाल रंग का फूल ले लेने से स्फटिक शुद्ध दिखता है वैसे ही पुरुष रूप स्फटिक के पास से रागद्वेषयुक्त वृत्ति शान्त पड़ने से वह अपने शुद्ध स्वरूप में प्रकाशित रहती है।

इन्द्रिय यह सब प्रवृत्ति क्यों करती है यह दूसरा प्रश्न है। पुरुष के अर्थ के लिए तथा अदृष्ट के उल्लास के लिए है। मनुष्य को पहले से किये हुए शुभ–अशुभ कर्म को भोग करके क्षय करना जरूरी है। इस कारण से अदृष्टानुसार पहले के शुभाशुभ कर्म के अनुसार इन्द्रिय की प्रवृत्ति होती है। जैसे गाय के बछड़े के हित के लिए गाय दूध देती है, उसी प्रकार पुरुष के भोग और मोक्ष के लिए इन्द्रियाँ प्रवृत्ति करती हैं।

पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ इनको मिलाकर दस इन्द्रिय को बाह्य कहा गया है। मन, बुद्धि और अहंकार यह तीन अन्तःकरण–अन्दर की इन्द्रियाँ हैं। इस प्रकार गिनने से यह तेरह इन्द्रियाँ होती हैं (२-३३)।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लकड़हारा कुल्हाड़ी से लकड़ी काटता है। कुल्हाड़ी लकड़हारे का साधन–करण है। इस प्रकार पुरुषरूपी लकड़हारा दुनिया के सब पदार्थों को भोग करवाने के लिए ऊपर दर्शित तेरह इन्द्रिय रूप साधन का इस्तेमाल करता है जिससे उसे इन्द्रिय कहा जाता है।

बाह्य इन्द्रियों तथा अन्तर इन्द्रियों में मन प्रधान है क्योंकि उसके मार्फत ही–उसके द्वारा ही अन्तर की तथा बाह्य की तमाम इन्द्रियाँ काम कर सकती है। अन्दर की तथा बाहर की इन्द्रियों को जोड़ने वाला मन है इस कारण से ही प्रत्येक धर्म में–भगवद्गीता में–कर्मयोग में, मनोनिग्रह को बहुत महत्व का स्थान दिया गया है।

अन्तःकरण–मन, अहंकार, बुद्धि में, बुद्धि अव्यभिचारी होने से श्रेष्ठ है। मनुष्य की पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों तथा मन के द्वारा किये हुए प्रत्येक कर्म के संस्कार बुद्धि में रहते हैं (२–४२)। मनुष्य के कर्मानुसार बुद्धि होना कहाने का शास्त्रीय कारण है। प्रत्येक शुभाशुभ संस्कारों का आधार बुद्धि है। इसलिए स्मृति का आधार भी बुद्धि पर है।

बुद्धि प्रत्येक मनुष्य के पूर्व किए हुए कर्मों के अधीन होती है। इस कारण से शुभ कर्म के संस्कार वाली बुद्धि उसके कर्ता को शुभ फल देती है और दुष्ट कर्म के संस्कार वाली बुद्धि उसके कर्ता को दुःख देती है। पुरुष की इन्द्रियाँ भी उसके पूर्व कर्म के अनुसार उसे मिली होती हैं। लोगों में जैसे राजा प्रधान गिना जाता है वैसे १३ इन्द्रियों में बुद्धि मुख्य मानी जाती हैं। तीसरे अध्याय में सांख्य दर्शन के बाकी तत्वों पर विचार किया गया है। इस अध्याय के शुरुआत में पंचमहाभूत की उत्पत्ति आदि का विचार किया गया है।

अविशेष–पंच तन्मात्रा में से विशेष–पंचमहाभूत की उत्पत्ति होती है। पंचमहाभूत में से शरीर की उत्पत्ति होती है (३–२)। स्थूल शरीर के बीज से–लिंग शरीर की संसृति होती है (Transmigration) (३–३)। जब तक मनुष्य को प्रकृति तथा पुरुष का विवेक न हो तब तक संसृति–जन्म मरण चालू रहता है।

स्थूल शरीर, भौतिक–शरीर और लिंग शरीर–सूक्ष्म शरीर में क्या और कैसा फर्क है उसका भी विचार करने की जरूरत है। माता–पिता से उत्पन्न हुआ शरीर यह स्थूल शरीर है। लिंग शरीर माता–पिता जन्य होता नहीं है परंतु मनुष्य के अपने कर्मजन्य–कर्म के अनुसार उत्पन्न हुआ होता है (३–७)। लिंग शरीर की उत्पत्ति भौतिक शरीर के पहले की होती है। यह लिंग देह कर्म का फल भोगने वाला देह होने से उसे 'भोगायतन' शरीर कहते हैं। स्थूल शरीर भोगायतन नहीं (३–८)।

लिंग शरीर १८ तत्वों का–बुद्धि, अहंकार, मन, पाँच तन्मात्रा, पाँच कर्मेन्द्रियों, पाँच ज्ञानेन्द्रियों से बना है (३–६)। प्रत्येक मनुष्य के शुभाशुभ कर्म के संस्कार लिंग शरीर में मौजूद होने से प्रत्येक मनुष्य के कर्मानुसार प्रत्येक मनुष्य के लिंग शरीर

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अलग–अलग होते हैं (३–३०)। स्थूल शरीर लिंग शरीर का अधिष्ठान होने से स्थूल शरीर को भी शरीर कहा गया है। जैसे छाया या चित्र दीवाल या कैनवास पर आश्रित–अधिष्ठित हुए बिना नहीं रह सकता वैसे ही स्थूल शरीर के अधिष्ठान के बिना, सूक्ष्म शरीर, कर्मानुसार भोग भोगने का इस दुनियाँ में कार्य नहीं कर सकता। इसलिए स्थूल शरीर की आवश्यकता है।

लिंग शरीर की संसृति पुरुष के लिए है (३–१६)। पंचमहाभूत से भौतिक देह होता है (३–१७)। इस पंचमहाभूत देह में अपनी स्वाभाविक चैतन्य शक्ति (Inteligence) नहीं है (३–३०)।

लिंग शरीर से जब ज्ञान–सांख्य में दर्शित २५ तत्वो का ज्ञान पाते हैं– प्रकृति पुरुष का विवेक ज्ञान पाते हैं तब मुक्ति मिलती है। इस कारण से सांख्य दर्शन में कहा है कि ज्ञान से मुक्ति होती है (३–२३)। ज्ञान के विपर्यय से, विपरीत ज्ञान से, अविवेक से बन्ध होता है (३–२४)। ज्ञान मुक्ति का नियत–चौकस कारण है (३–२५)। मुक्ति के लिए ज्ञान के सिवा अन्य कारण की जरूरत नहीं (३–२६)। सांख्य शास्त्र में दर्शित २५ तत्व के ज्ञान–विवेक के सिवा अन्य ज्ञान से दुःख की अत्यन्त निवृत्ति नहीं होती। मानसिक संकल्प–उपासना आदि से भी मुक्ति नहीं होती, क्योंकि संकल्प प्राकृतिक–मायिक है और मायिक पदार्थ से मोक्ष सम्भव नहीं है।

भावना के उपचय से शुद्ध पुरुष को सर्व की प्राप्ति सर्व का ज्ञान होता है। उपासना आदि कर्मो से तात्कालिक ज्ञान नहीं होता, परंतु उससे अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा ज्ञान होता है।

ज्ञान के साधन का विचार करते समय सांख्य दर्शन में बताया है कि राग की निवृत्ति से ध्यान की सिद्धि होती है (३–३१)। वृत्ति निरोध से भी ध्यान सिद्धि होती है (३–३२)। धारणा, आसन और स्वकर्म–आश्रम–कर्म से तथा प्राणायाम से भी ध्यान की सिद्धि होती है। (३–३२–३३–३५) अभ्यास और वैराग्य से भी ध्यान सिद्धि होती है (३–३६)।

इस सृष्टि में कुछ एक मनुष्य सुखी दिखते हैं तथा कुछ एक दुखी दिखते हैं। सृष्टि की यह दिखने वाली विचित्रता मनुष्य के अपने स्वयं अलग–अलग प्रकार के कर्म की आभारी है (३–५०)। किसान खेती करके बीज बोता है परंतु उसका फल कुछ काल पश्चात् अपने–आप आता है। इस प्रकार कर्म अचेतन होने के बावजूद समय आने पर स्वयं अपने–आप कर्मफल देता है। प्रकृति की यह तमाम चेष्टा मनुष्य के जीव के, कर्माधीन है (३–६२)। विवेक का बोध होने से प्रकृति की चेष्टा अपने–आप बन्द हो जाती है परंतु जब तक कर्म निमित्त योग होता है तब तक प्रकृति वैसे जीव के लिए चेष्टा करना बन्द नहीं करती (३–६६)।

सांख्य दर्शन में बताये हुए तत्त्वाभ्यास से और महत् अहंकार इत्यादि के नेति नेतिपूर्वक के ज्ञान से तत्व ज्ञान होता है। विवेक से सर्व दुःख का नाश होने से

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कृतकृत्य–मुक्त हुआ जाता है (३–८४)। चौथे अध्याय में ऐतिहासिक दृष्टांत दिये गए हैं। उसमें बताया गया है कि तत्वज्ञान के उपदेश यकायक जल्दी से मनुष्य के हृदय में टिकता नहीं, इसलिए ऐसे उपदेश की आवृत्ति (Repeatation) होने की जरुरत है। पिंगला का दृष्टात देकर बताया है कि जिसे आशा नहीं उसे निराशा भी नहीं और इसीलिए ऐसा मनुष्य सुखी होता है।

हंस की तरह प्रत्येक उपदेश ग्रहण करने में नीरक्षीर न्याय के अनुसार ग्रहण करने लायक उपदेश ग्रहण करना, त्याग करने लायक दिखे वह छोड़ देना। मनुष्य को हमेशा बने वहां तक सत्संग रखने की जरूरत है। सौरभी मुनि का दृष्टांत देकर भोग से राग की शान्ति नहीं होती, परंतु इसके विपरीत वृद्धि होती है वह भी बताया है। मलिन दर्पण में जैसे शुद्ध प्रतिबिम्ब नहीं बनता वैसे रागद्वेष से मलिन हुए हृदय में विवेक ज्ञान उत्पन्न नहीं होता।

सांख्य दर्शन के सिद्धान्त पर अन्य दर्शनकारों ने जो शंकाएं दर्शायी हैं उसका खुलासा पांचवें अध्याय में किया गया है। छठें अध्याय में सांख्य के सिद्धान्त का संक्षिप्त में अवलोकन किया गया है।

योग दर्शन

योग दर्शन के प्रणेता भगवान पतंजलि हैं। इस दर्शन में चार पाद हैं। पहला समाधि पाद, दूसरा साधन पाद, तीसरा विभूति पाद, चौथा कैवल्य पाद। इस प्रकार के चार पाद–भाग या प्रकरण हैं। भगवद्गीता में कहा है कि सांख्य और योग अलग हैं ऐसा बच्चे ही कहते हैं। पण्डित तो दोनों को एक ही मानते हैं (५–४)। जिस स्थान की सांख्य से प्राप्ति होती है वही योग से भी प्राप्त किया जा सकता है इसलिए सांख्य और योग को जो एक मानता है, जानता है उसी की दृष्टि सच्ची है।

'योग' क्या है उसका विचार करने की जरूरत है इसलिए पहले अध्याय में उस पर विचार किया गया है। चित्त की वृत्ति का निरोध योग है। (१–२)। इस प्रकार का योग करने से द्रष्टा, अभ्यासी–योगाभ्यासी की स्व स्वरूप में स्थिति होती है (१–३)। इस प्रकार वृत्ति का निरोध न करने में आये तो वृत्ति अन्यथा अलग प्रकार की–विषयाकार होती है।

वृत्ति के मुख्य दो विभाग हैं। एक क्लिष्ट (Painfull) दूसरा अक्लिष्ट (Non Painfull)। दूसरे दृष्टि बिन्दु से वृत्ति पाँच प्रकार की है प्रमाण (Right Recognition), विपर्यय (Unreal Recognition), विकल्प, निद्रा और स्मृति। इस प्रकार पाँच प्रकार की वृत्ति है। वृत्ति का निरोध किस तरह करना यह दूसरा महत्व का प्रश्न है। अभ्यास और वैराग्य से वृत्ति का निरोध करना है। चित्त की स्थिरता के लिए जो प्रयास किये जाते हैं उसे अभ्यास कहते हैं (१–३)। लम्बे समय तक और आदरपूर्वक अनुष्ठान करने से अभ्यास दृढ़ होता है, सुस्थिर होता है (१–१४)।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देखें हुए तथा सुने हुए सभी विषयों की तृष्णा का त्याग वह वैराग्य है। पर को जानने पहचानने से जिस प्रकार की तृष्णारहित स्थिति होती है वह वैराग्य है। वैराग्य के वेग के परिमाण में मन्द, मध्यम और अधिक मात्रा में वैराग्य के तीन भेद किए गए हैं। तीव्र वैराग्य वालों को समाधि का लाभ जल्दी होता है।

सांख्य दर्शन में ईश्वर को स्वीकार नहीं किया गया। योग दर्शन में ईश्वर को माना गया है। ईश्वर को–क्लेश, कर्म, विपाक और वासना से मुक्त मानने में आया है। इस प्रकार के ईश्वर के प्रणिधान से–भक्ति से सर्वकर्म ईश्वर को समर्पण करने से भी समाधि का लाभ होता हैं। ओंकार ईश्वर का सूचक है। अर्थपूर्वक ओंकार का जाप करने से साधक के सभी विघ्न नाश होते हैं और उसे आत्मसाक्षात्कार होता है।

योग की साधना करने में साधक के सामने शारीरिक व्याधि, मानसिक अशक्ति आदि विघ्न आते हैं। ये विघ्न दूर करके, एक तत्व का अभ्यास करने की जरूरत है। शुरुआत में ही साधक को रागद्वेष, वैर, ईर्ष्या आदि त्याग कर सुखी मनुष्यों के प्रति मैत्री की भावना, दुखी के प्रति दया की भावना, पुण्यवान के प्रति हर्ष की भावना और पापियों–दुरात्मा के प्रति उपेक्षा बुद्धि की भावना रखने की जरूरत है। इस प्रकार करने से मनुष्य का मन समभाव को प्राप्त होता है।

एक तत्व के अभ्यास करने के अन्य दूसरे उपाय भी बताये गये हैं। ईश्वर प्रणिधान, प्रणव जप, एक तत्व के अभ्यास यह ऊपर दर्शाये गये हैं। इसके उपरान्त प्राणायाम से, दिव्य विषयों वाली प्रकृति से, शोकरहित विशोका ज्योति के ध्यान से, वीतराग–राग विहीन होने से (१–३७) स्वप्न तथा सुसुप्ति के विषयों का आलम्बन करने से, १–३८ या अपने अभिमत जैसे इष्ट देवता आदि कोई भी वस्तु के ध्यान से वृत्ति स्थिर होती है। योग दर्शन की दृष्टि कितनी विशाल है इसका ऊपर के सूत्रों पर से ख्याल आ सकता है। वृत्ति को एकाग्र करने से तथा निरोध करने से क्या फल होता है उस पर विचार करना रहता है। वृत्ति के एकाग्र या निरुद्ध होने से चित्त निर्मल होता है और समाधि का लाभ होता है।

सबीज–सवितर्क और निर्बीज–निवितर्क समाधि के ये दो मुख्य प्रकार हैं। निर्विकार समाधि में विशारद हुए योगी को आध्यात्म प्रसाद की प्राप्ति होती है। आध्यात्म प्रसाद की प्राप्ति के बाद साधक में ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय होता है। श्रुत–शास्त्रजन्य तथा अनुमान से उपजित ज्ञान से ऋतम्भरा प्रज्ञा का ज्ञान बहुत उच्च प्रकार का होता है। ऋतम्भरा प्रज्ञा से विक्षेप करने वाले अन्य संस्कारों का नाश होता है और अन्त में मनुष्य को निर्बीज समाधि की प्राप्ति होती है।

साधन पाद यह योग दर्शन का दूसरा अध्याय है। शुरुआत के कर्मयोगी को या तो आध्यात्मिक क्षेत्र में आगे बढ़ने की इच्छा रखने वाले किसी भी साधक के लिए यह अध्याय बहुत महत्व का है। पहले पाद में बताये हुए अभ्यास और वैराग्य प्रत्येक साधक में नहीं होते, ऐसे साधक के लिए दूसरा अध्याय बहुत उपयोगी है।

सामान्य मनुष्य योग [illegible] में आगे बढ़े उसके लिए सरलता से आचरण में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लायी जा सके वैसी पद्धति ढूँढ निकालने की जरूरत है। इस पद्धति को 'क्रियायोग' कहा गया है। तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान को क्रिया योग कहा गया है। क्लेशों को दूर करने का तथा समाधि का लाभ प्राप्त करने का क्रियायोग यह अक्सीर उपाय है (२–२)। अविद्या, अस्मिता, रागद्वेष और अभिनिवेश ये पाँच 'क्लेश' हैं। इन क्लेशों की दो अवस्था (Stage) है–स्थूल और सूक्ष्म । स्थूल क्लेश ध्यान से नाश होते हैं। सूक्ष्म क्लेश जो अन्तःकरण में संस्कार रूप में रहते हैं उनका नाश वृत्ति के निरोध से तथा ऋतम्भरा प्रज्ञा के उदय से होता है। क्लेश का मूल स्रोत कर्माशय है। मनुष्य के अपने पूर्व कर्मानुसार सुख–दुःख–क्लेश होता है। प्रत्येक मनुष्य को जाति, आयुष्य और भोग– सुख–दुःख, उसके कर्माशय के अनुसार मिलते हैं। अपने कर्मानुसार प्रत्येक मनुष्य को ऊँच–नीच जाति, लम्बा या छोटा आयुष्य और सुख–दुःख रूप भोग प्राप्त होता है।

भविष्य में होने वाले दुःख योग्य दरकार रखने से रोके जा सकते हैं। पूर्व के पाप कर्मानुसार आने वाले भविष्य के दुःख चालू पुण्य कर्म से दूर किये जा सकते हैं। (२–१६)

अविद्या से दृश्य और द्रष्टा–प्रकृति और पुरुष का संयोग होता है। ऐसा संयोग वही दुःख की उत्पत्ति का मुख्य कारण हैं। द्रष्टा तथा दृश्य का संयोग विद्या से–विवेक ख्याति से दूर किया जा सकता है और वैसा होने से सभी दुःख दूर होते हैं। अविद्या दूर करने का अक्सीर उपाय विद्या है। 'विद्या' यानी ज्ञान और ज्ञान से मुक्ति–दुःख की निवृत्ति होती है।

अन्तःकरण की अशुद्धि का क्षय करने और विवेक ख्याति पर्यन्त ज्ञान का उदय करने का क्रियायोग के अलावा एक दूसरा भी महत्व का सादा, सरल और अक्सीर साधन योग दर्शन में बताया गया है। इस साधन को 'अष्टांग योग' कहा गया है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि–ये अष्टांग योग के आठ अंग–भाग हैं (२–२१)। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को 'यम' कहा गया है। (२–२१) शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान को 'नियम' कहा गया है। (२–३२) देशकाल समय की दरकार किए बिना ऊपर के व्रत का पालन करने की दृढ़ प्रतिज्ञा–निश्चय को तथा नियमों को 'महाव्रत' (Great Vows) कहा गया है।

यम नियम यह देखने में बहुत सादे दिखते हैं परंतु उससे मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति बहुत वेग से होती है। कृत–कारित–अन्य से करायी हुई और अनुमोदित ऐसी तीन प्रकार की हिंसा है। हिंसा बहुत खराब कर्म है। उससे मनुष्य को दुःख और अज्ञान की प्राप्ति होती है। अहिंसा के सही परिपालन से मनुष्य में एक ऐसे प्रकार की शक्ति आती है कि स्वभाव से हिंसक वृत्ति वाले प्राणी भी ऐसे मुनष्य के समक्ष अपनी हिंसक वृत्ति को त्यागकर प्रेमभाव से वर्तन करते हैं। सत्य की प्रतिष्ठा होने से मनुष्य को वचनसिद्धि प्राप्त होती है। अस्तेय से सर्वरत्न की प्राप्ति, ब्रह्मचर्य से वीर्यलाभ, अपरिग्रह से गत जन्मों का ज्ञान, शौच से संसर्ग नाश, मैत्री आदि से आत्मसाक्षात्कार, संतोष से सुख, तप से शरीर और इन्द्रियों की शुद्धि,

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वाध्याय से दिव्य शक्ति सयोग तथा ईश्वर प्रणिधान से समाधि लाभ होता है। (२–३५–४५)

'आसन' की व्याख्या भी आसान है। जिस स्थिति में सुख से बैठा जा सके वह "आसन" है। आसन से सुख–दुःख रूप द्वन्दों का नाश होता है। 'प्राणायाम' यानी श्वासोच्छवास की स्वाभाविक गति का अवरोध। प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि ये सब साधन योग के चौकस ज्ञान के प्राप्त हुए बिना यदि गुरु के सानिध्य के बिना किये गये तो हानि का विशेष भय रहता है।

तीसरे अध्याय में धारणा, संयम तथा सिद्धि का वर्णन किया गया है। शुरुआत का अभ्यासी यह विषय समझ सके वैसा नहीं है।

चौथे अध्याय में कैवल्य पाद है। उसमें बताया है कि जन्म, औषधि, मंत्र तथा समाधि से सिद्धि प्राप्त होती है। ऐसे प्रकार की सिद्धि प्राप्त होने से योगी की प्रकृति में परिवर्तन होता है और मनुष्य नया स्वरूप धारण करता है। योगी के आचरण किये हुए यम नियम आदि से उच्च धर्मो से उसकी उन्नति के बाधक कारणों के नाश होने से , जैसे बांध तोड़ने से पानी अपने–आप बढ़ता है वैसे योगी की उन्नति होती है। चित्त अहंकार से उत्पन्न होता है। ध्यान से योगी का चित्त रागद्वेष बगैर का होने से उसमें वासना नहीं रह सकती। इस कारण से उसके कर्म शुक्ल या अशुक्ल या दोनों से ही भिन्न प्रकार के नहीं होते। प्रत्येक मनुष्य की वासना (Tendency) उसके कर्मानुसार होती है। हेतु, फल, आशय और आलम्बन से वासना संग्रहीत होती है। योगी में इन चारों का अभाव होने से उसे वासना का अभाव रहता है।

कर्म तीन प्रकार के हैं– प्रारब्ध, संचित और क्रियमाण। योगी को वासना का अभाव होने से वह क्रियमाण कर्म से बँधता नहीं है। उसके प्रारब्ध कर्मो के भोग होने से वे कर्म नाश होते हैं। समाधि से उत्पन्न शुभ संस्कारों से योगी के संचित कर्मो का नाश होता है। इस प्रकार सर्वकर्म के नाश होने पर विवेक ख्याति की प्राप्ति में से योगी स्वस्वरूप में स्थित होता है, कैवल्य प्राप्त करता है।

कर्म मीमांसा

इस दर्शन के प्रणेता महर्षि भारद्वाज हैं। छह दर्शनों में इसकी गणना नहीं की गयी है। इस दर्शन का शोध हाल ही में हुआ है शायद इसी कारण छह दर्शनों में इस दर्शन को नहीं गिना गया होगा। महर्षि जैमिनी कृत पूर्व मीमांसा को कर्म मीमांसा ऐसा नाम दिया है परन्तु जैमिनीकृत कर्म मीमांसा में मुख्यतः यज्ञ–यागादि कर्म का वर्णन किया गया है। महर्षि भारद्वाज कृत कर्म मीमांसा में कर्म का सामान्य वर्णन किया होने से यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी है। महर्षि भारद्वाज कृत कर्म मीमांसा में धर्मपाद, संस्कार पाद, क्रिया पाद, मोक्ष पाद ऐसे चार पाद–भाग–प्रकरण हैं।

पहले अध्याय में–प्रथम पाद में धर्म का लक्षण दर्शाते हुए कहा है कि जिससे
CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह सृष्टि तथा उसकी सर्व क्रिया को धारण कर सकते हैं वह 'धर्म' है। धर्म सत्वगुणमूलक होने से अभ्युदय करने वाला है। धर्म में एक प्रकार की शक्ति होती है और उसे वह निःश्रेयस की प्राप्ति करा सकता है। धर्म के विरूद्ध की क्रिया यानि जिससे सृष्टि का नाश हो वह 'अधर्म' है। धर्म से मनुष्य की उन्नति होती है और अधर्म से अधोगति। इस कारण से मनुष्य के लिए अधर्म त्यागने लायक है।

'धर्म' नियामक है। वास्तविक धर्म सत्वगुणमूलक होता है। सुख सत्वगुण का स्वभाव होने से ऐसे धर्म के आचरण से मनुष्य सुखी होता है।

साधारण धर्म, विशेष धर्म, असाधारण धर्म और आपद धर्म ऐसे चार प्रकार के धर्म हैं। धर्म के अनुसार नित्य, नैमित्तिक, काम्य ऐसे कर्म के भी तीन भेद हैं।

धर्म बहुशाखा वाला है। धर्म के बहुत विभाग होते हैं। प्रत्येक मनुष्य के लिये कुछ एक संयोगों में वर्णाश्रमधर्म के अनुसार धर्म अलग-अलग हैं। ब्राह्मण का धर्म अलग, ब्राह्मण का आपद धर्म अलग, ब्राह्मण का नित्यकर्म तथा काम्य कर्म भी अलग-अलग है। इस प्रकार होने के बावजूद धर्म के कुछ एक अंग का-अंश का सही-सही पालन किया हो तो वह धर्म कर्ता को मोक्ष तक की सिद्धि दिलाता है। एक चिनगारी अग्नि का छोटे से छोटा और अलग पड़ा हुआ रूप है। इस प्रकार होने से भी उसमें जला देने की जो सामर्थ्य अग्नि में है वही उसकी प्रत्येक चिनगारी में भी है। इसी प्रकार होने से धर्म में मनुष्य की उन्नति करने की जो सामर्थ्य है वह धर्म के अंश-अंश में है।

प्रत्येक धर्म में आचरण प्रथम धर्म है। धर्म के अनुकूल आचरण को सदाचार कहते हैं। यज्ञ, दान और तप में प्रत्येक धर्म के तीन मुख्य अंग हैं।

संस्कार पाद दूसरा भाग है। कर्म के बीज को संस्कार कहा जाता है। ऐसा संस्कार ही सृष्टि का कारण है। संस्कार के तीन प्रकार हैं। मनुष्य प्रत्येक क्षण में, क्षण-क्षण में जो जो विचार या कार्य करते हैं, उस प्रत्येक कार्य का असर उसके सूक्ष्म शरीर पर होती है। इस प्रकार मनुष्य का शरीर अपने छोटे से छोटे प्रत्येक कार्य का अपने-आप ही हिसाब रखने वाला (Automatic Recorder) एक साँचे जैसा है। मनुष्य के इस जन्म में तथा पहले के जन्म में किये हुए प्रत्येक कर्म के संस्कार समूह को संचित कर्म कहा गया है। संचित कर्म मनुष्य का कर्माशय है।

संचित कर्म बहुत होते हैं, क्योंकि हजारों जन्म में किये हुए कर्म के वह समूह हैं। इस कारण से तमाम संचित कर्म एक जन्म में भोगे नहीं जा सकते इसलिये मनुष्य के लिये कुछ एक जन्म में भोगे जा सकें वैसे और उतने कर्म के एक समूह को निश्चित किया गया है। इस प्रकार एक जन्म में भोगने लायक निश्चित हुए कर्म प्रारब्ध कर्म कहलाते हैं। मनुष्य अपनी जिन्दगी में अपने पूर्व के किये हुए कर्मों को भोगते हैं उसके साथ नये कर्म भी करते हैं। एक जीवन के दरम्यान इस प्रकार किये हुए कर्म क्रियामाण कहलाते हैं। मरण के समय यह कर्म संचित कर्म में मिल जाते हैं। इस प्रकार संचित में से फिर प्रारब्ध निश्चित करके, उस प्रारब्ध को भोगने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के अनुकूल हो वैसी इन्द्रिय, देश, काल, माता–पिता तथा वातावरण में जीव को दुबारा जन्म दिया जाता है। इस प्रकार कर्म से संस्कार, संस्कार से वासना और वासना से फिर कर्म तथा कर्म से जन्म तथा मृत्यु–यह चक्र निरन्तर चला ही करता है।

जैसे बीज भुँजा हुआ हो तो उसमे अंकुर उत्पादन करने की शक्ति नहीं रहती उसी प्रकार कर्म करते समय कामना–इच्छा के बिना ज़ो कर्म करने में आया हो तो उससे वासना उत्पन्न नहीं होती।

वैराग्य को प्रत्येक धर्म में बहुत महत्ता देने में आयी है, उसका मुख्य कारण यही है। निष्काम बुद्धि से, कामना बिना कर्म करने से मनुष्य को अन्त में मोक्ष मिलता है।

श्रद्धा से जो कर्म करने में आवे वह 'श्राद्ध' है। श्राद्ध करने से मृत आत्मा को किस तरह से फायदा होता है इस विषय में भी इस अध्याय में अच्छा विचार किया गया है।

पूर्व मीमांसा

पूर्व मीमांसा के प्रणेता भगवान जैमिनी थे। इस मीमांसा में यज्ञादि कर्म का वर्णन होने से इस दर्शन को कुछ लोग कर्म मीमांसा भी कहते हैं।

पूर्व मीमांसा में १२ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय के भाग को पाद कहा गया है। प्रत्येक पाद में अलग–अलग अधिकरण हैं। अधिकरण में चर्चित विषय को वेद वाक्य को लेकर उसकी चर्चा की गयी है। ऐसे वाक्यों को ' विषय–वाक्य' कहते हैं। इस विषय में जो कोई संशय हो उसका विचार पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष की पद्धति से किया गया है। ऐसे विचार के बारे में जो निर्णय होता है उसे 'सिद्धान्त' कहा गया है। विषय वाक्य, संशय, पूर्व पक्ष, उत्तर पक्ष और सिद्धान्त ये अधिकरण के पाँच अंग हैं।

पूर्व मीमांसा का एक विचार उपयोगी है। प्रत्येक कर्म का तात्कालिक फल नहीं मिलता है। अश्वमेघ आदि यज्ञ के फल मरण बाद मिलते हैं। प्रत्येक कर्म करने से एक प्रकार 'अपूर्व' उत्पन्न होता है। इस 'अपूर्व' को लेकर मनुष्य को भविष्य में उसके कर्म का फल मिलता है। अपूर्व का विचार कुछ एक अंश में संस्कार के विचार से मिलता–जुलता है। प्रत्येक कर्म के कुछ एक संस्कार पड़ते हैं। यह संस्कार इसका फल देकर अपने–आप नाश होते हैं।

उत्तर मीमांसा–ब्रह्म सूत्र

उत्तर मीमांसा का दूसरा नाम ब्रह्मसूत्र है और उसे वेदान्त दर्शन भी कहा गया हैं। वेद यानी कर्मकांड यज्ञ–यागादि का अंत यानि आखिर का भाग उपनिषद है। उपनिषद वेद के अन्तिम भाग होने से इस दर्शन को 'वेदान्त दर्शन' कहा गया है।

इस दर्शन के प्रणेता श्री कृष्णद्वैपायन व्यास हैं। समन्वय अध्याय, अविरोध अध्याय, साधना अध्याय, फलाध्याय इस प्रकार इस दर्शन में चार अध्याय हैं। प्रत्येक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अध्याय मे अलग–अलग पाद तथा प्रत्येक पाद में अलग–अलग अधिकरण हैं।

वेदान्त दर्शन में ज्ञान की तथा उसके साधनों की चर्चा की गयी है। कर्म से अन्तःकरण की शुद्धि होती है, इसलिये कर्म को ज्ञान–प्राप्ति में उपकारक साधन माना है। इसलिए प्रसंगोपरान्त कर्म की चर्चा की गयी है। कर्म इस दर्शन का मुख्य प्रतिपाद्य विषय नहीं है।

आत्मा न तो उत्पन्न होती है और न ही मरती है। जन्म और मृत्यु तो देह की होती है। साधना अध्याय नाम के तीसरे अध्याय के प्रथम पाद में कर्म तथा जीव के विषय में विचार किया गया है। जीव जब एक देह का त्याग कर दूसरे देह में जाता है तो अपने कर्म के बीज रूपी संस्कार साथ लेता जाता है और कर्म के अनुसार कोई नई देह प्राप्त करता है।

पुराण

श्रुति, उपनिषद, स्मृति और दर्शनशास्त्रों में सिद्धान्त रूप से और सूत्र रूप से समझाये गये तत्व सामान्य मनुष्य भी आसानी से समझ सकें, ऐसे उच्च आशय से ही पुराण ग्रन्थ की रचना हुई होगी, ऐसा समझ में आता है। श्रुति तथा युक्ति, सामान्य मनुष्य की बुद्धि में यकायक नहीं आ सकती। यही कारण है कि पुराने समय के प्रसिद्ध पुरुषों–राजाओं के जीवन चरित्र (Biography) कुछ एक प्रकार के धर्म का पालन करने से वे लोग कैसी उच्चस्थिति में पहुँचे यह बताने के उद्देश्य से ही पुराण ग्रन्थ रचे गये हैं।

ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन, विष्णु, नारदीय, भागवत, गरुड़, पद्म, वराह, मत्स्य, कूर्म, लिंग, वायु, स्कंद और अग्नि– ये १८ मुख्य पुराण 'महापुराण' गिने जाते हैं। इसके अलावा दूसरे १८ 'उपपुराण' भी हैं। सृष्टि की उत्पत्ति, नाश–प्रलय, अवतार की कथा, अलग–अलग प्रसिद्ध राजाओं, ऋषियों, देवों और देवियों के जीवन चरित्र या उसमें से महत्व के प्रसंगों का वर्णन करना पुराणों का मुख्य विषय है।

जब–जब धर्म की ग्लानि होती है तब–तब मैं–भगवान–साधुओं का रक्षण करने, दुष्टों का नाश करने, धर्म संस्थापन करने के लिए अवतार लेता हूँ। यह भगवद् वाक्य का वास्तविक रहस्य समझना हो तो अलग–अलग पुराणों में अलग–अलग जगहों में वर्णित अलग–अलग अवतारों के वर्णन का विचार करने से ही यह बात समझ में आती है।

दशावतार में से हरेक अवतार के पहले की राजकीय और सामाजिक स्थिति पर दृष्टि डालें तो पता चलता है कि राज्य में, समाज में, धर्म में, व्यवहार में इतनी तो सड़न हो गयी थी। इसके कारण समाज के बड़े हिस्से पर महान त्रास और जुल्म फैल गया था। जिन राजाओं को, जिस वर्ग का, प्रजा का संरक्षण करना चाहिए, जिनको न्याय और नीति से चलना चाहिए वह वर्ग ही स्वयं इन्साफ के,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न्याय के, नीति के, धर्म के प्राथमिक सिद्धान्तों की अवज्ञा करते थे।

मत्स्यावतार के पहले भी सामाजिक स्थिति खराब होने से गौ, ब्राह्मण, साधु, वेद तथा धर्म, अर्थ की रक्षा करने के लिए तथा हयग्रीव नाम के असुर का नाश करने के लिए भगवान को जन्म धारण करना पड़ा था। कूर्म तथा वराह अवतार के समय में भी वैसी ही स्थिति उत्पन्न हुई थी।

हिरण्यकशिपु ने भक्त प्रहलाद का जिस तरीके से उत्पीड़न करना शुरु किया था यह बात सुविख्यात है। भक्त प्रहलाद का रक्षण करना तथा हिरण्यकशिपु का नाश करने के लिए नरसिंह अवतार हुआ।

जमदग्नि जैसे निर्दोष ऋषि को पीड़ा कर, जंगल में बसे ऋषि की यज्ञ भूमि भी क्षत्रियकुमार हरण कर गये तो उसी समय पृथ्वी को इक्कीस बार अक्षत्रिय करने वाले परशुराम का अवतार हुआ था।

विश्वामित्र जैसे ऋषियों के यज्ञ जैसे कार्य में भी जब असुरों ने विघ्न डाला, रावण जैसे राजा परस्त्रीहरण जैसा गुनाह स्वयं करने लगे तब ऋषियों के रक्षण तथा रावण के नाश के लिए ही रांम अवतार हुआ था।

श्रीकृष्णचन्द्र के अवतार–समय में भी ऐसी ही स्थिति थी। द्वारिका में यादव कुल का राज था। उस समय कुमार विश्वामित्र जैसे ऋषियों के पास जाकर साम्थ नाम के एक कुमार को कुमारी का वेश पहनाकर गर्भवती स्त्री दिखने का आडम्ब्र किया और इस स्त्री को पुत्र या पुत्री होगी ऐसी, गलीच मसखरी ऋषियों, मुनियों के पास जाकर करने जैसी दुष्टता करते थे। ऐसी स्थिति द्वारिका में काठियावाड़ में थी।

हस्तिनापुर–दिल्ली में इससे भी खराब स्थिति थी। लोगों को अपना वचन भंग करने से रोकना तथा स्त्रियों के स्त्रित्व की रक्षा करना यह राजा का मुख्य धर्म है। दुर्योधन जो राजा था वह स्वयं ही इस धर्म का उल्लंघन करता था। द्रौपदी जैसी सती स्त्री का पूरी सभा के सामने उसने ही चीरहरण किया। पाण्डवों को बारह वर्ष का वनवास भोग कर वापस आने के पश्चात दुर्योधन ने सुई के नोक के बराबर भी जमीन देना स्वीकार नहीं किया। दुर्योधन के न्याय का यह नमूना था। मथुरा में कंस, जरासंध, कालीनाग इत्यादि का त्रास था। वृष्णी कुल के यादवों का नाश करने के लिए, कौरवों का संहार करने के लिए, कंस–वध करने के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने अवतार लेकर ऋषि–मुनियों को, पाण्डवों को, मथुरा की गोपियों को, साधु पुरुषों को भगवान ने सरंक्षण देकर पतित हुए राज्यधर्म का तथा समाज धर्म का संस्थापन किया।

किसी भी मनुष्य को पीड़ा देना खराब है लेकिन दुष्टों को, खराब मनुष्यों को पीड़ित किए बिना साधुओं का संरक्षण नहीं होता है। भगवान श्रीकृष्ण के इस महान महत्व के उपदेश पर आजकल ठीक से ध्यान नहीं दिया जाता है और उसी कारण से राज्यव्यवस्था तथा समाज व्यवस्था में अंधाधुंधी हो गयी है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दुष्टों का दमन करने में, पापियो का उत्पीड़न करने में दया को स्थान नहीं है यह मानने की भूल न हो जाए, इस बात का खास ध्यान रखने की जरूरत है। दुष्ट व पापी ऐसी जाति के मनुष्य होते हैं जो साधरण मेहनत से सुधर नहीं सकते। प्रथम बार का अपराधी कुछ एक संयोगों का भोग होकर गुनाह करें, ऐसे मनुष्य को दुष्ट नहीं कहा जा सकता।

दमन करने में–दण्ड देने में दुष्ट मनुष्यों की स्वयं के उपरान्त मनुष्य के साथ सन्बन्ध रखने वाले मनुष्यों की भावनाओं को भी ध्यान में लेने की जरूरत है। उच्चकुल में एक भी खराब मनुष्य पैदा हो तो वैसे मनुष्य को शिक्षा करने से पूरे कुटुम्ब–खानदान पर आफत आती है। कुपुत्र को उसके गुनाह के कारण शिक्षा करने से उसकी माता को असीम दुःख होता है। इसी प्रकार दुष्ट पति को शिक्षा देने से उसकी साध्वी स्त्री तथा निर्दोष पुत्रों को भी दुःख सहन करना पड़ता है। ऐसे खास संयोगों में दया को पूर्ण अवकाश है। ऐसे संयोगों में साम, दाम, भेद का उपयोग करने के बाद दण्ड–नीति ग्रहण की जाए तो ही अच्छा परिणाम आता है।

इस प्रकार होने के बावजूद दुष्ट पुरुषों के दमन में, बराबर विवेक रखने में नहीं आए तो समाज सुव्यवस्थित नहीं रह सकता। इस कारण से स्मृति आदि ग्रन्थ में कहा गया है कि दुष्ट पर अनुग्रह करने वाले राजा को दुष्ट के किये हुए दुराचार के पाप का छठा भाग मिलता है। पुराणों में इस विषय पर बहुत दृष्टांत हैं।

दुष्ट को दंड देना, साधुओं को संरक्षण देना यह मुख्य मुद्दा ध्यान में रखने से दण्ड देने वाले की भाव–शुद्धि में कमी नहीं आती है परन्तु दुष्ट–दमन से साधु संरक्षण के सत कार्य का पुण्य मिलता है। दुष्ट यादव कुल–कुमार, साक्षात् श्रीकृष्ण के कुटुम्ब के होने के बावजूद श्रीकृष्ण को साधु संरक्षण के लिए, यादव कुल का–अपने कुल का भी नाश करना पड़ा था।

पुराणों में श्रीमद्भागवत और विष्णु पुराण ये दो हाल में विशेष प्रचलित हैं। पुराण के विषय में इतना प्राथमिक विचार करने के बाद महत्व के पुराणों में विशेष महत्व के विषय में क्या कहा गया है उसका विहगावलोकन करने की जरूरत है।

श्रीमद् भागवत

श्रीमद्भागवत में १२ स्कंध हैं। प्रत्येक स्कंध में अलग–अलग अध्याय हैं। इन ग्रन्थों का मुख्य विषय भक्ति का है परन्तु अवान्तर रूप से इस ग्रन्थ में धर्म के अधिकतर सभी भागों पर विचार किया गया है। कर्म के संबंध में भी बहुत जगह पर विचार किया गया है।

प्रथम स्कंध में कुछ एक आख्यायिकाएँ हैं। तप, पवित्रता, दया और सत्य–ये धर्म के चार पाद–आधार हैं। जुआ, मदिरापान, स्त्रीसंग तथा प्राणी की हिंसा यह कलियुग के चार पैर आधार है। सत्पुरुषों की–सज्जनों की महिमा बताने के लिए कहा है कि सत्पुरुष तीर्थयात्रा के बहाने स्वयं ही तीर्थ को पवित्र करते हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दूसरे स्कंध में भगवान की स्थूल और सूक्ष्म धारणा का स्वरूप बताया है। अवतारों के वर्णन भी इस स्कंध में किये गये हैं। तप निर्धन मनुष्यों का उत्तम धन है।

तीसरे स्कंध के १० वें अध्याय में दस प्रकार की प्राकृतिक सृष्टि एवं नित्य और नैमित्तिक प्रलय का वर्णन है। १२ वें अध्याय में मानसिक तथा मैथुनिक सृष्टि का वर्णन है। सांख्य शास्त्र के प्रणेता कपिलदेव के जन्म का वृत्तान्त २४ वें अध्याय में है। उसके बाद के आठ अध्याय में कपिल और देवहुति के संवाद आते हैं, वे बहुत उपयोगी हैं। सांख्य और अष्टांग योग का इन अध्यायों में वर्णन किया गया है। परमेश्वर सभी प्राणियों में अन्तर्यामी रूप में रहते हैं, उसकी दान, मैत्री और समदृष्टि से पूजा करनी चाहिए। स्वर्ग और नरक यहीं है क्योंकि नरक की जो पीड़ाएँ हैं वह इस दुनियाँ में भी दिखने में आती हैं। अपने कुटुम्ब का और अपनी देह का भरण–पोषण करने वाला कुटुम्ब और देह को इस दुनियाँ में छोड़कर मर जाता है और वैसा करने में किये हुए पाप उसके साथ जाता है।

जीव का जन्म–मरण है ही नहीं इसलिए मरण का डर या जीने का लोभ रखना नहीं। जीव का वास्तविक स्वरूप पहचान, संग–आसक्ति मात्र का त्याग कर मनुष्य को धैर्यपूर्वक रहना चाहिए।

चौथे स्कंध में कर्म के विषय में थोड़ा बहुत विचार किया गया है। उसमें कहा है कि कर्म के अनुसार मनुष्य का अवतार होता है। सात्विक कर्म से अच्छे और सुखी कुल में, राजस से दुखी और तामस कर्म करने से अज्ञान और शोक से भरे हुए स्थान में मनुष्य का अवतार होता है। विषय की (Sense Object) तृष्णा वाला जीव, स्वर्ग, पृथ्वी, अन्तरिक्ष में प्रारब्ध के अनुसार सुख दुःख पाया करता है। कर्ममात्र जब तक ज्ञानरहित और वासना सहित, सकाम होते हैं तब तक सुख नहीं दे सकते।

कर्तापन और भोक्तापन ये स्थूल देह के नहीं परंतु लिंग देह के यानी जिसमें मन मुख्य है वैसे अन्तःकरण में होता है। स्थूल देह नाश होता है परन्तु अन्तःकरण नाश नहीं होता। नये स्थूल देह में भी पहले के स्थूल देह में जो अन्तःकरण था वही रहता है। इस कारण से जिस अन्तःकरण ने एक स्थूल देह में काम किया था, वही अन्तःकरण नवीन देह में अपने किये हुए कर्म के फल को भोगता है। पूर्व देह के कर्म से ही उस कर्म के फल का अनुसरण करती हुई वृत्ति अन्तःकरण में उठती है। जिन कर्मबल का उदय हुआ होता है, उन कर्मो के फल के अनुसार वृत्ति उत्पन्न होती है और उस प्रकार से ही मनुष्य की कर्म में प्रवृत्ति होती है। मन, बुद्धि, इन्द्रिय और विषयों के समूह लिंग शरीर जब तक है तब तक जीव का स्थूल देह से सम्बंध छूटता नहीं।

भगवद्गीता में कहा है कि मनुष्य मरते समय जिन–जिन भावनाओं को स्मरण करता है उसे वह दूसरे जन्म में पाता है (८–६)। कुछ एक का विचार करना यानी वैसा होना (Thinking is being) इस सत्य का उदाहरण पाँचवे स्कंध के आठवें अध्याय में जड़ भरत के दृष्टांत से दिया है। जिसके नाम से यह देश भरत खण्ड

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कहलाता है उस भरत राजा का मन मरते समय अपने पाले एक हिरन के बच्चे में आसक्त हुआ जिससे भरत राजा को दूसरे जन्म में अपनी मरते समय की वासना के अनुसार मृगयोनि हिरन, की जातमें अवतार लेना पड़ा।

छठें स्कंध के शुरुआत में ही कहा है कि मन, वचन, काया से जो पाप कर्म किया होता है उसका दुःख मन, वचन, काया से ही भोगना पड़ता है। ऐसे दुःख दूर करने के उपाय प्रायश्चित हैं। इस प्रकार के किये हुए पाप के प्रायश्चित मृत्यु पूर्व ही करना चाहिए। रोग के निदान जानने वाला वैद्य जैसें वात, पित्त के जोर को देखकर ही उस प्रकार की औषधि देता है, उसी प्रकार मनुष्य को भी अपने पाप का परिमाण और जात को देखकर उस तरह से प्रायश्चित करना चाहिए।

जिस व्यक्ति ने जितना और जिस प्रकार का धर्म तथा अधर्म किया होता है उसी प्रकार वह सुख–दुःख पाता है। वर्तमान जन्म में मनुष्यों के पूर्वजन्म की तथा भावी जन्म की परीक्षा होती है। सभी प्राणियों के अन्तःकरण में छिपा अन्तर्यामी भगवान एक ही है फिर भी अलग–अलग मनुष्यों में अलग–अलग कर्म तथा अलग–अलग वासना होने से अलग–अलग मनुष्यों को वह अन्तर्यामी उनकी भावना के अनुसार दिखता है।

इन्द्र और वृत्तासुर के युद्ध में दधीचि ऋषि की हड्डियों की जरूरत पड़ी थी। महर्षि दधीचि ने परमार्थ के खातिर, जगत कल्याण के खातिर अपनी अस्थि–हड्डियाँ अर्पण की थीं। ऐसा करते समय उन्होंने कहा कि यह देह जो किसी दिन छोड़कर चला जाना है उसका मैं स्वयं ही आपके देवता के प्रिय के लिए क्यों न त्याग करूँ? प्राणियों पर दया रख, इस नाशवान देह से धर्म या यश प्राप्त न करे, उस पुरुष को धिक्कार है। अन्य प्राणियों को दुःखी देख दुःखी होना, सुखी देख खुशी होना यह सनातन धर्म है। यह क्षणभंगुर देह से तथा धन से यदि कोई भी परोपकार न हो तो वह हकीकत शोचनीय है। इस प्रकार महर्षि दधीचि ने भगवान का स्मरण करते–करते अपना देह छोड़ा, अपनी अस्थि देवताओं को अर्पित की। मरे हुए दधीचि के इस शरीर ने महर्षि दधीचि का नाम अमर और प्रातःस्मरणीय बनाया है।

सातवें स्कंध में भक्त राज प्रह्लाद का चरित्र और नरसिंह अवतार की कथा है। भगवान की स्तुति करते हुए प्रह्लाद जी ने कहा है कि जो भक्त भगवान से विषय सुख की लालसा रखे वह सच्चा भक्त नहीं कहलाता है। इस प्रकार की भक्ति भक्ति नहीं परंतु वाणिज्यवृत्ति (**Bargaining Spirit**) है। जो स्वामी–परमेश्वर दास या भक्त के पास से सेवा की इच्छा से उसके इच्छित पदार्थ दे, वे स्वामी भी नहीं माने जाएँगे। प्रभु मैं तो आपका निष्काम भक्त हूँ और आप मेरे निष्काम–पूर्णकाम प्रभु हो। इस प्रकार होने से मैं तो आपसे इतना ही मांगता हूँ कि आप मेरे मन में कामनाओं का अँकुर ही उत्पन्न न होने देना। कामनाओं के जंन्म होने से इन्द्रिय, मन, प्राण, धृति, लज्जा, लक्ष्मी, स्मृति सभी का नाश होता है। सभी कामना छोड़ने से ही मनुष्य को मुक्ति मिलती है। (गीता के २–६२–६३ और ७१ के साथ तुलना करें)। वर्णाश्रम धर्म

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समझाते हुए भागवतकार ने कहा है कि गृहस्थ के सिवा अन्य सभी आश्रम वालों को स्त्री–संग की बात भी नहीं करनी चाहिए क्योंकि स्त्री अग्नि रूप है और पुरुष घी के घड़े जैसा है। स्त्री तथा स्त्री चित्र भी देखने का त्याग करना ब्रह्मचारी के लिए जरूरी है।

अपने को सुख देने वाला पुरुषार्थ भी स्वयं में–प्रत्येक मनुष्य में ही है। मूर्ख मनुष्य काई से डरकर जल को छोडकर पानी पीने के लिए मृगजल की तरफ दौड़ते हैं। इस प्रकार अज्ञानी मनुष्य भी अपने स्वय के अलावा विषयों में सुख है ऐसा मानकर उसके पीछे दौड़ते हैं, ऐसा करने से उसे सुख के बदले दुःख ही होता है।

मधुमक्खियाँ बहुत दुःख सहन करके अलग–अलग फल–फूलों में से स्वयं को उपयोगी होगा वैसा मान मधु इकट्ठा करती हैं, दुःख का बड़ा कारण खड़ा करती हैं। मधु के कारण ही अन्य मनुष्य मधु लेने के लिए मधुमक्खी को मार डालते हैं, धनवान का भी यही हाल है। बहुत मेहनत करके प्राप्त किया हुआ धन कई बार उसके मालिक के, संग्रह करने वाले के नाश का कारण होता है, ऐसे भी किस्से इतिहास में हैं। इस हकीकत पर से मनुष्य को संतोष रखनां सीखना चाहिए।

सयाने मनुष्य शरीर में, अपने देह में, कुटुम्ब में तथा घर में जितना जरूरत हो उतना ही सम्बन्ध रखते हैं और मन से अन्तःकरण में वैराग्य रख बाहर से सामान्य और विषय आसक्त पुरुष जैसा पुरुषार्थ किया करते हैं। जितने से अपना निर्वाह हो उसके सिवा विशेष लालसा रखना चोरी करने जैसा है। मृग, बन्दर, मक्खी इत्यादि क्षुद्र जन्तुओं के प्रति भी अपनी ही प्रजा के जितना प्रीति रखना। अपने अन्न में से हर एक को यथायोग्य अन्न देना। प्रभु की मूर्ति की पूजा करके जो मनुष्य द्वेष करता है तो वैसा करने से प्रभु की पूजा का फल नहीं मिलता।

संतोष ही परम सुख है, लोभ सभी दुखों का–पाप का मूल है। इस सम्बन्ध में अभ्यासी को एक व्यवहार्य भावना भागवत में दर्शायी गयी है। इस सम्बंध में कहा है कि किसी भी प्रकार के संकल्प नहीं करके कामनाओं को जीतना, कामनाओं को त्याग करके क्रोध को जीतना, स्वरूप के विचार से भय को जीतना, आत्मा तथा अनात्मा के विचार से शोक तथा मोह को जीतना, शरीर आदि के व्यापार–विचार को छोड़कर हिंसा को जीतना, किसी भी प्राणी को हमसे हुए दुःख से उस प्राणी पर दया रख उसको जीतना, सत्वगुण से रजोगुण को तथा तमोगुण को जीतना और शान्ति से सत्वगुण पर भी विजय पाना चाहिए।

आठवें स्कंध में महत्व के विषय गजेन्द्र मोक्ष तथा बलि राजा के विश्वजीत यज्ञ में वामनरूप में प्रभु पधारे थे वह है। वामन रूप में विष्णु भगवान हैं, उस कारण से दान करने की प्रतिज्ञा को भंग करने में कोई अड़चन नहीं वैसा बली राजा के गुरु शुक्राचार्य ने बली राजा को कहा। बली राजा ने उसके प्रत्युत्तर में जो जवाब दिया वह बहुत उपयोगी है। उन्होंने कहा कि मैं प्रह्लाद का पौत्र हूँ, दान का वचन

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देने के पश्चात मैं फिर उस वचन को भंग नहीं कर सकता क्योंकि असत्य से दूसरा कोई विशेष अधर्म नहीं। इस जगत के धन आदि पदार्थो को मरते समय पुरुष को जबरदस्ती छोड़ना पड़ता है तो फिर इन पदार्थो को जीते जी राजी खुशी से त्याग कर उससे दूसरों के दुःख दूर हो वैसा क्यों न करना? दानवीर बली राजा पर प्रसन्न हो वामन भगवान ने अपना स्वरूप प्रकट किया और कहा कि मैं जिस पर अनुग्रह करने की इच्छा करता हूँ, उसको यदि धन का मद हो तो वह धन मैं हर लेता हूँ, ले लेता हूं, क्योंकि धनप्राप्ति से मद के कारण अक्खड़ रहने वाला पुरुष अन्य लोगों की तथा मेरी भी अवज्ञा करता है। ऐसे कर्म से उसकी अवदशा होती है। धनप्राप्ति परमेश्वर के अनुग्रह का प्रमाण (Proof) है। यह तो सामान्य लोग भी जानते हैं परन्तु कुछ एक मनुष्यों के लिए धन का नाश ही प्रभु की मेहरबानी माननी चाहिए, यह सत्य समझ मनुष्य को धन आदि के नाश पर भी यह प्रभु का संकेत ही होगा ऐसा मान संतोषं रखना चाहिए। इस प्रकार की विचार श्रेणी से ही कर्मयोगी में आवश्यक समता–समत्व बुद्धि का उदय होता है।

नवें स्कन्ध में भक्तराज अम्बरीश,रामचरित तथा रन्तिदेव के आख्यान हैं। ययाति राजा के देवयानि को दिये हुए बोध बहुत उपयोगी है। ययाति राजा कहते हैं कि विषयो को भोगने से तृष्णा कभी शान्त नहीं होती। जब मनुष्य किसी भी प्राणी पर बैरभाव न रखे और समदृष्टि वाला बने तब ही वह सुखी होता हे। शरीर जीर्ण होने पर भी तृष्णा जीर्ण नहीं होती, इसलिए शुरुआत में ही उसे छोड़ना चाहिए। जैसे राही पानी के प्याऊ के पास इकट्ठे होते हैं, इसी प्रकार अपने अनुसार सग्रे सम्बन्धी भी इकठ्ठा होते हैं, वैसा मान आसक्ति को त्यागकर भगवान में मन को स्थिर कर भगवति देवयानि ने अपना शरीर छोड़ा। रन्तिदेव का चरित्र बहुत उच्च था। रन्तिदेव एक महान राजा थे। दैव संयोग से एक बार उन्हें ४८ दिन तक अन्न पानी नहीं मिला। ४९वें दिन जब वे भोजन करने बैठते हैं तो वहाँ पर एक ब्राह्मण अतिथि आया। रन्तिदेव ने अपनी भूख प्यास की परवाह किये बिना उसे भोजन कराया । ब्राह्मण के भोजन के पश्चात् राजा जहाँ भोजन के लिए बैठते हैं वहाँ एक शूद्र आया, उसे भी उन्होंने भोजन कराया। उसके जाने के बाद एक शूद्र कुत्तों की टोली लेकर आया और कुत्ते भूखे हैं ऐसा कहकर भिक्षा माँगी। राजा ने वह भी दी। ४८ दिन भूखे रहने के पश्चात् भी थोड़े से मिले हुए अन्न को इस प्रकार व्यय होने से राजा के पास थोड़े पानी के अलावा कुछ भी न रहा। जहाँ राजा पानी पीने की तैयारी करते हैं, वहीं एक चाण्डल ने पानी माँगा। राजा स्वयं भूख और प्यास से मरणासन्न थे, उन्होंने कहा–मैं ईश्वर के पास आठ सिद्धि वाले राज्य का ऐश्वर्य या मोक्ष भी माँगता परन्तु इतना ही माँगता हूँ कि सभी प्राणी के अन्दर रहकर सबकी पीड़ा मैं ही भोगूँ जिससे सभी प्राणी दुःखरहित हों, सभी प्राणियों का दुःख मिटे तो मैं उससे मेरा दुःख मिटा वैसा मानूँगा। इस कंगाल चाण्डल को पानी दे उसकी प्यास दूर करने से मुझे सुख होगा। इस प्रकार कह कर राजा रन्तिदेव ने ४८ दिन के अन्न और पानी के उपवास के बाद भी अपने प्राणों की

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भी परवाह न करके चाण्डाल को पानी दिया। जाति–जाति के भेद के सिवा, सार्वभौम दृष्टि से सर्वभूत के प्रति रन्तिदेव की दया का यह दृष्टांत दुनियाँ के इतिहास में बेजोड़ (Unparallel) हैं। (गीता के श्लोक ५–१८ से तुलना करें)।

दसवाँ स्कंध सबसे बड़ा है। पूर्वार्ध और उत्तरार्ध ऐसे उसके दो भाग हैं। इस स्कन्ध में श्रीकृष्ण के जन्म तथा लीला का वर्णन है। कर्म के सम्बंध में इस स्कंध मे कहा है कि जैसे पानी के प्रवाह में बहते हुए तृण तथा लकड़ी की स्थिति एक जगह पर नहीं रहती, उसी प्रकार भिन्न–भिन्न प्रारब्ध वाले प्राणी–सम्बन्धियों का सहवास भी स्थिर–लम्बी मुददत तक नहीं चलता । प्रारब्ध कर्मानुसार सब मिलते हैं और वह पूरा होने के पश्चात् सब अलग हो जाते हैं।

लक्ष्मी के मद से चूर हुए पुरुष के लिए दारिद्र ही उत्तम अंजन रुप है। मनुष्य समझ कर या बिना समझे इस तरह से दो तरीके से कर्म करते हैं। इन दोनों में से समझ कर कंर्म करने वाले को जैसे सिद्धि होती है उसी प्रकार बिना समझे कर्म करने वाले को सिद्धि नहीं मिलती। जीव अपने कर्म से ही जन्मता है, अपने कर्म से ही सुख दुःख और कल्याण पाता है। इस कारण से देवता कर्म के फल देते हैं यह मानना गलत है। यह सकल जगत पूर्व संस्कार में ही रहा है। कर्म की प्रवृत्ति संस्कार के अधीन है। कर्म को ही मनुष्य को पूजना चाहिए। कर्म ही मित्र ,शत्रु,उदासीन और गुरु है। समझदार पुरुष को धन के फलस्वरुप यज्ञ और दान कर घर के भोग को भोगकर स्त्री तथा पुत्र की इच्छा छोड़ना और जगत को नाशवान समझ प्रतिष्ठा की तथा स्वर्ग आदि की भी इच्छा छोड़ना ।

ग्यारहवाँ स्कंध बहुत उपयोगी है। भक्ति, ज्ञान, कर्म आदि के सम्बन्ध में उसमें विचार किया गया है। इस सम्बंध में कहा है कि जीव को भोग तथा मोक्ष दिलवाने के लिए प्राणियों के कर्मानुसार ईश्वर ने पंचभूत में से ऊँच–नीच प्रकार के शरीर उत्पन्न किये है। इस स्कन्ध में कर्म, अकर्म विकर्म, का भी विचार किया गया है। यह गीता में से ही लिया हुआ लगता है।

वेद ने कर्म करने की जो आज्ञा दी है वे कर्म छुडाने के लिए ही की गयी है इसलिए वेद परोक्षवाद रूप है। जैसे पिता अपने पुत्र को दवाई देने के समय शक्कर के लड्डू देने का लालच दे दवाई देते हैं। शक्कर के लड्डू देते हैं सही परंतु ऐसा करने से दवाई खाने का फल शक्कर के लड्डू पाना नहीं साबित होता, परंतु आरोग्य की प्राप्ति होती है वही है। इस प्रकार वेद भी कर्म करवाने के लिए मनुष्यों को स्वर्ग आदि लोक की लालच देते हैं। कर्म का फल स्वर्ग आदि मिले उसके लिए यह लालच नहीं, परंतु कर्म में से छूटा जाए–कर्म के बन्धनों का नाश हो वैसे हेतु से यह लालच दी है। इस प्रकार होने से निषिद्ध कर्मों का त्याग कर ,ज्ञान हो वहाँ तक वेदोक्त कर्म करना परन्तु वह भी स्वर्गादि फल के हेतु से यानी काम्यबुद्धि से नहीं करना।

धर्म करना ही धन का फल है। धर्म करने से परोक्ष तथा अपरोक्ष ज्ञान होता है और उससे कर्ता को शान्ति होती है। ऐसे धन को लोग यदि देह आदि की

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्षुद्रवृत्ति को संतोषने के लिए खर्च करते तो वह गलत होगा। मैथुन करने की छूट प्रजा उत्पत्ति के लिए है, विषय इन्द्रिय तृप्त करने के लिए नहीं। सातवें अध्याय में दत्तात्रेय के २५ गुरुओं का वर्णन है वह भी बहुत मनन करने लायक है। देह में, शरीर में दुःख भोगने के रूप ही फल रहा है। देह का नाश होने पर भी दुःख की समाप्ति नहीं होती। वृक्ष जैसे बीज को उत्पन्न करके नाश होता है वैसे ही देह भी अन्य देह के कर्मरूप बीज को उत्पन्न करके नाश होता है। एक पति की अलग–अलग स्त्रियाँ उसे अलग दिशा में खींचती हैं वैसे ही अलग–अलग इंन्द्रियां एक देह को अपने विषयरूपी अलग–अलग दिशा में खींचतीं हैं। इस कारण से देह को दुःखरूप मान उस पर वैराग्य रखना।

पशु वगैरह धन नहीं, परंतु धर्म ही मनुष्य का उत्तम धन है। सुवर्णादि का दान यह दक्षिणा नहीं परंतु ज्ञान का उपदेश ही वास्तविक दक्षिणा है। शत्रु को दबाने की शक्ति बल नहीं परंतु अपने मन को दबाने का सामर्थ्य मनोनिग्रह ही उत्तम बल है। मुकुट यह भूषण नहीं परंतु तृष्णारहित होना ही एक भूषण है। कुम्भीपाक यह नरक नहीं परंतु तमोगुण की वृद्धि यही नरक है। पैसावाला धनवान नहीं परंतु संतोषी ही धनवान है। निर्धन हो वह दरिद्र नहीं परंतु असंतोषी ही दरिद्री है। रंक हो वह कंगाल नहीं परंतु विषय इन्द्रिय जिन्होंने नहीं जीती वही वास्तविक कंगाल है।

लोभी मनुष्य को धन कभी सुखदायी नहीं होता ऐसे मनुष्यों को जीवन दरम्यान धन देह को तथा मन को परिताप देता है और मरने के पश्चात् भी नरक की प्राप्ति कराता है। यक्ष की तरह धन की चोरी करने वाला नीच योनि में पैदा होता है–जन्मता है।

मौन रखना वाणी का दण्ड है, अच्छे काम करना देह का दण्ड है, प्राणायाम करना चित्त का दण्ड है। ऐसे तीन दण्ड धारण करे वही त्रिदण्डी सन्यासी है। बारहवाँ स्कन्ध आखिरी स्कन्ध है। कल्कि अवतार का वर्णन, प्रलय परीक्षित का मोक्ष आदि विषयों का इस स्कन्ध में वर्णन है। इस स्कंध में कलियुग की वस्तुस्थिति का वर्णन है। कलियुग में धनवान ही कुलवान माने जाएंगे। स्त्री–पुरुष का उत्तमपना भी आचार पर से नहीं परंतु रति करने में कुशलता पर से माना जाएगा। अच्छे बाल ही शोभा माना जाएगा। धर्म का सेवन कीर्ति के लिए ही होगा। २० या ३० वर्ष भी लम्बा आयुष्य गिना जाएगा आदि का वर्णन है। कलियुग के ये दोष होनेके बावजूद उसका सबसे बड़ा गुण यह है कि स्वल्प धर्माचरण से या भगवान के केवल कीर्तन से भी मनुष्य को मोक्ष मिल सकता है।

विष्णु पुराण

विष्णु पुराण भी एक महत्व का महापुराण है। इस पुराण में ६ अंश हैं और प्रत्येक अंश में अलग–अलग अध्याय हैं। प्रथम अंश में कहा है कि कोई किसी को मारता नहीं है। मनुष्य अपने किये हुए कर्म स्वयं ही भुगतता है। इस प्रकार

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होने से अपने को नुकसान करने वाले पर भी क्रोध नहीं करना क्योंकि क्षमा ही सत्यवादी पुरुषों का वास्तविक बल है। मनुष्य यज्ञ से स्वर्ग या मोक्ष को पाते हैं, इतना ही नहीं परंतु वे जिस पद की स्थिति की इच्छा करते हैं वैसा पद पाते हैं।

भक्तराज प्रह्लाद का चित्रण भी इस अंश में ही है । तीसरे अंश में कहा है कि परायों का द्रव्य हरण करने वाले, प्राणियों का नाश करने वाले, असत्य भाषण करने वाले कपटी अन्तःकरण में विष्णु का कभी भी निवास नहीं होता। रागद्वेष रहित, सभी के प्रति समान बुद्धि रखने वाले और वर्णाश्रम धर्म पालने वाले के हृदय में विष्णु परमात्मा निवास करते हें, वही सच्चे भक्त हैं।

ग्यारहवें अध्याय में सदाचार का वर्णन किया गया है, वह उपयोगी है। जिस योग से धर्म में बाधा आवे वैसे अर्थ को तथा काम को त्याग करना चाहिए। लोगों के विरुद्ध तथा अन्य प्राणियों को दुखकर हो वैसे धर्म का भी त्याग करना, सर्वभूत प्राणियों के उपकार के लिए तर्पण करना, अतिथि का सत्कार करना, क्रोध का त्याग करना, शान्त अन्तःकरण से इष्टदेव का स्मरण करना, भोजन करना आदि रोज के उपयोग में आने वाले कई विषयों का विचार किया गया है।

गृहस्थाश्रमी को हमेशा देव, गाय, ब्राह्मण, सिद्ध पुरुष वृद्ध, और गुरु आदि का पूजन करना चाहिए। किसी तरह से भी गलत रीति से धन का हरण न करना, सत्य वचन बोलना और सत्य बचन बोलने से किसी को दुःख होता हो तो मौन रखना, प्रिय भाषण हितकर और युक्ति पुरसर का न हो तो न बोलना, फिर भी हितकारक वचन अप्रिय होने से भी कहना। शरीर जीर्ण—वृद्ध होने के बावजूद तृष्णा जीर्ण नहीं होती, इसलिए बुद्धिमान पुरुष को तृष्णा का त्याग करके सुखी होना चाहिए। (४—१४)

२४ वें अध्याय में कलियुग के धर्म कहे गये हैं वह पढ़ने लायक है और पठनीय हैं। कलियुग में संपत्ति ही कुलीनता, द्रव्य ही धर्म, अस्तेय ही जय का साधन, इच्छा ही विवाह, उत्तम वेश ही सत्पात्रता कहलाएगी। दुर्बलता से जीविका न चलने से भीषण भीति उपजावे वैसा भयंकर भाषण करने वाला ही पण्डित कहलाएगा आदि कलियुग के बहुंत दोष गिनाये गये हैं।

पाँचवे अंश के आखिरी दो अध्याय में यादव कुल के नाश का इतिहास है। यादव कुल के नाश के पश्चात् भगवान श्रीकृष्ण तथा उनके सारथी दारुक दो ही जन जीवित रहे थे। कृष्ण ने दारुक को यादव कुल का नाश की खबर कहने जब द्वारिका भेजा और आहुक को कहलवाया कि द्वारिका में अर्जुन आएँगे, उसके साथ आप सब द्वारिका से बाहर निकल जाना क्योंकि अर्जुन के रथ द्वारिका में से निकल जाने के पश्चात् द्वारिका में प्रलय होगी और पूरी द्वारिका डूब जाएगी। दारुक के जाने के बाद भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने समाधि चढ़ा ली और अपने परब्रह्म रूप का चिन्तन कर देह का त्याग किया।

अर्जुन द्वारिका में जाकर यादव कुल की स्त्रियों तथा अन्य पुरुषों को ले दूसरे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जगह पर निवास करने के लिए ले जा रहे थे तब वहाँ रास्ते में लकड़ियों को लेकर चोर लोगों ने अर्जुन पर हमला किया। अर्जुन ने गाण्डीव धनुष भी चलाया परंतु वह भी नहीं चला। अर्जुन हारा–एक कटिहारे से लूटा गया और चोर लोग अर्जुन को अपने कब्जे में ले यादव स्त्रियों का हरण कर गये।

इस घटना से अर्जुन को बहुत दुःख हुआ। अपनी भुजाओं से, जिस गाण्डीव से, जिस अर्जुन ने कौरवों का नाश किया वही भुजा वही अर्जुन और वही गाण्डीव आज भी होने के बावजूद, मैं अर्जुन, कटिहारे जैसे चोर लोगों से लूटा गया ? अर्जुन इस प्रकार बोलकर रुदन करने लगा। पराशर ऋषि ने इस समय अर्जुन को सांत्वना दी और कहा कि अर्जुन प्रत्येक मनुष्य का विनाश आता है तब उसकी बुद्धि, बल आदि तमाम निकम्मे हो जाते हैं। तेरा भी विनाशकाल नजदीक आने से तेरा गाण्डीव, बल, तेज, पराक्रम सभी बेकार हो गये हैं। प्रत्येक उत्पन्न हुए मनुष्य का मरण अवश्य होना है, प्रत्येक संयोग के बाद वियोग, प्रत्येक संग्रह के बाद क्षय जरूर होता है। इस प्रकार जय–अजय से, लाभ–अलाभ से, ज्ञानी मनुष्य शोक नहीं करते, इसलिए हे अर्जुन ! तुझे भी चोरों के हाथ तुम्हारे पराजय से शोक नहीं करना चाहिए।

गरूड़ पुराण

मनुष्य के मरण के पश्चात् उसकी गति उसके कर्मानुसार होती है। स्थूल देह में किए हुए कर्मों का, स्थूल देह छोड़ने के बाद सूक्ष्म शरीर पर किस प्रकार असर होता है, मनुष्य के कर्मानुसार उसे स्वर्ग–नरक की प्राप्ति उसे किस तरीके से होती है इस विषय में गरुड़ पुराण में अच्छा वर्णन होने से कर्मयोग के अभ्यासी को यह पुराण उतने हद तक महत्व का है। इस पुराण में कर्म संबंधी आए महत्त्व के विषयों का संक्षिप्त सार नीचे अनुसार है।

ये मार्ग पुण्यशाली को सुख देने वाले और पापी को दुःख देने वाले हैं। पाप में ही रचे बसे रहने वाले तथा दया और धर्म का त्याग करने वाले मनुष्य नरक में जाते हैं। जो मनुष्य ज्ञान और शील सम्पन्न हैं वे लोग परागति को, उच्च स्थान को पाते हैं।

श्राद्ध करने से मृत मनुष्य को सूक्ष्म जगत में नया शरीर धारण करने में मदद मिलती है। मर जाने वालों के पुत्रों द्वारा किया श्राद्ध और पिण्डदान से मरने वाले के नये शरीर का पोषण होता है। इस कारण से मरने वाले के श्रेय के लिए श्राद्ध आदि क्रिया बहुत महत्व की बतायी गयी है।

कल्पकोटि–शतकोटि वर्ष हो जाएँ परन्तु किए हुए कर्म भोग के सिवा–उसका बदला दिए बिना नाश नहीं होते हैं।

मनुष्य के मरने के पश्चात उसके जीवन के दरम्यान किये हुए शुभाशुभ कर्म के फल सुख–दुःख भोगने के लिए उसे एक यातना शरीर की जरूरत पड़ती है। यह शरीर एक अंगूठे जितना होता है। इस शरीर से मनुष्य को उसके कर्मानुसार स्वर्ग या नरक लोक का सुख या दुःख भोगना पड़ता है। यातना शरीर को बदला

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देने के लिए मनुष्य का कोई शुभाशुभ कर्म रह न जाए इस लिए मनुष्य के कर्म का हिसाब रखनेवाला एक चित्रगुप्त नाम के अधिकारी की कल्पना की गयी है। चित्रगुप्त, यह नाम ही अर्थसूचक है। मनुष्य का प्रत्येक कर्म उसके लिंग शरीर में संस्कार रूप रहता हैं सांख्य शास्त्र में कहे हुए इन संस्कार को ही पुराण की भाषा में चित्रगुप्त की उपमा दीं लगती है।

यातना शरीर को यमराज स्वयं ले जाते हैं। यमराज एक निष्पक्ष न्यायाधीश हैं। पृथ्वी पर मनुष्य पण्डित हो या मूर्ख हो, सबल हो या निर्बल, धनवान हो कि भिखारी हो, उसकी किसी भी प्रकार की दरकार किए बिना यमराज मनुष्य को उसके कर्मानुसार शिक्षा देते हैं। इस प्रसंग में दुनिया में हँस–हँस कर किये पाप कर्म प्राणी को रो–रोकर भुगतने पड़ते हैं। इस प्रसंग पर मनुष्य को धन, स्त्री, पुत्र, सगे–सम्बन्धी कोई भी मदद नहीं कर सकते, परन्तु मनुष्य का अपना धर्म ही उसका रक्षण करता है।

दुनिया में कैसे–कैसे कर्म करने से नरक लोक में प्राणी की किस–किस प्रकार की स्थिति होती है तथा यातना भुगतने के बाद भावी जन्म में मनुष्य कैसे संयोगों में जन्म लेता है उसका वर्णन अप्रिय होने के बावजूद भी उपयोगी है।

ब्रह्म हत्यारा, उधार वापस न देने वाला, अन्य के दोष ग्रहण करने वाला, माता–पिता की अवज्ञा करने वाला, पतिव्रता, गुणी और साधु मनुष्यों को दोष देने वाले आदि कर्म करने वाले नरक में जाते हैं। चालू जन्म में कुछ–कुछ रोग वाले तथा कुछ–कुछ चिन्ह वाले मनुष्यों ने पहले जन्म में क्या पाप कर्म किया होगा उसका भी अनुमान किया जा सकता है। चालू जन्म में कुछ एक कर्म करने वाले भविष्य में कैसी स्थिति में होंगे उस विषय में भी अनुमान करने के लिए सिद्धान्त और उदाहरण इस पुराण में दिये गये हैं। ब्रह्महत्या करने वाला, क्षय रोगी, गौ हत्या करनेवाला, कुबड़ा, कन्याघाती कोढ़ वाला, वेदनिन्दक पाण्डुरोगी, झूठी साक्षी देने वाला गूंगा, झूठ बोलनेवाला बोबड़ा, अन्न की चोरी करने वाला चूहा, जो लूटपाट से जीवन व्यतीत करता है वह बकरा, विषपान करके मरने वाला कृष्ण सर्प, आशाछेद करने वाला चक्रवाक, एकादश श्राद्ध का भोजन करने वाला कुत्ता होता है। सोने की चोरी करने वाला मनुष्य भावी जन्म में कृमि, कीट–पतंग जैसी नीच योनि में जन्म पाता है। इस प्रकार अनेक उदाहरण दिये गये हैं। कुछ एक कर्म का भावी जन्म में कैसा असर होगा उस विषय में ऊपर के उदाहरण पर से अनुमान किया जा सकता है।

जैसे घड़ी घूमा करती है उसी प्रकार कर्मपाश से बँधा मनुष्य किसी समय स्वर्ग में किसी समय नरक में किसी समय पृथ्वी पर ऐसे घूमा करता है, क्योंकि उस मनुष्य के किए हुए शुभाशुभ कर्म का फल अवश्य मिलता है और करोड़ों वर्ष बीत जाए तो भी उसका फल दिए बिना कभी कर्मनाश नहीं होता है।

जब–जब श्रद्धा हो और दान देने के लिए पात्र मिले तो वह समय वास्तविक सच्चा पुण्यकाल है। इस प्रकार दान देने से स्थिर संपत्ति पुण्यकर्म प्राप्त होता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गोदान, तीर्थयात्रा, श्राद्ध, ब्रह्म भोजन को महत्ता दी गई है।

वेदविद्, अभ्यागत पूजक, दुर्गा तथा सूर्य के उपासक, धर्म सग्रह में प्राणत्याग करने वाले, तीर्थक्षेत्र काशी में मरने वाले, गौ रक्षण में प्राणत्याग करने वाले, ब्राह्मण अर्थ मे, स्वामी अर्थ में प्राणत्याग करने वाले, योगाभ्यासी, सत्पुरुष का पूजने वाले और महान दान देने वाले, धर्मराज नगर की धर्मसभा में जाते हैं और उत्तम गति को पाते हैं। इन आत्माओं को स्वर्ग लोक में उत्तम सुख भोगने के बाद पृथ्वी पर भी उत्तम मनुष्य के रूप मे जन्म मिलता है।

अन्तकाल का समय पास आने से मनुष्य को आसग रूप तलवार से देह के अन्दर की स्पृहा–तृष्णा का तार काटना चाहिए।

जो मनुष्य रागद्वेषरूप मल निकालकर, ज्ञानरूप सरोवर में सत्यरूप पानी में, मानस तीर्थ में स्नान करते हैं वे मोक्ष पाते हैं। पुराणों की उदार भावना और विशाल बुद्धि का यह उत्तम नमूना है।

अन्य पुराण

ब्रह्माण्ड पुराण, हाल में सम्पूर्ण मिलना भी मुश्किल है। काल प्रलय आदि का इस पुराण में वर्णन है। कल्प के अन्त में प्राणियों के कर्म का नाश नहीं होता परंतु सूक्ष्मरूप में रहता है। चार वर्ण तथा चार आश्रमों के धर्म इस पुराण में वर्णित हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण में कृष्णजन्म खण्ड में कृष्णजन्म की कथा है। इस पुराण का प्रकृति खंड उपयोगी है। इस खंड में सुकृत्य, दुष्कृत्य शुभाशुभ कर्म आदि का वर्णन है। स्त्रियों के लिए पति जैसा भी हो तो भी पतिव्रत पालन का आग्रह किया गया है। मालावती का पति वियोग का वर्णन इस पुराण में अच्छा है। स्त्रियों के लिए स्वामी से बढ़कर अन्य देव विशेष पूजने लायक नहीं हैं।

मार्कण्डेय पुराण में सत्यवादी हरिश्चन्द्र राजा का उदाहरण है। सत्य से बढ़कर अन्य कोई धर्म श्रेष्ठ नहीं है। भयभीत की रक्षा करना, गरीबों को दान देना यह उत्तम धर्म है।

चन्द्रहास और विषया का भी आख्यान **भविष्य पुराण** में है। वृत्ता अनुष्ठान तथा दान धर्म के विषय में भी इस पुराण में अच्छा विचार किया गया है।

वामन पुराण में मुख्य कथा बली राजा की है। इस पुराण में अलग–अलग नरक की योजना की गयी है। परदारागमन, मद्यपान और कटु भाषण यह नरक में ले जाने वाले हैं। ईर्ष्या भी एक प्रकार का पाप है। अन्य के दोष प्रकाशित करना तथा अपने स्वयं के दोष को छिपाना भी पाप कर्म मांना गया है।

आदि पुराण या ब्रह्म पुराण में विश्वामित्र तथा परशुराम की कथा मुख्य है। चन्द्रवंशी राजाओं का वर्णन भी इस पुराण में है।

नारदीय पुराण में कुछ एक नीति के नियमों की अच्छी चर्चा की गयी है। काम आदि दुश्मन जिनके अन्तःकरण में रहते हैं उनका विनाश होता है जिनका

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सौभाग्य क्षीण हुआ हो उन्हीं में ईर्ष्या–अन्य को अच्छा देख दुखी होने की वृत्ति उत्पन्न होती है। दूसरे की निन्दा करना अपने मूल को काटना–कुल्हाड़ी मारने जैसा है।

पद्म पुराण में जीव दया, अहिंसा आदि जैन मत के कुछ एक विषयों का वर्णन है। वराह पुराण में बलि के बन्धन तथा दान तथा उसके फल के विषय में विचार किया गया है। मत्स्य पुराण में क्रियायोग तथा शुभाशुभ निमित्त आदि का वर्णन है।

कूर्म पुराण में चारों युग का तथा युग–युग की बदलती हुई परिस्थितियों का वर्णन है। कलिकाल का वर्णन करते हुए बताया है कि उसमें बहुत दोष होने के बावजूद एक बड़ा गुण यह है कि उस युग में मनुष्य बहुत आसानी से स्वल्प धर्माचरण से भी महान पुण्य प्राप्त कर सकेंगे। महादेव को नमस्कार, ध्यान तथा दान से कलियुग में किये गये सभी पापों का नाश होता है।

प्रत्येक मनुष्य को उसके कर्मानुसार दण्ड मिलता है, इस सिद्धान्त का विचार इस पुराण में किया गया है। निन्दा तथा द्वेष का त्याग कर तृष्णा को त्याग करने से मनुष्य को सुख होता है। जगत के सभी सुख तृष्णा के क्षय से होने वाले सुख के सोलहवें हिस्से के बराबर भी नहीं है। इस हकीकत को पुराण में दर्शाया गया है। शिव पुराण या वायु पुराण में शिवपूजन आदि विधि है। स्कन्द पुराण भी शैव सम्प्रदाय का है। लोपामुद्रा की भक्ति, गृहस्थाश्रम धर्म, गायत्री माहात्म्य आदि विषय भी इस पुराण में हैं। अग्नि पुराण भी सम्पूर्ण मिलना मुश्किल है। व्याकरण आदि कुछ एक शास्त्रों का इस पुराण में वर्णन है। व्रत नियम तथा पूजा पद्धति का भी इस पुराण में विचार किया गया है।

कुछ एक पुराणों में भूमण्डल का, नक्षत्र मण्डल का तथा अन्य वंश के इतिहास का भी वर्णन है; इसके उपरान्त कुछ एक पुराण में व्याकरण आदि अन्य विषयों पर भी विचार है। इसके अलावा अन्य बहुत सारे पुराण जो एक पुराण में हो वैसे ही दूसरे पुराणों में चर्चा की गयी है। यह बात न सोचें तो भी सभी मनुष्यों को एक सरीखे उपयोगी हों वैसे सदाचार तथा सदवर्तन और उसके उदाहरण अलग दिये जाने से लोगों को बहुत उपयोगी होना सम्भव है। तमाम पुराणों के कुल श्लोकों की संख्या ४ लाख होती है वह भी बहुत कम होती जा रही है। हाल में जिस रूप में पुराण हैं वे बहुत लम्बे होने के उपरान्त सामान्य मनुष्य के आधुनिक जीवन में रोज के व्यवहार में निरुपयोगी हैं, वैसे उसमें काफी विषय हैं। ऐसे विषय उस–उस विषय के ज्ञाता को बहुत उपयोगी हो उसमें शंका नहीं फिर भी ऐसे विषयों को ले समाज का बड़ा हिस्सा पुराण जैसे उपयोगी ग्रन्थों के विस्तार से तथा उसके बहुत लम्बा हो जाने के कारण और शास्त्रीय शैली से ऊबकर पुराण पढ़ने की तरफ प्रवृत्ति ही नहीं करते हैं; पुराणों में भी सभी मनुष्य को सामान्य रूप से रोज के व्यवहार में उपयोगी बने वैसे बहुत हिस्से हैं। इस कारण से अपने सुशिक्षित वर्ग पुराण के अभ्यास की तरफ आकर्षित हो यह इच्छनीय है।
CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इतिहास

महाभारत और रामायण इतिहास ग्रन्थों के दो महत्व के ग्रन्थ हैं। श्रुति तथा स्मृति में धर्म के जिन सिद्धान्तों को दिया है उनका विशेष स्पष्टीकरण पुराण तथा इतिहास ग्रन्थों में किया गया है।

महाभारत की महत्ता को लेकर कुछ लोग उसको पाँचवाँ वेद कहते हैं। उस ग्रन्थ में एक लाख श्लोक हैं। ग्रन्थ बहुत लम्बा है इसलिए हाल में उसके पढ़ने वाले लोग बहुत कम हैं। यदि समय निकालकर पूरा ग्रन्थ पढ़ने में आवे तो बहुत फायदा होगा।

भीष्म बाण शैय्या पर पड़े थे उस समय युधिष्ठिर राजा ने जाकर उनसे राज्य, धर्म, अर्थ वगैरह के बहुत प्रश्न पूछे थे। महाभारत के इस भाग को महाभारत का शान्ति पर्व और अनुशासन पर्व कहा गया है। पूरी महाभारत पढ़ने की शक्यता न हो उनको शान्ति पर्व तो अवश्य ही पढ़ना चाहिए।

भीष्म एक महान योद्धा थे, इसके साथ ही वे नैतिक, आर्थिक, सामाजिक, राजदारी और धार्मिक विषयों के अच्छे ज्ञाता भी थे। महाभारत का शान्ति पर्व यानी भीष्म जैसे महत्व के महारथी के जीवन का सार। यह एक पर्व भी ठीक ढंग से पढ़ा जाए तो महाभारत की कितनी लोक उपयोगिता है इसका ख्याल आ सकता है। आदि, सभा, वन, विराट, उद्योग, भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य, सौतिक, स्त्री, शान्ति, अनुशासन, अश्वमेध, आश्रम वासिक, मौसल, महाप्रस्थानिक और स्वर्गारोहण ऐसे महाभारत के १८ पर्व हैं। प्रत्येक पर्व में अन्य छोटे पर्व हैं और उसमें अलग–अलग अध्याय हैं।

महाभारत में कर्म के सिद्धान्त का कई जगह पर वर्णन है। इस सब का सार कहने के लिए भी पूरी पुस्तक चाहिए। कर्म के अनुसन्धान में कुछ एक विषयों का थोड़ा बहुत वर्णन इस पुस्तक में करने के अलावा यहाँ अधिक विवेचन नहीं किया जा सकता। कर्मयोग के अभ्यासी को कर्मयोग के सिद्धान्तों को आचरण करने में सहूलियत–आसानी रहे इसके लिए महाभारत के कर्म संबंधी महत्व के सिद्धान्तों तथा विचार रत्न का संक्षिप्त सार नीचे दिया जाएगा।

महाभारत

परलोक में देवता प्रकाशित हो रहे हैं, वे भी अपने–अपने कर्म से ही प्रकाशमान हो रहे हैं। वायु, सूर्य, चन्द्र आदि देव भी अपने–अपने कर्म सही करके ही देवलोक को प्राप्त हुए हैं। इन्द्र भी ब्रह्मचर्य का पालन कर कर्म करने से ही देवताओं के भी राजा हुए हैं। वृहस्पति भी सुखों का त्याग करके, इन्द्रियों को संयमित करने से ही तो उत्तम कर्म करने से ही देवताओं में पूज्यपद को प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार कर्म से ही मनुष्य को उच्चगति प्राप्त होती है।

खाने के अलग–अलग पदार्थों के गुण जानने के बाद भी जब तक वे खाने

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मे न आये तब तक क्षुधा शान्त नहीं होती, तृप्ति नहीं होती उसी प्रकार शुभ कर्म और सदाचार का स्वरूप जानने के बावजूद भी जब तक शुभ कर्म का, सदाचार का–सत्कर्म का आचरण करने में न आवे तब तक मनुष्य की उन्नति नही होती। (उद्योग पर्व– अध्याय १)

मनुष्य जैसे स्वप्न में अलग देह अपने–आप धारण करते है उसी प्रकार मरण के पश्चात यह जीव स्थूल देह को तज कर, प्राणों के साथ पुण्य–पाप को आगे रख, पवन से भी अधिक विशेष वेग से अन्य देह को धारण करता है। (आदि–अध्याय ९०)

ईश्वर भी अनादि वासना के संस्कार के अनुसार प्रथम जैसी ही सृष्टि रचता है और धर्म भी पूर्वजन्म के संस्कार के अनुसार ही मनुष्य को कर्म मार्ग में प्रेरणा करते हैं। सभी प्राणी पूर्वजन्म के कर्म के संस्कारों को इस जीवन में अनुभव करते हैं। मनुष्य की हाल की वृत्ति उसके पूर्वजन्म के संस्कारों को सूचित करती है। पूर्वजन्म के संस्कार के अनुसार कर्म कर सभी प्राणी अपनी आजीविका चलाते हैं (१–३२)

इस देह का नाश होते समय जीव दूसरे देह में जाकर रहता है और भौतिक शरीर का पंचभूत का पुतला अपने–अपने मूल महाभूतों में–पंचतत्वों में मिलकर अलग हो जाता है। देह का नाश यानी पंचभूतों का अलग होना, अपने–अपने वास्तविक स्वरूप में बँट जाना है।

इस दुनियाँ में कोई भी मनुष्य दूसरे मनुष्यों के खराब या अच्छे फल के परिणाम नही भोग सकता। प्रत्येक मनुष्य को अपने–अपने कर्मो के फल भुगतने ही पड़ते हैं। क्योंकि भोगे बिना कर्म का कभी भी नाश नहीं होता। इस संसार में मनुष्य के किये हुए कर्म उसके पीछे–पीछे ही अनुसरण करते हैं और जैसा कर्म किया हो वैसा फल युक्त होकर मनुष्य नया जन्म धारण करता है। इस प्रकार होने से बुद्धिमान मनुष्य धर्म पर प्रेम रखते हैं और धर्म के आश्रय से ही अपना जीवन व्यवहार और आजीवका चलाते हैं। ऐसे मनुष्य के जो अच्छे कर्म में विशेष गुण दिखते हैं उसी से धर्म के मूल का सिंचन, धर्म से प्राप्त धन के आधार पर करते हैं।

धर्म से भी लोकप्रभुता को पाते हैं तथा तमाम वस्तु भी पाते हैं। ऐसे मनुष्य ज्ञान दृष्टि से वैराग्य का भी सेवन करते हैं । वे संसार के रागद्वेष आदि दोष के अधीन नहीं होते। ऐसे पुरुष स्वेच्छा से ही विरक्त, रागद्वेष बिना के त्यागी होते हैं। वैराग्य से मनुष्य पाप कर्म का त्याग करता है और उससे उसे मुक्ति मिलती है (वनपर्व–२०६).

ब्राह्मण पूजा का साहित्य लेकर जैसे देवताओं की पूजा करते हैं उसी प्रकार मैं माता–पिता की सेवा करता हूँ, माता–पिता मेरे परमदेव हैं। विद्वान मनुष्य जो तीन अग्नि, चार वेद तथा यज्ञों की बात करते हैं वे सभी मेरे लिए मेरे लिए माता–पिता हैं। (वनपर्व–२१४)

दुर्योधन जैसे अधर्मी मनुष्य के सुखी होने तथा पाण्डव जैसों को वनवास मिलने

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से, जैसा कुछ मनुष्यों के साथ होता है, उससे द्रौपदी की श्रद्धा धर्म तथा ईश्वर में से उठ गई और ईश्वर के यहाँ कोई न्याय ही नहीं है ऐसा मानने लगी।

इस प्रसंग पर द्रौपदी को सांत्वना देते हुए युधिष्ठिर ने कहा कि राजपुत्री कर्म के फलों का सम्पादन करने के लिए मैं कर्म नहीं करता हूँ परंतु ऐसे कर्म करना शास्त्र में कहा हुआ है, कर्तव्यबुद्धि से मैं कर्म करता हूँ। वैदिक पुरुषों के सदाचार और शिष्टाचार का अनुसरण कर मैं कर्म करता हूँ। जो मनुष्य फलप्राप्ति के लिए धर्म का विक्रय करते हैं यानी स्वर्गादि फलप्राप्ति के लिए धर्म करते हैं वे तो धर्म के व्यापारी हैं। धर्मवादियों में ऐसे मनुष्य नीच गिने जाते हैं।

किए हुए धर्म या अधर्म कभी निष्फल नहीं जाते परंतु उसका शुभाशुभ परिणाम जरूर देते हैं। हे कल्याणी शास्त्र में कहे हुए पुण्य–पाप के फल का उदय, कर्म के उत्पत्ति में कारणभूत अविद्या तथा उसको नाश करने वाली विद्या ये सभी देव गुह्य है (Divine Mystery) । इन देव गुह्य विषयों में प्राकृत मनुष्य मोहित होता है। वास्तविक तत्ववेत्ता हजारों वर्ष बीत जाएँ तो भी देवों के हित करने वाले कर्मों को सकाम बुद्धि से कभी भी अनुसरण नहीं करते। यह विषय देवताओं को भी गुह्य रखने योग्य है। तृष्णा का नाश करने वाला, मिताहारी, दान तथा तप से पाप का नाश करने वाले योगी ही निर्मल मन द्वारा ध्यान करने से ऊपर के कर्म का वास्तविक स्वरूप जान पाते हैं। (वनपर्व–३१)

जो पुरुष कर्म के स्वरूप को समझे बिना तथा शास्त्र के आधार बिना प्रायश्चित करते हैं वे केवल क्लेश ही भोगते हैं। मलिन–रागद्वेष वाले मन के पापों को अग्नि जलाती नहीं। फल, कन्द का आहार करने से, सिर मुड़ाने से गृह का त्याग करने से मोक्ष नहीं मिलता। सभी प्राणियों पर दया रखने से, मन, वचन और शरीर को शुद्ध रखने से वास्तविक वैराग्य उत्पन्न होता है और उसी से मोक्ष मिलता है। जो महापुरुष मन, वचन, कर्म और बुद्धि से पाप नहीं करते वे ही वास्तविक तपश्चर्या करते हैं। शरीर को कष्ट देकर दुर्बल करना तपश्चर्या नहीं है। अपने कुटुम्ब में रहकर स्व–कुटुम्बी जनों पर जो दया नहीं करते वे निर्दयी हैं। जो घर में रहकर गृहस्थाश्रमी रहकर सभी प्राणियों पर दया रखता है वही सच्चा मुनि है। जो अन्तःकरण से निर्मल न हो तो त्रिदण्ड धारण करने से, जटा रखने से, मुण्डन कराने से कोई भी फल नहीं मिलता। जो मनुष्य क्षुधा से–भूख से पीड़ित को अनाज देता है वह स्वर्ग में पूजा जाता है। जो मनुष्य धर्मशाला बनवाकर निराधार प्राणियों को रहने की जगह देते हैं उसे सर्व यज्ञ का फल मिलता है। वेद में दर्शित देवों का परम आयुष्य कर्मों के शुभ फल देहधारियों के प्रभाव युग–युग में फलीभूत होता है। इन्द्रियों की प्रवृत्ति के निरोध रूप–इन्द्रिय निग्रह रूप जो अनशन–जो उपवास है वही वास्तविक सच्चा उपवास है। तप करने से स्वर्ग, दान करने से वैभव और ज्ञान से मोक्ष मिलता है (वनपर्व–२००)।

भीष्म पर्व में भगवद्गीता कही गयी है। भगवद्गीता कहने के पहले ही युधिष्ठिर के मन में संशय आता है। युद्ध की तैयारी तो हो चुकी है परंतु कौरव सेना की

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्यूह रचना भीष्म जैसे महारथी द्वारा की होने से हम जीतेंगे या नहीं ? इस शंका के समाधान में अर्जुन ने कहा है कि विजय की इच्छा वाले बल से या वीर्य से जीता नहीं जाता, परंतु सत्य, धर्म और उत्साह से ही जीत मिलती है। उत्तम पुरुष, श्रीकृष्ण के आश्रित धर्म, अधर्म तथा लोभ के स्वरूप को जानने के बाद अहंकाररहित होकर युद्ध करते हैं, ऐसे मनुष्य ही विजेता होते हैं। जहाँ धर्म है वहाँ जय है।

भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य, सौतिक और स्त्री पर्वों में मुख्य रूप से युद्ध का ही वर्णन है। युद्ध समाप्त होने के बाद भीष्म पितामह बाणशैय्या पर लेटे हैं। इस समय युधिष्ठिर श्रीकृष्ण से मिलने जाते हैं। श्रीकृष्ण भगवान इस समय समाधिस्थ हैं– ध्यानपरायण हैं। अर्जुन को आश्चर्य हुआ। त्रिलोक के नाथ जिनका ऋषि– मुनि निरन्तर ध्यान करते हैं वे साक्षात श्रीकृष्ण परमात्मा किसका ध्यान करते होंगे? इस जिज्ञासा को धर्मराज छिपा नहीं सकने से श्रीकृष्ण से पूछते हैं, आप किसका ध्यान कर रहे हैं? श्रीकृष्ण ने कहा–बाणशैय्या पर लेटे हुए भीष्म मेरा अनन्य भाव से ध्यान कर रहे हैं। सभी इन्द्रियों को संयमित कर प्राणायाम की गति को रोक अनन्य भाव से भीष्म मेरी शरण में आये हुए हैं इसलिए मैं भी उन्हीं का ध्यान कर रहा हूँ। भक्त के प्रेम से भगवान कितने आकर्षित होते हैं उसका यह उदाहरण है। भीष्म के दिये हुए उपदेश का कितना महत्व है वह भी ऊपर के दृष्टान्त से स्पष्ट नजर आता है (शान्तिपर्व–७३)।

शान्ति पर्व

इस पर्व में राजधर्म, आपद धर्म, मोक्ष धर्म पूर्वार्ध तथा मोक्ष धर्म उत्तरार्ध– ऐसे चार भाग हैं। शान्ति पर्व में दिये हुए मननीय विचारों में से कुछ एक को नीचे दिया गया है। धर्म से धन सम्पादन कर यज्ञादि कर्म करे और जिसने चित्त जीता हो उसी को वास्तविक सन्यासी मानना। रागद्वेषरहित जो मनुष्य गृहस्थाश्रम चलाते हैं वही भाग्यशाली हैं। घर का त्याग करने वाले वास्तविक त्यागी नहीं परंतु अहंकार, ममता का त्याग करने वाले वास्तविक त्यागी हैं।

धर्म, अर्थ और काम का दण्ड ही संरक्षण करता है। कुछ एक राजदण्ड के भय से कुछ एक यमदण्ड के डर से तो कुछ एक लोकदण्ड के त्रास से पाप करने से रुकते हैं। लोक विषय में दण्ड न हो तो राजा और प्रजा दोनों का नाश होता है, दण्ड से ही यह जगत सुप्रतिष्ठित रहता है। दुष्ट की अहिंसा ही साधु की हिंसा है इसलिए इन दोनों में से आर्त का रक्षण करना कल्याणकारक है।

अप्रिय का संयोग, सप्रिय का वियोग, अर्थ–अनर्थ, सुख–दुःख, जन्म–मरण, उन्नति–क्षय, लाभ–अलाभ यह सभी अदृष्टाधीन है। जैसे फल में गंध, रूप, रस, आकार अपने आप स्वयं आते हैं, वैसे ही सुख–दुःख आदि भी पूर्व किये कर्मानुसार स्वाभाविक रूप से आते हैं। सत्कुल में जन्म, पराक्रम, आरोग्य, रूप, सौभाग्य उपभोग–ये सब पूर्व कर्म के परिणाम हैं। गरीब मनुष्यों को इच्छा नहीं होने से भी बहुत पुत्र होते हैं। इस प्रकार इच्छित तथा अनिच्छित पदार्थ मनुष्य को मिलते हैं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उसने भी दैवज पूर्व कर्म ही मुख्य कारण है।

दैव और पुरुष--प्रयत्न ये दोनों एक रथ के दो पहिये जैसे हैं, इन दोनो में से पुरुष--प्रयत्न उत्तम है। इन्द्र भी उद्योग करते ही रहते हैं तभी अमरत्व को प्राप्त करते हैं तथा असुरों को हराते हैं। असुरों को मारने की योग्यता से ही इन्द्र स्वर्ग में श्रेष्ठ पद को प्राप्त होते हें। गरीबों का, दुखियों का, निराधारों का रक्षण राजधर्म का महत्व का तत्व है। राज्य एक बडा तंत्र है। अजितेन्द्रिय और क्रूर पुरुषों से वह नहीं निभाया जा सकता यह तंत्र बड़े परिश्रम का स्थान है इसलिए वह केवल कोमल मनुष्यों से भी चलाया नहीं जा सकता। राज्यकर्ता–राज्य अधिकारी वर्ग– प्रजा के सेवकों को क्रूरता तथा कोमलता का मिश्रण करके ही रागद्वेष का त्याग करके ही समयानुसार वर्तन करना चाहिए। ऐसे मनुष्यों को काम, क्रोध, लोभ, मान की क्षुद्र लालसा का त्याग कर सभी के ऊपर समबुद्धि रख जो कोई मनुष्य धर्म से चलायमान हुआ हो उसका बाहुबल से निग्रह करना चाहिए। राजा जब समग्र दण्डनीति के अनुसार वर्तन करते हैं तभी काल के उत्पन्न किए हुए सतयुग भी फिर से प्रवर्तित होते हैं। राजा को प्रजा का रक्षण करना उसका परमधर्म है। एक दिन भी प्रजा का रक्षण करने में राजा प्रमाद करे तो एक हजार वर्ष पर्यन्त उसका दुःख प्राप्त होता है। सत्पुरुष, अच्छे पुरुष, ब्राह्मण वर्ग एक महान वृक्ष हैं उसका रक्षण किया हो तो उसमें से मधु और सुवर्ण बरसता है जो रैयत के अच्छे मनुष्यों का राज्य की तरफ से तो उसके अधिकारी वर्ग की तरफ से रक्षण न हो तो प्रजारूप कल्पवृक्ष में से अश्रु तथा पाप की वर्षा होती है और उसके कारण राज्य तथा राजा का नाश होता है। लकड़ी का हाथी, चमडे का मृग, नपुसंक पुरुष, बंजर भूमि, वेदाध्ययन बिना का ब्राह्मण जैसे निकम्मे हैं वैसे ही गरीब रैयत को रक्षण नहीं देने वाला राजा भी निकम्मा है। जो अच्छे मनुष्यों का संरक्षण कर दुष्टों का नाश करे वही वास्तविक राजा है।

जगत के सर्जनहार ने दुर्बल के बल के लिए राजारूपी बल उत्पन्न किया है। दुर्बल की, मुनि की और सर्प की दृष्टि सहन न हो सके वैसी है। इस कारण से दुर्बल को पीड़ा नहीं करनी चाहिए। अपमानित हुए दुर्बल की दृष्टि से–अश्रुपात से बड़े–बड़े राज्यों का नाश हुआ है। पापकर्म का फल उस राजा को, उनके पुत्रों को और उसके पौत्रों को अवश्य मिलता है। जिस देश में दुर्बल मनुष्य दुखी होते हैं, अपना रक्षण नहीं कर सकते उस देश में दैवकृत दारुण दण्ड आ गिरती है। राजा अपनी आबादी की इच्छा करे तो उसे विद्या को विस्तृत कर जय को पाना परंतु दम्भ और कपट से जय की इच्छा नहीं रखनी चाहिए।

ऊपर दर्शित राज्यधर्म केवल राजाओं के लिए है वैसा नहीं परंतु राज्य की नौकरी करने वाले वर्ग के लिए भी यह उसी प्रकार लागू हैं। प्रत्येक देश की प्रजा की नौकरी करने वाले वर्ग पर भी यह धर्म लागू होते हैं। प्रत्येक देश की प्रजा की आबादी उसकी राजव्यवस्था पर है और राजव्यवस्था का आधार उसके राज्य के नौकरों पर है(Public Service) । इस तरह से ऊपर दर्शित सभी मान्य सिद्धान्त

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रत्येक राज्य के नौकरों के लिए नियम कर्म–स्वधर्म और कर्तव्य कर्म जैसे हैं।

शांति पर्व के मोक्ष धर्म के प्रकरणों में कहा है कि कुछ एक धर्मों का फल मृत्यु के पश्चात परलोक में होता है जिससे ऐसे धर्म अदृष्ट फल वाले धर्म कहे जाते हैं।

सुख–दुःख का स्थान शरीर है। प्राणी जिस शरीर से कर्म करता है उसी देह से वह कर्म को भोगता हे। तृष्णा के त्याग से ही वास्तविक सुख प्राप्त होता है। पुरुष जिस–जिस कामना को तज देता है उस–उस कामना का त्याग ही उनके द्वारा सुखपूर्वक पूरा करता हैं।

वास्तव में इस दुनिया में प्रीति के समान दुःख नहीं और त्याग जैसा सुख नहीं। कामना के अन्त का किसी मनुष्य ने अभी भी पार नहीं पाया है जिससे इस जगत में संतोष जैसा सुख नहीं ।

पुरुष अत्यन्त तेज दौड़ते हैं तो उसके साथ उसके पूर्व कर्म भी उतने ही तेज पीछे दौड़ते हैं वह सोता रहता है तो उसका कर्म भी सोता रहता है। पुरुष जिस–जिस तरीके से प्रयत्न करते हैं उस–उस रूप से उसके पूर्व कर्म उसे जल्दी या देर से फल देते हैं। पुरुष को उसकी परछाई की तरह पूर्व कर्म अनुसरण करते हैं। अपने कर्मरूप सौगात जो कर्म से उपजे अदृष्ट में संभालकर रखी होती है, वह वापस देने के समय यह सभी प्राणी को कर्मरूप सौगात की तरफ खींचा करते हैं। किये हुए कर्म का फल समय आने पर अपने–आप स्वयं ही प्राप्त होता है। पेड़ तथा फूल को कोई ऐसा कहने नहीं जाता कि अब तुम्हारे फल देने का समय आ गया है, फिर भी जैसे समय आने पर वृक्ष तथा बेल फल–फूल देते हैं, वैसे मनुष्य के किये हुए शुभाशुभ कर्म भी समय आने पर स्वयं ही उसे फल देते हैं।

किसी को किसी समय भी दान नहीं करने से पुरुष को कुछ नहीं मिलता। अन्य को सुख–दुःख, भय, क्लेश देने से पुरुष को भी सुख–दुःख, भय, क्लेश प्राप्त होते हैं। इस कारण से शुभ कर्म करने वाले ही धनाढ्य होते हैं। पृथ्वी एक ही है फिर भी उसमें अलग–अलग बीज बोने से अलग–अलग पेड़, पत्र, पुष्प, फल उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार बुद्धि एक है फिर भी उसमें पूर्व किये कर्म के अलग–अलग संस्कार रूप बीज बोने से वे अलग–अलग फल देने वाली होती है। किसी का अनिष्ट चिन्तन नहीं कर, रागद्वेष के बिना सभी प्राणी पर समबुद्धि रख जो सभी प्राणी को सुख उत्पन्न करने वाले परमधर्म का आचार करते हैं वही सुखी होते हैं। जो कर्म अन्य पुरुष हमारे प्रति न करें ऐसी हम इच्छा करते हैं, वैसे कर्म हमें भी अन्य के प्रति नहीं करने चाहिए, यही परमधर्म है। सभी प्राणी को जैसे मनुष्य अभय देते हैं वही अभय होता है। अभयदान के जैसा और कोई ऐश्वर्य नहीं।

सकाम बुद्धि से किये हुए कर्म वह एक प्रकार से लाभ करते हैं। निष्काम बुंद्धि से कर्म करने से शुभ कर्म के परिणाम तो आते ही हैं। जो मुनष्य फल की आशा से आम का वृक्ष नहीं बोता उसे आम की इच्छा नहीं होने के बावजूद आम की
CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शीतल छाया तथा सुगंध मिलती है उसी प्रकार अन्तःकरण की शुद्धि के लिए किये हुए निष्काम कर्म से भी पुरुष को अन्य फल की प्राप्ति होती है। फल का त्याग करके किये हुए कर्म भी ईश्वर को अर्पण करने चाहिए।

स्वय के किए हुए कर्म स्वयं को ही भुगतने पड़ते हैं। इससे प्रत्येक मनुष्य को स्वयं शुभ कर्म करना, न्याय से प्राप्त हुए धन से न्याय से ही उसकी वृद्धि करना। कर्म करने के लिए भी अधर्म से धन सम्पादन न करना, अपनी शक्ति के अनुसार अन्न जल का दान करने से भी मनुष्य की मुक्ति होती है। न्याय से प्राप्त की हुई एक पाई का दान भी अधर्म से किये हुए हजारों और लाखों के दान से भी विशेष फल देता है।

मनुष्य का शरीर जिस–जिस स्थान में मरण पाता है उस–उस स्थान का स्वभाव उसमें दिखता है। वैसे मनुष्य को उसके कर्म के फल भी उस स्थान के स्वभाव के अनुसार मिलते हैं। आकाश में जैसे महान मेघ भ्रमण करते हैं उस प्रकार मनुष्य का यातना शरीर भी अपनी वासना से लिपट वासना के क्षय होने तक घूमा करता है।

सद्पात्र को दिया हुआ दान और किया हुआ तप कभी नाश नहीं होता। सत्कर्म का स्वभाव ही सतरूप फल देने का है। इस प्रकार अधर्म भी उसके आचरण करने वाले को दुखरूप परिणाम दिए बिना नहीं छोड़ता। आत्मदर्शी पुरुषों को कर्म का अभिमान न होने से फल भुगतने नहीं पड़ते। जो पुरुष आसक्तिरहित धर्म कार्य करते हैं उसका धर्मरूप सेतु टूटता नहीं, परंतु उसके तप की वृद्धि होती है। जैसे तेल को अलग–अलग पुष्प की भावना देने से, तेल में उस–उस पुष्प की सुगंध आती है, उस प्रकार मन रूप तेल को सत्शास्त्र के विचार रूप सुगंध पुष्प की भावना देने से, सत्वगुण की वृद्धि होती है। पुरुष मन से ही संसार खड़ा करता है। इस कल्पित किये हुए संसार की निवृत्ति भी मन से ही होती है।

मनुष्य की बुद्धि उसके कर्म के अनुसार होती है। उसके कर्म के अनुसार मनुष्य को योग्य स्त्री, पुरुष, पुत्र आदि अपने–आप आ मिलते हैं। सभी प्राणियों के शुभ या अशुभ भी मन से ही उत्पन्न होते हैं। इस कारण से प्रत्येक मनुष्य को अशुभ संकल्पों का त्याग कर हमेशा सभी प्राणियों का शुभचिन्तन करना चाहिए क्योंकि अनिष्ट में से मन विराम पाता है, इन्द्रियाँ उसे अपने–आप अनिष्ट प्रवृत्ति में से विराम दिलाती है। मन का विराम इन्द्रियों का विराम है क्योंकि मन इन्द्रियों का स्वामी हैं।

धर्म ही वास्तविक धन है। धर्म रूप धन को राजा का या चोर का भय नहीं होता। यह धन उसके मालिक के, कर्ता के साथ मरने के बाद जाता है। इस दुनिया में किये हुए धर्मरूप धन से मनुष्य मरण के बाद भी पोषण पा सकता है। जैसे एक बछड़ा हजारों गायों में से अपनी माँ को ढूँढ निकालता है, उसी के पास जाता है उसी प्रकार मनुष्य के किये हुए शुभाशुभ कर्म उसके कर्ता को ढूँढकर कर्मफल की प्राप्ति कराते हैं।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जैसे रेशम का कीड़ा अपने ही शरीर में से बहुत तन्तु निकालकर उन्हीं तन्तुओं से लिपट जाता है और बँधा जाता है पर समझता नहीं कि मैं बँधा जा रहा हूँ उसी प्रकार मनुष्य भी अपने शरीर में से पुत्र आदि राग–बन्धन उत्पन्न करके उसी में बँधता है परन्तु समझता नहीं कि अपना दुःख स्वयं मैं ही खड़ा कर रहा हूँ। त्याग करने से इन सभी बन्धनों में से मनुष्य अलग होता है।

धर्म की एक भी क्रिया निष्फल नहीं जाती। चार वर्ण और चार आश्रम हैं। उसमें से किसी आश्रम में, किसी भी वर्ण में वह धर्म का आचरण किया हो तो वह निष्फल नहीं जाता। धर्म के द्वार बहुत हैं उसमें से किसी भी द्वार से अन्दर जाने से मनुष्य को मोक्ष मिलता है। सभी आश्रमों में स्वर्ग और मोक्ष रहा है। जिस–जिस धर्म पर रुचि और निश्चय करते हैं, उस–उस धर्म के आचरण से वे स्वर्ग और मोक्ष दोनों पाते हैं।

दुनिया में जन्म लिये हुए प्रत्येक मनुष्य को अपना तथा अपने कुटुम्ब का भरण पोषण करने के लिए कुछ उद्यम करना पड़ता है। अपनी आजीविका चलाने में अन्य प्राणियों को कम से कम उपद्रव हो यह देखने की विशेष जरूरत है। प्रत्येक मनुष्य को अपने कुटुम्ब के लिए जितना जरूरी हो उतना ही द्रव्य रखना चाहिए, यदि जरूरत से अधिक विशेष धन प्राप्त होता है तो उसका यज्ञार्थ, लोक कल्याण के लिए खर्च करना चाहिए। मनुष्य ने कितना धन पैदा किया उससे अधिक किस तरीके से पैदा किया हो यह समाज के लिए तथा उसके लिए बहुत उपयोगी है। न्याय से तथा सन्मार्ग से सम्पादन किया हुआ थोड़े से थोड़ा धन भी अन्याय से उपार्जन किये हुए लाखों रुपए से भी विशेष उपयोगी, उन्नतिकारक और उसके मालिक को विशेष सुख देने वाला है। इस बात के महाभारत में अनेक दृष्टांत हैं, इन सबमें से केवल दो दृष्टांतों की तरफ दृष्टिपात करने की जरूरत है।

शान्ति पर्व के अन्त के भाग में एक उच्छवृत्ति से अपनी आजीविका चलाने वाले ब्राह्मण का उदाहरण है। यह ब्राह्मण गृहस्थाश्रमी था; उसे लगा कि स्वर्ग पाने के बहुत रास्ते हैं उसमें से कौन–सा मार्ग अच्छा होगा, इस शंका का निवारण करने के लए वह पद्मनाभ नाम के नाग के घर जाता है। ब्राह्मण नाग के घर गया तब नाग सूर्यलोक में गया हुआ था। नाग के आने के बाद ब्राह्मण ने नाग से कहा कि मैं गृहस्थाश्रमी हूँ परन्तु उसके दोष देखने से गृहस्थाश्रम की तरफ मन से विरक्त हूँ, इसलिए मेरे से आसानी से आचरण किया जा सके और मुझे उत्तम लोक की प्राप्ति हो वैसा धर्म कहो।

नाग ने कहा–जब मैं सूर्यलोक में था तब मैंने एक आश्चर्य देखा। सूर्यलोक में हमने सूर्य के जैसा ही एक तेजस्वी महापुरुष देखा। उसको देखते ही भगवान सूर्यनारायण खड़े हो गये और उसका सत्कार किया। इन दोनों का समागम हुआ तब हमें ऐसा लगा हम पूछते थे कि वास्तविक सूर्यनारायण वे हैं या जो नये आये हैं वे हैं, ऐसे आश्चर्य से मैंने पूछा कि स्वर्ग को भी भेदकर अन्य सूर्य के समान महान तेजस्वी यह कौन देव है ? नाग के इस सवाल के जवाब में उत्तर मिला

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कि यह देव नहीं, असुर नहीं, ऋषि या महर्षि नहीं परंतु उच्चवृत्ति से सिद्ध हुआ मुनि है। यह मुनि केवल फल तथा पत्तों का आहार कर रहते थे और अपनी जीवन निर्वाह के लिये किसी भी प्रकार का असत्य आचरण नहीं करते थे। यह मुनि हमेशा त्यागी थे। इच्छा, कामना, स्पृहा आदि और हमेशा शिलोच्छ वृत्ति से अपना निर्वाह चलाकर प्राणिमात्र के कल्याण में उत्सुक थे। निर्दोष जीवन व्यवहार चलाकर किसी भी प्रकार का महान तप या यज्ञादि के बिना भी कितनी उत्तम गति मिलती है उसका यह दृष्टांत है।

इस प्रकार का दूसरा दृष्टांत अश्वमेघ पर्व में अश्वमेध की समाप्ति के बाद आता है। युधिष्ठिर ने अश्वमेघ यज्ञ करके ब्राह्मणों को पहले दक्षिणा दी, उनको संतुष्ट किया। इस यज्ञ के हो जाने के बाद आधे सोने के शरीर वाला एक नेवला आया। सब इकट्ठे हुए राजाओं से नेवले ने कहा कि उच्चवृत्ति से जीने वाले एक ब्राह्मण ने एक सेर जौ के आटे से यज्ञ किया था, यह अश्वमेध उसके बराबर भी नही आ सकता।

नेवले की ऐसी विचित्र बात सुन उन सबने एक सेर जौ के आटे से यज्ञ करने वाले उस ब्राह्मण की कथा पूँछी। नेवले ने कहा कि कुरुक्षेत्र नाम के धर्मक्षेत्र में जैसे कबूतर दाना चुग कर खाते हैं उसी प्रकार दाना लाकर उच्चवृत्ति से अपनी आजीविका चलाने वाला एक कपोती नाम का ब्राह्मण था। इस ब्राह्मण को उसके स्त्री, पुत्र और पुत्रवधू थे। एक समय दुष्काल पड़ने पर ६–७ दिन तक उनको कुछ भी खाना नहीं मिला। सातवें दिन एक सेर जौ के दाने बीनकर लाया, उसका आटा बनाकर कपोती जैसे ही खाना खाने बैठता है उतने में एक अतिथि आया और अन्न की माँग की। कपोती ने 'अन्नभोग' का अपना भाग दिया परंतु वैसा करने से भी अतिथि के भूख की तृप्ति नहीं हुई; कपोती की स्त्री, पुत्र तथा पुत्रवधू सबकी भूख से मरने की हालत होने के बावजूद भी मृत्यु की परवाह न करके हर एक ने अतिथि को अपने भाग का जौ का आटा दिया। अतिथि बहुत ही संतुष्ट हुआ।

अतिथि ने कपोती से कहा–न्याय से प्राप्त शुद्ध और अपनी शक्ति के अनुसार, धर्म के अनुसार दिये हुए दान से स्वर्ग में रहने वाले देव भी खुश होते हैं और ऐसे दान देने वाले गृहस्थ की स्तुति करके उसने उस पर पुष्पवृष्टि की। हे कपोती! ब्रह्मलोक में बसने वाले ब्रह्मऋषि भी तेरे दर्शन की आकांक्षा रखते हैं इसलिए तू स्वर्ग में जा। शुद्ध मन से और आपत्ति में दान देने वाले अपने सत्कर्म से स्वर्ग भी जीत लेते हैं।

स्वर्ग का द्वार बहुत सूक्ष्म है इसलिए सामान्य मनुष्य की बुद्धि से वह दिखता नहीं। स्वर्ग का यह द्वार लोभ, राग और क्रोध से ढँका हुआ बंद होता है। लोभ, राग और क्रोध जब तक मनुष्य में रहते हैं तब तक वह स्वर्गद्वार में दाखिल नहीं हो सकता परंतु जिन्होंने क्रोध को जीत इन्द्रिय निग्रह किया है वैसे मनुष्य यथाशक्ति दान देने से स्वर्ग में जा सकते हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हजार देने की शक्ति वाला सौ, सौ देने की शक्ति वाला दस और जिसके पास देने को कुछ नहीं, तो वह जल की एक बूँद भी दे तो भी उन सबको एक सरीखा ही फल मिलता है। रन्तिदेव राजा जब भिखारी हो गये और उनके पास देने को कुछ न रहा तब केवल जल के बूँद के दान से ही वे स्वर्गलोक से भी उत्तम लोक को प्राप्त हुए। हे भाई ! बड़े–बड़े दान देने से कोई परमात्मा प्रसन्न नहीं होता। सूक्ष्म, स्वल्प, कम कीमत, कुछ ही कीमत का भी परंतु न्याय से प्राप्त शुद्ध और श्रद्धा से किए हुए पवित्र दान से ही परमेश्वर प्रसन्न होते हैं। ऐसे लोग स्वर्ग में जाकर वहाँ लम्बे समय तक उत्तम वैभव भोगते हैं। न्याय से सम्पादन किये हुए धन के दान से जो लाभ मिलता है वह बड़े यज्ञ करने से भी नहीं मिलता। बड़े अश्वमेघ यज्ञ करने से युधिष्ठिर राजा को जो फल प्राप्त नहीं हुआ था वह फल एक सेर जौ के यज्ञ करने वाले को मिला। न्याय से पैदा किये हुए द्रव्य का अद्भुत सामर्थ्य का यह एक उत्तम दृष्टांत है।

महाभारत में ऐसे अनेक दृष्टांत हैं। यह ग्रन्थ लम्बा है परंतु उसमें कुछ एक उदाहरणों से धर्म का बोध देने के उपरान्त दुनिया की कोई भी नवल कथा से अधिक वाचक का, पाठक का दिव्य विशेष रंजन करे वैसा है। इस प्रकार महाभारत में ज्ञान के साथ मनोरंजन भी बहुत है। मनुष्य को उच्च प्रकार का ज्ञान बहुत सरलता से तथा रसिक लगे वैसी रीति से इस ग्रन्थ में दिया गया है।

योगवासिष्ठ महारामायण

यह एक महान और उत्तम ग्रन्थ है। उत्तर हिन्दुस्तान में इसका बहुत अच्छा अभ्यास हुआ है। गुजरात में यह ग्रन्थ बहुत प्रचलित नहीं। ग्रन्थ बहुत लम्बा है फिर भी बहुत उपयोगी है।

वैराग्य, मुमुक्षु, उत्पत्ति, स्थिति, उपश्रम और निर्वाण–ऐसे छः प्रकरण इस ग्रन्थ के हैं। पूरा ग्रन्थ पढ़ न पाये तो पहला प्रकरण पढ़ने से भी बहुत लाभ होता है।

मनुष्य, (Inner Self) और बाहर की दुनिया को जोड़ने वाला मन, चित्त, अन्तःकरण है। मन के संकल्प से ही यह दुनिया मनुष्य के लिए खड़ी होती है और प्रत्येक मनुष्य के संकल्प के अनुसार ही उसकी दुनिया होती है। संकल्प से उत्पन्न हुए दुःख या दुनिया का नाश संकल्प से ही होता है। इस कारण से प्रत्येक धर्म में मनोनिग्रह, अन्तःकरण की वृत्ति के निरोधरूप योग आदि की जरूरत दर्शायी गयी है।

योगवासिष्ठ में मन का, उसके स्वरूप का, तथा उसके निग्रह का बहुत बारीकी से विचार किया गया है। सृष्टि के सूक्ष्म तत्व के विषय में भी बहुत अच्छा वर्णन है परंतु बहुत उच्चकोटि के अभ्यास के बिना सामान्य मनुष्य को सरलता से समझ में आ सके वैसा नहीं है। मन, मनोनिग्रह आदि विषय कर्मयोगी के लिए बहुत महत्व के हैं।

योगवासिष्ठ का प्रथम प्रकरण वैराग्य प्रकरण है। श्री रामचन्द्रजी तीर्थयात्रा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
करके वापस आते हैं। तीर्थयात्रा करने के बाद भी उनके जीव को शान्ति नहीं मिलती। शत्रु में, अपने देह में, मित्र में, राज्य में रामचन्द्रजी का दिल नहीं लगता। इस दुनिया के किसी भी पदार्थ से उनको सुख तथा शान्ति नहीं मिलती। राम को शान्ति देने के लिए गुरु वसिष्ठ ने जो बोध दिया, वही यह योगवसिष्ठ ग्रन्थ है। चित्त के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि राग और द्वेष आदि दोषों से चित्त जर्जर हो जाता है और जैसे तिनके का एक टुकड़ा हवा में इधर–उधर घूमा करता है वैसे चित्त विषयों में घूमा करता है। जैसे पक्षी मांस के ऊपर तेजी से झपटते हैं वैसे चित्त भी विषय की तरफ दौड़ता जाता है। जैसे छोटा बालक बहुत दिन के अभ्यास को एक खिलौने की लालच में छोड़ देता है वैसे ही चित्त भी एकाध विषय मांग की आदत से बहुत प्रकार के शुभ कार्य भी छोड़ देता है। चित्त का निग्रह करना मेरू पर्वत को हटाने से भी अधिक दुष्कर है। जगत चित्त से ही उत्पन्न होता है और चित्त के क्षीण होने से जगत क्षीण होता है, ऐसे चित्त को जीतना ही बड़ी से बड़ी जीत है।

जैसे चुहिया सितार के तार को काट डालती है वैसे ही तृष्णा, विवेक वैराग्य रूप तार को काट डालती है। तृष्णा देखने वाले मनुष्य को भी अन्धा बनाती है। संसार सम्बन्धी सभी दोषों में एक तृष्णा ही बड़ा दुःख है। जैसे एक डोरी से बहुत पशु बंधते हैं वैसे एक तृष्णा के तन्तु से यह सकल जगत बँधा हुआ है। तृष्णा का पाश तलवार की धार से भी अधिक तीव्र और दुखकर है। विवेक से तृष्णा का त्याग किया जा सकता है।

मैं देह नही, देह का मैं नहीं और देह मेरा नहीं। पाल पोष के बड़ा किया हुआ यह शरीर बिना यत्न किए ही आखिर में दुर्बल हो, पेड़ पर से जैसे पत्ता गिर पड़ता है वैसे नाश होता है। आकाश लय होता है, पृथ्वी में प्रलय होती है, समुद्र सूख जाता है, तारे और नक्षत्रमण्डल बिखर जाते हैं ध्रुव भी चलित होता है, देवता लोग भी मारे जाते हैं तो फिर शरीर का क्या विश्वास ? ऐसे क्षणभंगुर शरीर के क्षणिक सुख के लिए यह सब क्या झमेला है?

संसार और उसके पदार्थ अनिश्चित हैं तब ऐसा कौन सा स्थान है और कौन सा ऐसा कर्म है जो करने से शोक न रहे, हमेशा के लिए शान्ति हो?

मैं अन्तःकरण में पूर्ण संतोष पाऊँ फिर शोक न करूँ और सम्पूर्ण शान्ति पाऊँ वैसा कौन सा उपाय है ? भगवान रामचन्द्रजी की यह मानसिक स्थिति साधु पुरुषों की मन की वांछना जैसी है। ऐसी मानसिक स्थिति को योगवासिष्ठ से ही सम्पूर्ण शान्ति मिली थी।

जगत की स्थिति मन से बने महल जैसी है। प्रत्येक मनुष्य का जगत उसके अन्दर की वासना के अनुसार तैयार होता है। मरने के समय दृश्य पदार्थ जिस वासना में लय हुए होते हैं वे मरने वाले की वासना अनुसार फिर अलग–अलग प्रकट होते हैं। जो प्राणी जिस देश में मरता है उसी देश में वह ब्रह्मांड को देखता है। इस चित्तरूपी लिंग शरीर को अतिवाहिक देह कहा जाता है, इस प्रकार का
CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लिग शरीर अपने कर्मानुसार, वासना के अनुसार, अपनी कल्पना के अनुसार अपने हृदय में पूरे ब्रह्मांड को देखता है।

कर्म–पुरुषार्थ के सम्बंध में कहा है कि जरा भी आलस्य किये बिना उद्योग और पुरुषार्थ करने से पुरुष को सब मिलता है। महात्माओं के बताये हुए मार्ग से शरीर, इन्द्रिय तथा मन से मेहनत करने में आये वही पुरुषार्थ है। ऐसे उद्योग ही सफल होते हैं। शास्त्र और नीति नियम के विरुद्ध का उद्योग सुख देने के बदले केवल दुःख ही उत्पन्न करते हैं।

पूर्वजन्म के पुरुषार्थ इस जन्म के प्रारब्ध हैं। इस जन्म के प्रबल पुरुषार्थ से ही पूर्वजन्म के अनिष्ट प्रारब्ध भी जीते जा सकते हैं। जैसे कल किये हुए भोजन से अन्न के अजीर्ण रूप दुःख का आज किये हुए उपवास से नाश होता है उसी प्रकार इस जन्म में किये हुए पुरुषार्थों से ही पूर्वजन्म के अनिष्ट प्रारब्धों का नाश किया जा सकता है। शुभ उद्योग करने से शुभ फल मिलता है, अशुभ कर्म करने से अशुभ फल मिलते हैं। ऐसी व्यवस्था है तो फिर दैव को स्थान कहाँ है? जैसे भारी यत्न करने से भी पत्थर में से तेल नहीं निकलता वैसे ही अथक मेहनत करने के बाद भी विषयों में से वास्तविक सुख नहीं मिलता । सत्पुरुष क्षुद्र विषय भोग की लालसा से–सकाम बुद्धि से कर्म नहीं करते।

आलस्य के कारण ही जगत में बहुत मनुष्य दुखी, दरिद्र और पशु जैसे अज्ञानी रहते हैं। आलस्य जैसा महान अनर्थ जो इस जगत में न हो तो कौन सा पुरुष धनवान और पण्डित न बनता? उद्योग को दैव मानो कारण कि दैव यानी पूर्वजन्म में किये हुए कर्म–पुरुषार्थ–उद्योग।

उद्योग–पुरुषार्थ नहीं करके केवल दैव पर आधार रखने वाला मनुष्य अपना शत्रु स्वयं ही बनता है, अपने धर्म, अर्थ और काम का नाश करता है। प्रत्येक मनुष्य में पुरुषार्थ का अंकुरण होते ही वह पुरुषार्थ सिद्धि करने के साधनो की शोध करता है। साधनों की इच्छा से मन में प्रवृत्ति होती है, प्रवृत्त हुआ मन इन्द्रियों को प्रेरित करता है, प्रेरित हुई इन्द्रियाँ पुरुषार्थ कर फल सिद्ध करती है। जो भोजन करता है वही तृप्त होता है दूसरों की भूख नहीं मिटती। जो चलता है वही इच्छित स्थान को प्राप्त होता है, खड़ा रहने वाला मनुष्य वैसे स्थान को प्राप्त नहीं करता। इस कारण से जो पुरुषार्थ करते हैं उन्हें ही सुख की प्राप्ति होती है अन्य को नही।

दैव में कोई जात नहीं, कर्मगति या पराक्रम नहीं तो फिर दैव क्या चीज है? दैव एक प्रकार की भ्रान्ति है। इस प्रकार होने से प्रत्येक मनुष्य को शुभ कर्म रूप पुरुषार्थ अवश्य करना चाहिए।

वासनारूपी नदी शुभ और अशुभ दोनों मार्ग से बहती है। अशुभ मार्ग में से उसका बहाव रोकने से वह शुभ मार्ग पर ही बहेगी। प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करके और बल का उपयोग करके भी चित्तवृत्तिरूपी वासना नदी को शुभ प्रवृत्ति में लगाने का रोज और प्रत्येक क्षण अभ्यास करने से साधक बहुत आगे बढ़ता है। शुभ आचरण

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
से–सदाचार से शुभ वासना मे वृद्धि होती है। सम, सुविचार, संतोष, सत्संग से और सत्शास्त्र के विचार से वासना उच्चगामी होती हैं।

सदविचार–अच्छे विचार अब आध्यात्मिक क्षेत्र में बहुत उपयोगी हैं। विचार रूपी दिये से अज्ञानमय अन्धकार का नाश होता है। विचार कल्पवृक्ष है, मोक्ष विचार रूपी कल्पवृक्ष का फल है। जैसे तुम्बड़ से मनुष्य पानी में नहीं डूबता वैसे सुविचार रूप तुम्बड़ का आश्रय करने से मनुष्य विपत्ति के दुःख में भी डूबता नहीं। जगत के सभी भोग अविचारी को ही अच्छे लगते हैं। मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाना है? ऐसे विचार वाले मनुष्य विषय–भोग में नहीं फँसते। तत्वज्ञान से और उसके विचारों से सभी दुःख दूर होते हैं।

विचार के बाद दूसरा सोपान आचरण का है। सदाचार से मनुष्य में ज्ञान बढ़ता है और ज्ञान से सदाचार में दृढ़ श्रद्धा उत्पन्न होती है। जब तक ज्ञान और सदाचार का अभ्यास बराबर न हो जाय वहाँ तक कोई भी क्रिया सिद्ध नहीं होती। तृष्णारहित होकर ज्ञान और सदाचार का अभ्यास करने से मनुष्य को परमानन्द की प्राप्ति होती है।

जैसे बीज के अन्दर छिपा अंकुर समय होते बाहर आता है उसी प्रकार मन के अन्दर रही हुई जगत भ्रान्तिरूप कारण होते ही देहरूप अंकुर को बाहर लाता है। ब्रह्मा मन का रूप है, मन ब्रह्मा का रूप नहीं। मन की कल्पना के अनुसार ही बाह्य सृष्टि उत्पन्न होती है। इस प्रकार होने से जगत को मन से अलग कर सकें वैसा नहीं। जैसा मन वैसा जगत, जैसी वासना वैसा संसार। मन और वासनाओं का निरोध करने या नाश होने से संसार का जगत का भी निरोध और नाश होता है। मन अपनी वासना के अनुसार स्थूल देह की कल्पना करता है और लम्बे काल की वृद्धि पायी हुई भावनाओं से ही इन्द्रजाल जैसा यह संसार उत्पन्न होता है। लोक और शास्त्र के विरुद्ध न हो वैसी निर्दोष आजीविका से जो कुछ मिले उसमें संतोष रख, भोग की लालसा का त्याग कर, योग्य उद्योग कर, भविष्य में क्या होगा वैसी गलत चिन्ताओं का त्याग कर सत्पुरुषों के समागम में तत्पर रहने वाले मनुष्य को जल्दी से मोक्ष मिलता है।

जगत में भी ब्रह्मबुद्धि रखने में आये तो उसका जगतपन–बंधनशक्ति–दुःख चला जाता है। ब्रह्म में भी जगतबुद्धि करने में आये तो वह जगतरूप होकर बंधन प्राप्त कराता है। अज्ञान का अभाव या जगत का अत्यन्त विस्मरण ही मोक्ष है।

योगवसिष्ठ में सरस्वती और लीला का एक उत्तम संवाद है। लीला नाम की एक स्त्री अपने मृत पति के पास खुद को ले जाने की देवी सरस्वती से माँग करती है। सरस्वती उस स्त्री को अपने स्थूल देह की भावना को छोड़ने को बताती है और कहती है कि तेरे स्थूल देह से तो तेरे स्थूल काम में भी नहीं पहुँचा जा सकता तो फिर सूक्ष्म सृष्टि के नगर में जो बहुत ही दूर है वहाँ कैसे पहुँचा जाएगा? अपने भौतिक देह का अभिमान छोड़ तू लिंग शरीर रूप हो तो ही पूर्व सृष्टि को तू देख

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सकती है। संकल्प रूप हुए बिना संकल्पित स्थिति को या वस्तु को नहीं पाया जाता। यह स्थूल देह भी वास्तविक रीति से मनोमय है। लम्बे समय की पंचभूत की भावना से वह पंचभूतात्मक होती है। तेरा देह मनोमय होने के बावजूद इस प्रकार स्थूल हुआ है। समाधि के अभ्यास से जब तेरी वासना अल्प हो जाएगी तब तेरा लिंग शरीर सृष्टि के किसी भी प्रदेश में जा सकेगा। वासनाओं को क्षीण करने का सतत अभ्यास करना ही जीवनमुक्ति का साधन है। इस प्रकार लीला को उपदेश दे लीला को सूक्ष्म देह से पूरे ब्रह्मांड का दर्शन कराया गया। लीला प्रत्येक ब्रह्मांड में घूमती है और वह प्रत्येक सृष्टि का अवलोकन करती है।

हर एक प्राणी का चित्त अपने अनुकूल जगत उत्पन्न करने की शक्ति रखता है। इस विश्व में जितने चित्त हैं उन हर एक का अलग जगत है। चित्तरूप आकाश सब प्रदेशों में सूक्ष्म देह–अतिवाहिक देह ऐसे प्रत्येक देश में जा सकते हैं।

इस दुनिया में सभी जगह सभी प्रकार की सिद्धियाँ तथा शक्तियाँ स्थित है परंतु मनुष्य अपनी वासना तथा संकल्प बल से जिस शक्ति का विकास करता है उस– उस स्थल से वैसे प्रकार की शक्ति का आविर्भाव होता है।

जीव के कर्मानुसार, मरण के बाद प्रत्येक जीव की कैसी स्थिति होती है उसका वर्णन योगवशिष्ठ में कई जगह दिया है। उत्पत्ति प्रकरण के ५५वें सर्ग में मनुष्य के पुण्य–पाप के अनुसार उसका वर्गीकरण किया गया है और प्रत्येक वर्ग की मरण के पश्चात कैसी स्थित होती है उसका बहुत अच्छा वर्णन दिया है।

मरण के समय देह शवरूप होता है, प्राणवायु महावायु में मिल जाता है। पुनर्जन्म बीजरूप वासना वाला चैतन्य का अणु जीव कहलाता है। यह जीव जब तक शव के गृहाकाश में रहता है तब तक वे प्रेत कहलाते हैं। मरण की मूर्च्छा शान्त होने के बाद मृत मनुष्य अपना नया शरीर देखता है। यह मृत शरीर आकाश में मेघ की घटा की तरह पूरे ब्रह्माण्ड में अपनी वासना अनुसार घूमा करता है। इस स्थिति में पापी मनुष्यों को नरक के दुःख की जबकि पुण्यवान को दिव्य बाग तथा सुशोभित विमान की प्राप्ति होती है।

देश काल, क्रिया, द्रव्य और संपत्ति इन पाँच वस्तु से भावना प्रबल होती है उससे अन्य भावना दब जाती है। प्रबल हुई भावना–वासना अनुसार मनुष्य की गति होती है। इस कारण से सदाचरण से हमेशा शुभ भावनाओं में वृद्धि करना चाहिए।

प्रत्येक मनुष्य का अतिवाहिक शरीर उसके सत्य संकल्प के अनुसार बनता है। इस शरीर को सामान्य मनुष्य नहीं देख सकता परंतु भौतिक शरीर से यह शरीर बहुत ही प्रबल तथा वेगवान होता है। अतिवाहिक देह प्राणी की वासना अनुसार होता है।

मनुष्य अलग–अलग स्थल में जैसी–जैसी भावना करे वैसा ही उसे अनुभव –होते है। शत्रु में भी मित्र बुद्धि रखने से वह मित्र होता है। निरन्तर के अभ्यास

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से जिन– जिन पदार्थ में जैसी–जैसी भावना रखने में आती है उस अनुसार वे फल देती हैं। दुःखी मनुष्य के दुःख के कारण एक रात्रि भी कल्प के समान लम्बी दिखती है जबकि सुखी मनुष्य को पूरा आयुष्य एक ही क्षण मे व्यतीत हुआ मालूम पड़ता है। एक चित्रकार लकड़ी में मन से जैसे चित्र की कल्पना करता है वैसा आकार उसे दिखायी देता है उसी तरह से इस सृष्टिरूपी लकड़ी मे प्रत्येक मनुष्य अपनी भावना के अनुसार चित्र–प्राणी–पदार्थ को देखते हैं।

अभिलाषा का–तृष्णा का त्याग कर, संग मात्र (Attachment) को दूर करने से और कर्मानुसार जो पदार्थ प्राप्त होते हैं उन्हें संतोषपूर्वक ग्रहण करने से तथा नाश हो, उसका शोक न करने से मनुष्य को मोक्ष मिलता है।

समुद्र के शान्त जल में पवन के वेग से जैसे तरगें उत्पन्न होती हैं उसी प्रकार चैतन्य रूप समुद्र के जल में वासनारूपी पवन से तरंग रूप जीव तथा सृष्टि रूप पानी के बुलबुले उत्पन्न होते हैं। आत्मा के विषय में संवेदन के कारण यह जगत प्रतिबिम्ब रूप दिखता है। चैतन्य रूप बीज में से जीव, चित्त तथा मन की कल्पना से यह सृष्टि उत्पन्न हुई है। यह जगत मन की भावना से उत्पन्न हुआ है और मन की भावना के नाश से ही उसका नाश होता है। मन के मनन से ही ये तीनों जगत उत्पन्न हुए हैं। रागद्वेष से रंगा हुआ चित्त ही संसार है। रागद्वेष रूप चित्त के मल का नाश ही अन्तःकरण की निर्मलता यानी मोक्ष है।

शुभ कर्म से सामान्य मनुष्य को भी प्राप्त न हो ऐसी कोई वस्तु नहीं है। प्रत्येक मनुष्य के पंचभूतात्मक तथा मनोमय ऐसे दो शरीर हैं। शाप, अभिचार या मंत्र से भौतिक देह का नाश होता है मनोमय देह का नहीं। जिस मन के विचार हमेशा पवित्र हैं उसे कोई भी शाप दुखित नहीं कर सकता। मनरूपी देह से मनुष्य जो प्रयत्न करता है वह सिद्ध होता है। माण्डव्य ऋषि को कुँए में डाला वहाँ भी उन्होंने मानसिक यज्ञ करके उस यज्ञ का फल प्राप्त किया। प्रत्येक मनुष्य को अपने मन के पुरुषार्थ से अपने मन को सदाचार में जोड़ना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य की प्रत्येक शुभेच्छा फलीभूत होती है। खराब संकल्प से, कुकल्पना से मनुष्य स्वयं ही अपने शरीर पर कुल्हाड़ी का प्रहार करता है।

मन ही पुरुष है परंतु यह देह पुरुष नहीं हैं। मन से जो कर्म किया जाता है उसे ही कर्म करना कहा जाता है। मन से जिसका त्याग होता है वही वास्तविक त्याग है, ऐसा कहा जाता है। जिस मनुष्य का मन मोहित होता है उसे ही मूढ़ कहते हैं परंतु मन बिना शव को कोई मूढ़ नहीं कहता है। मन देखता है तब नेत्र, सुनता है तब कान, सूँघता है तब नाक, स्वाद लेता है तब जीभ, इस तरह मन ही प्रत्येक इन्द्रिय है। जैसे माला की डोरी निकाल लेने से सब मोती अलग हो जाते हैं वैसे ही इस शरीर की तमाम इन्द्रियरूप मोतियों में से मन रूप डोरा निकाल लेने से वे कुछ नहीं कर सकतीं। इतना ही नहीं अपना अस्तित्व भी खो बैठती हैं जैसे तिल को दबाने से तेल दिखता है वैसे ही मन के मनन से सुख–दुःख स्पष्ट दिखते हैं। मन को नियम में रखने से, मनोनिग्रह करने से सभी दुःख दूर होते

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं और मनुष्य कां शान्ति मिलती है।

चंचलता ही मन का धर्म है। स्पंदन के बिना जैसे वायु की सत्ता नहीं वैसे चंचलता के बिना मन का बल नहीं। मन की चंचलता वासना के अधीन है। विवेक ज्ञान से, वासना का क्षय होने से मनोनिग्रह हो सकता है। मन का निग्रह करने में केवल मन ही समर्थ है, मन के सिवा अन्य किसी भी तत्त्व से मनोनिग्रह नहीं होता है। पुरुष के प्रयत्न से मन जिस वस्तु का चिन्तन करता है उस विषय को पाता है और इस प्रकार का बारम्बार अभ्यास होने से मन उसी रूप में परिवर्तित होता है। इस कारण से शुभ चिन्तन करके मुनष्य चिन्तित विषय को प्राप्त करते हैं और उस चिन्तन के बार–बार अभ्यास से पुरुष चिन्तित वस्तु रूप होता है । मनुष्य के स्थूल देह में मन की भावना के चिन्तन के अनुसार परिवर्तन होता है। मन की इतनी सामर्थ्य होने से मनुष्य को हमेशा प्रत्येक प्राणी का शुभचिन्तन करना चाहिए।

वैराग्यपूर्वक किया हुआ विचार सफल होता है परंतु कामबुद्धि से रागी मनुष्य के किये हुए विचार सफल नहीं होते। जैसे–जैसे मनुष्य की रागबुद्धि संसार में से कम होती जाती है वैसे–वैसे मनुष्य को संकल्पसिद्धि प्राप्त होती जाती है। रागबुद्धि कम करने के लिए मनुष्य को एक के बाद एक इन्द्रिय को जीत इन्द्रियनिग्रह करने की जरूरत है। इन्द्रिय निग्रह से मनुष्य में सार असार का विवेक ज्ञान उत्पन्न होता है। विवेक ज्ञान संपन्न मनुष्य पतितपावन जैसा यानी स्वयं मुक्त होकर अन्य को भी मुक्त करने की शक्तिसंपन्न करता है।

मन का बीज कर्म है और कर्म का बीज मन है। जैसे फल और उसकी गंध एक है उसी प्रकार मन और कर्म एक ही है। पूर्वकर्म की वासना के अनुसार मिले हुए देह में ज्ञानेन्द्रियाँ भी पूर्व वासनावत् प्रकट होती है। ऐसी ज्ञानेन्द्रियाँ पूर्वकृत वासना अनुसार अपने–अपने विषयों की तरफ दौड़ती है और कर्मेंद्रियों को उन–उन विषयों की तरफ जाने को प्रेरित करती है। कर्मेन्द्रियाँ ज्ञानेन्द्रियों की इच्छानुसार कर्म करती हैं। ऐसे कर्म से फिर वासना उत्पन्न होती है और इस प्रकार कर्म और वासना का चक्र चला करता है। जब संकल्प का त्याग होता है तभी यह दुखदायक चक्र रुकता है तभी मनुष्य को वास्तविक सुख भी अनुभव होता है।

जैसे हाथी अंकुश से वश किया जाता है वैसे मन को सद्विचार से, विवेक तथा वैराग्य के अभ्यास से वश किया जा सकता है। मन को उसकी माँग के अनुसार पदार्थ देकर लालन–पालन करने से उसे कभी वश नहीं किया जा सकता। मन को जीतने के पहले इन्द्रिय को जीतना पड़ेगा क्योंकि इन्द्रियों द्वारा ही मन सभी काम करता है। इन्द्रियों के निग्रह होने से मनोनिग्रह का काम बहुत आसान हो जाता है। वासना ही मनुष्य को निर्बल बनाती है। वासना के बिना मच्छर भी मेरु पर्वत से भी विशेष सुदृढ़ और बलवान है।

विषयों का त्याग करना बहुत विषम है। विवेक और अच्छे विचार से ही यह दिखने में मुश्किल काम भी सरल होता है। शुभ मति से सौजन्यवृद्धि होती है और

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वैसा होने से मनुष्य के चित्त में धैर्य की वृद्धि होती है। इस प्रकार मन शान्त होता है और मन के शान्त होते ही संकल्प–विकल्प न कर शरीर अपने–आप शान्ति अनुभव करता है।

कर्मो में लिपटना मन की वासनाओं का काम है। ज्ञानी मनुष्य देह से कर्म करता है परंतु अपने मन में वासना नहीं रखने के कारण वह उसमें लिपटता नहीं। देहधारी के लिए कर्म का सम्पूर्ण त्याग शक्य नहीं, इसलिए देह से देह निर्वाह के लिए ही कर्म करने से, मन से वासनाओं का त्याग करने से, निष्काम बुद्धि से कर्म करने से मनुष्य लिपटता नहीं है बँधता नहीं है। आसक्ति से रहित हुए बिना आत्मज्ञान नहीं होता और आत्मज्ञान हुए बिना दुखनिवृत्ति नहीं होती।

पदार्थ की प्राप्ति से मानी हुई संपत्ति ही अन्त में महान विपत्ति बनती है। विवेक और वैराग्य उत्पन्न कर बुद्धि को सन्मार्ग की तरफ मोड़ना ही वास्तविक संपत्ति है। इन्द्रियों के विषयों का भोग कौवे, कुत्ते जैसे प्राणी भी भोगते हैं इनके त्याग करने में ही मनुष्य का मनुष्यत्व है। जिस मनुष्य का तृष्णारूपी ताप खत्म हो गया है उसे तो यह सारा जगत जीवनपर्यन्त हमेशा सुखरूप है। तृष्णा समाप्त हो जाए वही वास्तविक समाधि है। चित्त से सभी पदार्थों में अहंता तथा ममता रूप अभिनिवेश को छोड़ देने वाले मनुष्य के लिए अरण्यवास और गृहस्थाश्रम वह दोनों बराबर हैं। निस्पृही के लिए त्रैलोक्य की लक्ष्मी भी तृणवत है। इस कारण से निस्पृही को तृष्णात्याग से जो महान सुख होता है वैसा सुख मनुष्य को जगत के सभी पदार्थों के प्राप्त होने से भी नहीं होता है।

जिनको इच्छित वस्तु प्राप्त करना है उनके लिए शास्त्र में बतायी पद्धति के अनुसार कर्म करने के अलावा कोई अन्य मार्ग नहीं है। [illegible]कुल अज्ञानी मनुष्य भी अभ्यास से महाज्ञानी होता है। धीरे–धीरे अभ्यास करके प्रयत्न करने से बड़े बड़े पर्वतों को भी चूर किया जाता है। निरन्तर पास रहने से अपना भाई न होते हुए भी वह भाई से भी अधिक विशेष हितचिन्तक हो जाता है। निरन्तर अभ्यास के योग से दुःसाध्य कार्य भी साध्य होते हैं। अभ्यास किए बिना एक सामान्य वस्तु भी मनुष्य को प्राप्त नहीं होती। किया हुआ अभ्यास कभी निष्फल नहीं जाता। अभ्यास वही वास्तविक पुरुषार्थ है। विवेक से उत्पन्न हुए और गीताभ्यास कर्मयोग में दर्शित कर्मों के अभ्यास से, अपने स्वकर्म से मनुष्य को संसिद्धि जैसी महान वस्तु भी सहजता से प्राप्त होती है।

सांप्रत साहित्य

कर्मयोग के सम्बन्ध में सनातन धर्म के प्रमाणभूत ग्रन्थों पर दृष्टिपात करने के पश्चात, सांप्रत साहित्य के महत्व के ग्रन्थों का थोड़ा विहगावलोकन करना जरूरी है। कर्मयोग का विशेष अभ्यास करने वालों के लिए नीचे की पुस्तकें उपयोगी हैं।

पंचदशी

वेदान्त प्रक्रिया का यह मुख्य ग्रन्थ है। इसके कर्ता स्वामी विद्यारण्य जी हैं। पूरे ग्रन्थ में १५ प्रकरण हैं। तत्त्वविवेक नाम के प्रथम प्रकरण में पंचमहाभूत तथा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उसके कार्य की उत्पत्ति, पंचीकरण, पंचकोश तथा लिंग शरीर का वर्णन है। दूसरे प्रकरण में पांच महाभूतों का वर्णन किया गया है। चौथे अध्याय में ईश्वरकृत द्वैत तथा जीवकृत द्वैत का वर्णन है। ये कर्मयोग में आगे बढ़े हुए अभ्यासी के लिए उपयोगी होंगे। इस विषय का काफी अंश सांख्य दर्शन में आ जाता है। वेदान्त दर्शन और सांख्य दर्शन में इस विषय में सर्वांश मे एक जैसा नहीं है परन्तु काफी कुछ विषयों में समान हैं। यह बात पंचदशी पढ़ते समय भूलने की नहीं है।

विचार सागर

दूसरा महत्व का ग्रन्थ विचारसागर है। यह ग्रन्थ हिन्दी में है। निश्चलदास जी नामे साधु द्वारा यह रचित है। ग्रन्थ का नाम विचारसागर होने से उसके प्रकरण को तरंग कहा गया है। इस ग्रन्थ में सात तरंग–प्रकरण है। उसमें शम, दम, आदि षट संपत्ति, मुमुक्षता, विवेक वैराग्य, श्रवण, मनन, निधिध्यासन आदि की व्याख्या तथा वर्णन है।

दूसरे तरंग में कर्म के दो विभाग किये गये हैं विहित कर्म(Prescribed action) और निषिद्ध कर्म। नित्य, नैमित्तिक, कास्य, प्रायश्चित ऐसे विहित कर्म के चार प्रकार हैं। पांचवें तरंग में व्यावहारिक सत्ता, प्रातिभाषिक सत्ता तथा पारमार्थिक सत्ता का विचार किया गया है, वह भी सुन्दर है।

पदार्थ की उत्पत्ति, नाश, प्राप्ति, विकार और निवृत्ति इस प्रकार कर्म के पाँच उपयोग या फल का वर्णन छठें तरंग में किया गया है। सातवें तरंग में संचित प्रारब्ध और आगामी कर्म के विषयों में विचार किया गया है।

श्रीधर्मकल्पद्रुम

यह पुस्तक सात भाग में है। भारत धर्म महामण्डल की तरफ से यह पुस्तक प्रसिद्ध हुई है। इस उत्तम ग्रन्थ के कर्ता स्वामी दयानंद जी महाराज है। सनातन धर्म के तमाम सिद्धान्त इस ग्रन्थ में बहुत अच्छी तरह से समझाये गये हैं; पुस्तक हिन्दी में है। पहले भाग में कर्म और धर्म के सम्बन्ध में बहुत अच्छी पद्धति के अनुसार विचार किया गया है।

धर्मचन्द्रिका

धर्मकल्पद्रुम के साररूप यह पुस्तक है। धर्म विज्ञान तथा धर्माङ्ग निर्णय ये दो प्रकरण कर्मयोग के अभ्यासी के लिए उपयोगी हैं।

शक्तिगीता

पाँचवे अध्याय में जगत को उत्पन्न करने वाले, संस्कार शुद्धि से कर्मशुद्धि, कर्म के संबंध में आकर्षण तथा विकर्षण शक्ति आदि का वर्णन है।

सूर्यगीता

कर्म विभाग निरूपण नाम के चौथे अध्याय में पांच कर्मभूमि का वर्णन, शुद्ध

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और अशुद्ध कर्म का वर्णन है।

विष्णुगीता

कर्मयोग वर्णन नाम के चौथे अध्याय में शुक्ल और कृष्ण कर्म तथा उसके साथ प्रवृत्ति और निवृत्ति का कैसा सम्बन्ध है यह दिखाया गया है। भोग में वृद्धि से तप का क्षय होता है और सदाचार, त्याग से सुख होता है आदि विषयों का इस गीता में वर्णन है।

धीश गीता

धर्म विज्ञान निरूपण नाम के चौथे अध्याय में साधारण धर्म, विशेष धर्म आदि अलग–अलग प्रकार के धर्म–कर्म का विचार किया गया है।

कर्मयोग शास्त्र

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने गीता का गीता रहस्य नाम की टीका लिखी है। कर्मयोग की दृष्टि से पूरी गीता का निरूपण किया है। कर्मयोग का यह उत्तम ग्रन्थ है।

कर्मयोग

अरविन्द घोष नें पूर्णयोग नाम का ग्रन्थ लिखा है उस ग्रन्थ में पहला भाग कर्मयोग है ।

कर्मयोग

स्वामी विवेकानन्द जी ने भी कर्मयोग पर व्याख्यान दिये हैं। यह ग्रन्थ अंग्रेजी में है। ग्रन्थ समान्य मनुष्य के लिये बहुत उपयोगी है।

अनासक्ति योग

महात्मा गांधी ने श्रीमद्भागवदगीता का गुजराती अनुवाद किया है। निष्काम कर्म को महत्व दिया है। नवजीवन प्रकाशन की अन्य पुस्तकों की तरह इसकी भाषा सरल है और सामान्य मनुष्य को भी आसानी से समझ में आ सके वैसी है। पुस्तक बहुत अच्छी है।

वृत्त विचार

महात्मा गांधी जी की लिखी हुई यह छोटी पुस्तक कर्मयोग के अभ्यासी को शुरुआत में उपयोगी है। योग दर्शन में दर्शित अष्टांग योग के पहले दो अंग यम तथा नियम का इस पुस्तक में बहुत अच्छा वर्णन है।

कर्म

थियोसोफिकल सोसायटी की प्रमुख डा० एनी बेसेन्ट की लिखी हुई यह पुस्तक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शुरुआत के अभ्यासी के लिए बहुत उपयोगी है। इसके अलावा इस सोसायटी की तरफ से कर्म के विषय में असंख्य छोटे–बड़े ग्रन्थ प्रसिद्ध हुए हैं।

षटकर्म ग्रन्थ

जैन आचार्य देवेन्द्र सूरी कृत यह ग्रन्थ भी कर्मयोग के अभ्यासी के लिए उपयोगी है। जैन धर्म में कर्म सम्बन्ध में बहुत अच्छा विचार किया गया है। कर्म विपाक सूत्र, कर्मप्रकृति, कर्म ग्रन्थादि विचार आदि इस पुस्तक के विषय हैं।

❑

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पारिभाषिक शब्द

भगवद्गीता में कितने सरल और अति सामान्य दिखने वाले जनव्यवहार में प्रचलित शब्दों का प्रयोग हुआ है। ऐसे शब्द अधिक परिचित होने से सामान्य मनुष्य को तो उसके अर्थ निश्चित करने की आवश्यकता तक नहीं महसूस होती। ऐसे बहुत से शब्दों का गीता में पारिभाषिक रूप में प्रयोग हुआ है। सामान्य मनुष्य और विद्वान भी ऐसे शब्दों का प्रचलित संकुचित अर्थ न लेकर गीता का व्यापक ज्ञान संकुचित न कर लें इस उद्‌देश्य से भगवान वेदव्यास जी ने अनेक महत्वपूर्ण शब्दों की गीता में ही व्याख्या देकर उनके अर्थ स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। गीता पर लिखे अनेक भाष्य पढ़ने पर भी भगवान वेदव्यास ने कुछ एक शब्दों का जो अर्थ किया है और उसके अर्थ को स्पष्ट करने के लिए जिन शब्दों से उसकी व्याख्या तथा उसका वर्णन दिया है, उसको बिना समझे गीता का सही अर्थ समझ में नहीं आ सकता।

गीता में प्रयोग में लाये गये ऐसे तमाम शब्दों को अलग कर उसकी व्याख्या के साथ विचार करना कठिन होने से इस दिशा में बहुत कम प्रयत्न हुए हैं। यह कठिन होने पर भी कर्मयोग को अपना सिद्धान्त बनाकर अपने आचरण में उतारने की अभिलाषा रखने वाले अभ्यासी को ऐसे शब्दों के अर्थो को अलग कर उस पर विचार और मनन किए बिना नहीं चल सकता। ऐसे महत्वपूर्ण शब्दों के गीता में दर्शित अर्थ नीचे दिये गये हैं। ऐसे शब्दों का सही अर्थ समझे बिना उन शब्दों से व्यक्त होने वाले भावों को आचरण में लाना मुश्किल है। शुरुआत के अभ्यासी को मार्गदर्शन मिले इसके लिए कुछ महत्वपूर्ण शब्द नीचे दिए गए हैं:-

योग— १—कर्म करने में कुशलता २—५० योग २—४८ सिद्धि—असिद्धि में समता रखना—

२—हर्ष शोक न करना २—४८ दुःख संयोग का वियोग करावे—सुख को प्राप्त करावे ६—२२।

योगी— कार्य, कर्म, कर्तव्यकर्मो को फल की इच्छा किए बिना कर्तव्य बुद्धि से करने वाला व्यक्ति।

युक्त— जिस मनुष्य ने अपने चित्त—मन पर काबू पा लिया है तथा जो सब प्रकार की कामना, इच्छा, तपस्या से निःस्पृह हो गया है जो फल की आकांक्षा नहीं रखता और जो काम और क्रोध के वेग को शान्त कर सकता है ऐसा व्यक्ति। ५—२३

सन्यास— काम्य कर्म का न्यास वह सन्यास है जो फल मिलने की इच्छा से नहीं, अपितु निष्काम बुद्धि से, स्वधर्म का पालन करने के लिए कर्म किया जाता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है वह सन्यास है। १८–२

सन्यासी– कार्य, कर्म फल की आशा के बिना निष्काम बुद्धि से कर्म करने वाला मनुष्य सन्यासी है।

नित्य सन्यासी– किसी भी व्यक्ति से द्वेष नहीं करने वाला तथा किसी वस्तु की आकांक्षा–इच्छा नहीं रखने वाला मनुष्य नित्य सन्यासी है। ५–३

त्याग– सर्वकर्म के फल का त्याग, निष्काम भाव रखकर सब कर्म करना और सब कर्मो के फल की इच्छा न रखना ही त्याग है। १८–२

त्यागी– कर्म के फलों को त्याग करने वाला ही वास्तविक त्यागी है। ११–११

सुखी– काम, इच्छा और आकांक्षा से उत्पन्न वेग को सहन करनेवाला, काम–क्रोध से विचलित न होने वाला वास्तव में सुखी है। ५–३५

मुनि– दुःख आने पर जिसके मन में उद्वेग, ग्लानि न हो, सुख आने से जो हर्षित न हो और जिसने राग, भय और क्रोध का त्याग किया है ऐसा व्यक्ति।

पंडित– १–जिस व्यक्ति के सभी सांसारिक कार्य कामना, इच्छा–स्पृहा और संकल्परहित हैं। ४–११

गतासून–मरे हुये और अगतासून जीवित व्यक्तियों के लिये शोक नहीं करने वाला। २–११

मिथ्याचार– कर्मेन्द्रियों को संयमित कर जो मन से विषय–विकारों का सेवन करें–आकांक्षा रखे ऐसे व्यक्ति को मिथ्याचारी–ढोंगी कहते हैं। ३–६

कृपण– कर्मफल की इच्छा से कार्य करने वाला कृपण है। २–४१

विमूढ़ात्मा– प्रकृति के नियमानुसार प्रत्येक कार्य होते रहते हैं फिर भी मैं ही स्वयं सब कर्मो का कर्ता हूँ ऐसा माननेवाला। ३–२७

प्रतिष्ठित प्रज्ञा– कछुआ जैसे अपने अंगों को समेट लेता है उसी प्रकार इन्द्रिय के अर्थ–विषयों से अपनी बुद्धि का संयम करने से प्रज्ञा प्रतिष्ठित होती है। २–५८ जिसकी इन्द्रियाँ अपने वश में हैं उसकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित है। २–६०

शांति– किसे नहीं मिलती ? काम तृष्णा के कामी को, आकांक्षा रखने वाले को शांति नहीं मिलती। २–७०

शांति– किसे मिलती है ? सब कामनाओं का, इच्छाओं का, तृष्णा का परित्याग कर ममत्व बुद्धि और अहंभाव को त्यागकर निःस्पृह रहकर कर्म करने वाले व्यक्ति को शांति मिलती है। २–७१

सात्विक यज्ञ– किसी भी प्रकार के फल की इच्छा के बिना कर्तव्य बुद्धि से शास्त्रों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में दर्शित विधि अनुसार शांत चित्त से किया हुआ यज्ञ। १७–११

राजस यज्ञ– फल की आशा रख दांभिक वृत्ति से किया हुआ यज्ञ।

तामस यज्ञ– शास्त्र विधि की अवज्ञा कर श्रद्धा, धन और दक्षिणा के बिना किया हुआ यज्ञ। १७–१३

शारीरिक तप– देव, द्विज, गुरु, विद्वान मनुष्यों का पूजन, ब्रह्मचर्य और अहिंसा यह शारीरिक तप है। १७–१४

वाङ्मय तप– किसी को भी उद्वेग हो, किसी की भावना को ठेस पहुंचे, ऐसा न बोलना। सत्य वचन बोलना जो प्रिय होकर सामने वाले का हित करने वाला हो, ऐसा बोलना और धर्मशास्त्रों और सत् शास्त्रों का अभ्यास करना, यह वाङ्मय तप हैं। ७–१५

मानस तप– मन को शांत व प्रसन्न चित्त रखना, सौम्यत्व सौजन्य रखना। आत्मा से, मन से, वचन से व कर्म से सभी प्राणियों का भला करने की इच्छा रखना यह मानस तप है। १७–१

सात्विक तप– ऊपर दर्शित वर्णित कार्मिक, वाचिक और मानसिक तप जब सम्पूर्ण श्रद्धा और किसी भी प्रकार के फल की आशा रखे बिना युक्त होकर करने में आये तब उसे सात्विक तप कहते हैं। १७–१७

राजस तप– सत्कार, मान, पूजा और दंभ से किया हुआ तप। १७–१८

तामस तप– दूसरों के अनिष्ट की इच्छा से मूढ़ व्यक्ति जो शरीर को कष्ट देते हैं, वह तप। १७–१६

सात्विक दान– देश, काल और पात्र का सही–सही विचार कर उपकार–बदले की आशा रखे बिना, दान देना अपना कर्तव्य है ऐसी दातव्य बुद्धि से दिया गया दान। १७–२०

राजस दान– प्रत्युपकार (Return of obligation) या फल की आशा से, क्लेश या जबरदस्ती से किया हुआ दान।

तामस दान– देश काल और पात्र के सही विचार किये बिना तिरस्कार और अवज्ञा करके दिया हुआ दान। १७–२

सात्विक कर्म– राग द्वेष और फल की आशा का त्याग करके नियत, अपना कर्तव्य है ऐसा मानकर जो कर्म किया जाए वह सात्विक कर्म है। १८–२३

राजस कर्म– कार्मिक बुद्धि से अहंकारपूर्वक और अत्यधिक मेहनत से किया हुआ कर्म। १८–२४

तामस कर्म– कर्म, परिणाम और अपनी शक्ति के भाव को ध्यान में न रखकर कर्म से होने वाली हानि और हिंसा का बिना विचार अज्ञानता से और

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किए किया गया कर्म। १८–२५

सात्विक कर्ता– मोह (Attachment) और अहंकार से मुक्त होकर धृति और उत्साहपूर्वक कर्म की सिद्धि और असिद्धि में निर्विकार बुद्धि से कर्म करने वाला।

राजस कर्ता– कर्म फल की इच्छा का लोभ रखकर रागपूर्वक, हिंसात्मक और अशुचि कर्म को करने वाला तथा कर्म की सिद्धि–असिद्धि में हर्ष और शोक रखकर करने वाला। १८–२७

तामस कर्ता– युक्तिरहित, वास्तविक निश्चय बिना– क्षुद्रबुद्धि वाले, हठीले, विषाद, शोकातुर और आलसी व्यक्ति को तामसकर्ता कहते हैं।

सात्विक बुद्धि– प्रवृत्ति और निवृत्ति, कार्य और अकार्य, बंधन और मोक्ष आदि का विवेक जिस बुद्धि में हो सके वह बुद्धि। १८–३०

राजसी बुद्धि– धर्म और अधर्म, कार्य और अकार्य का जो सही निर्णय न ले सके वैसी बुद्धि। १८–३१

तामसी बुद्धि– अधर्म को धर्म माने और सभी का उल्टा अर्थ करे वह तामसी बुद्धि। १८–३२

(१) योगः कर्मसु कौशलम्– योग यानी कर्म करने में कुशलता, होशियारी, कार्यदक्षता–ऐसे कर्म करना जिससे उसके कर्ता को दुःख न हो और थोड़ी–सी ही मेहनत से अधिक से अधिक उच्च प्रकार का और लंबे अरसे तक चलने वाला सुख मिले। जिंदगी के प्रत्येक कार्यक्षेत्र में, छोटे से छोटा या बड़े से बड़ा कार्य करते समय कर्मयोग के अभ्यासी (कर्मयोगी) को कुछ एक खास हकीकत ध्यान में रखनी होती है। कर्मयोग के सिद्धान्त अभ्यासी के जीवन में उतारने के लिए नीचे दर्शायी गयी सूचनाओं पर प्रत्येक कार्य करते समय ध्यान देने से कार्य में आई बाधा उत्पन्न करने की शक्ति दूर कर सकते हैं और अभ्यासी की उन्नति का वेग काफी बढ़ा सकते हैं।

सूचना

१. प्रत्येक कर्म करने से पहले वह कर्म अपने लिये नियत कर्म है या नहीं, उस विषय पर विचार करना। ३–८

२. नियम कर्म यानी मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्रों, राजकीय या सामाजिक कायदे और नियम, व्यावहारिक और नीति नियम अनुसार निर्धारित तो जिसको अनुमोदन मिला हो, वैसे कर्म। ऐसे कर्मो को गीता में कई जगह स्वकर्म, स्वधर्म, वर्णाश्रम धर्मकर्म, नियत कर्म, कर्तव्य कर्म, कर्मपूज्य आदि नाम से बताया गया है।

३. नियत कर्म करने से मनुष्य को दुःख नहीं होता, पाप नहीं लगता, ऐसे कर्म

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करने से मनुष्य की अवनति या अधोगति नहीं होती है। १८–४७

४. अपना नियत कर्म, स्वधर्म कम गुणवाला होने से भी अन्य के विशेष गुणवाले धर्म से अधिक अच्छा है। १८–४७

५. स्वधर्म का आचारण करते हुए उसमें मृत्यु हो तो भी अन्य के अच्छे दिखने वाले धर्म से श्रेयस्कर और कल्याणकारी है। परधर्म का आचारण भयावह, भयंकर और परिणामतः दुःख ही देने वाला होता है।

६. नियत कर्म, स्वधर्म, स्वकर्म, कार्यकर्म केवल कर्तव्य बुद्धि से ही करना। ३–१६

७. नियत कर्म करने में, स्वधर्म का पालन करने में कर्तव्यबुद्धि के अलावा कोई भी फल की, बदले या उस प्रकार की क्षुद्र स्वार्थी बुद्धि नहीं रखनी चाहिए परन्तु निष्काम बुद्धि से ही ऐसे कर्म करने चाहिए। १८–६

८. ऐसे कार्य करते समय अहंभाव का त्याग करना चाहिए।

६. ऐसे कार्य करते समय ममत्व नहीं रखना।

१०. ऐसे कार्य करते समय उस कार्य से सिद्धि–असिद्धि, लाभ या हानि जय या पराजय हो तो उसमें उदासीनता, समभाव रखना चाहिए। लाभ–हानि, सिद्धि–असिद्धि, जय–पराजय से मानसिक शांति को भंग नहीं होने देना चाहिए। २–३८–४८

११. नियत कर्म, स्वधर्मपालन करने से जो कुछ मिले उसमें संतोष रखना चाहिए। ४–२२

१२. कर्म करते समय मोह का त्याग करना चाहिए।

१३. कर्म करते समय द्वेष का संपूर्ण त्याग कर केवल निष्पक्ष, समभाव बुद्धि से ही कर्म करना। ३–३४

१४. प्रत्येक कर्म करते समय मुश्किल के आ जाने से धृति–हिम्मत और मुश्किल से हारकर बुज़दिल नहीं होना। १८–२६

१५. कर्म करते समय सम्पूर्ण उत्साह रखना। १८–२६

१६. काम, क्रोध और लोभ तीनों नरक के द्वार, दुःख उत्पन्न करने वाले होने से प्रत्येक कर्म करते समयं इनका संपूर्ण त्याग करना। १६–२१

१७. प्रत्येक कर्म करते समय 'लोकसंग्रह' की तरफ लक्ष्य रखना, अपने प्रत्येक कर्म का समाज पर अच्छा असर हो यह देखना। ३–२६

१८. कर्म करते समय यज्ञ बुद्धि (Sense of self sacrifice) रखना। दान बुद्धि (Sense of Giving) तथा तप बुद्धि रखना (Control of Sense) और उसको विकसित करना। १८–५

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१६. ऐसा प्रत्येक कर्म ईश्वर को अर्पण करने की बुद्धि से करना। १८–५

२०. दुनिया में उत्पन्न प्रत्येक प्राणी प्रभु की प्रतिमा (Image of Almighty) है। ऐसा समझ कर स्वधर्मपालन करने से प्रभु की इस प्रतिमा की, सर्व प्राणी की पूजा करने से मनुष्य को–कर्मयोगी को संसिद्धि मिलती है। इस कारण प्रत्येक अपना स्वधर्मपालन कर प्रभु की पूजा करते हैं। ऐसी बुद्धि कर्मयोगियों को, कर्मयोगी के अभ्यासी को विकसित करनी चाहिए। १८–४६

❑

फिल्म प्रॉसेस, एस्वी ऑफसेट, वाराणसी-१ (फो. ३५-२०११)
श्री. अन्नपूर्णा ब्लाक वर्क्स, बाँसफाटक, वाराणसी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गीता क्या है ?

गीता का ज्ञान सर्वदेशीय है। रोज के जीवन व्यवहार में—एक छोटे से छोटे कार्य से लेकर बड़े से बड़े महान कार्य में इसका उपयोग हो उसके लिये कर्म करने में कुशलता प्राप्त करके कर्ता निष्काम होकर कर्मयोगी बनकर—अपने अहंभाव को त्यागकर—राग और द्वेष को छोड़कर लाभालाभ के स्वार्थी विचारों की दृष्टि को दूरकर, अपने को मिलने वाले कर्तव्यकर्मों को कर्तव्यबुद्धि से स्वधर्मपालन की बुद्धि से, सामान्य जनसमूह के कल्याणार्थ, इस विश्व को विश्वनाथ का मंदिर मानकर और उसमें विचरने वाले प्रत्येक प्राणी को प्रभु की जीवंत प्रतिमा मानकर, उस प्रतिमा का पूजन—अपने स्वकर्म द्वारा करके संसिद्धि को प्राप्त करे, परम शांति को पाये, ऐसी शुभेच्छा और शुभाशीष के साथ कर्मयोग नामक यह पुस्तक पाठकवृन्द के लाभ के लिए—जनसमूह की उन्नति और लोककल्याणार्थ प्रस्तुत है।

गीता का मतलब संसार त्याग नहीं, परन्तु संसारी रहकर—ससारी जीवन का—गृहस्थ जीवन का रहस्य समझ कर इस प्रकार का व्यवहार रख स्वयं सुखी होकर दूसरों को सुखी करने का आवश्यक ज्ञान और उस ज्ञान को व्यवहारिक बना सके ऐसी कर्म पद्धति।

गीता का अभ्यासी अर्जुन की तरह सुख—दु[illegible] राग—द्वेष का त्यागकर केवल स्वधर्म बुद्धि से वि[illegible] प्रज्ज्वलित हो रहे विश्व यज्ञ में— महारुद्र में अपना [illegible] कर अपने स्वयं की आहुति दे—स्वयं को बलिदान के रूप में होम दे। ऐसी अडिग श्रद्धा संकल्प तथा अध्यात्म बल वाले पुरुष—जिस देश में पैदा हों, उस देश की उन्नति देव भी नहीं रोक सकते।

गीता का ज्ञान यानी ऐसे महानुभाव नरवीर उत्पन्न करने की—मनुष्य को महात्मा बनाने की—नर को नारायण करने की—दुनियाँ को देवलोक बनाने की एक सादी, सरल और सचोट ज्ञान पद्धति।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.